परमात्म भक्ति में लीन हुए, मुनि मानतुंग आचार्य ।
ज्ञान - ध्यान की तन्मयता में, हुआ अलौकिक कार्य ॥
तड़ - तड़ टूटे बन्द जेल के, तारे अड़तालीस ।
कर्मों के बन्धन तोड़ो, हे भक्तामर आदीश ! ॥

युग-प्रवर्तक प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभनाथ जी

हे आदि ब्रह्म ! हे युग स्रष्टा ! हे वृषभनाथ ! हे शिवशंकर !
हे नाभिजात ! कैलाश नाथ ! हे धर्म विधायक ! तीर्थंकर !
हे कर्मशूर ! हे धर्मशूर ! पथ-प्रवृति निवृति का बतलाओ।
हे मरुनन्दन ! नन्दन कानन ! वन मन मरुथल में आजाओ ॥
इस भरतक्षेत्र की भोगभूमि जब कर्मभूमि बन जाती है।
तब कर्म काटने के कारण यह तपोभूमि कहलाती है ॥
इस तपोभूमि में 'मानतुंग' मुनि के टूटे थे सब बन्धन।
इनकी भक्तामर-रचना को 'पुष्पेंदु' 'कुमुद' का शत वन्दन ॥

और आदि स्वरूप प्रभु की दृढ-भक्ति का परिचय दिया है। इसी प्रकार इसकी प्रसिद्धि का भार वहन करने मे धर्म-वत्सल "श्री भीकमसेन रतनलाल जी जैन" ने अपनी धनराशि उदार हृदय से अर्पण की अत तीनो व्यक्ति धन्यवाद के पात्र हैं ऐसे ही जिनभक्ति एव जिनवाणी मा की सेवा होकर इन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति होवे यही हमारा हार्दिक आशीर्वाद है।

"य भगवान भविष्यति स भगवान भविष्यति"

विशेष —

श्री भक्तामर स्तोत्र का एक-एक चरण मत्र है। साधना तो दूर रहे किन्तु आदिप्रभु का ध्यान भी मन वचन काय से इस स्तोत्र द्वारा किया जाय तो बडे सकट दूर होते हैं और इच्छित सिद्धि होती है। ऐसे मुझे कई अनुभव आये हैं। जिसमे एक घटना भूली ही नही जा सकती। करीब २६ वर्ष हो रहे हैं, जब मेरे जीवन मे प्राणान्तक सकट आया था। मृत्यु प्रत्यक्ष सामने आकर उपस्थित थी, उसके कराल दाढ मे फस गया था। जिन्दगी की आशा टूट गई थी। निसर्गत णमोकार मत्र का जाप करते-करते कुछ पूव भाग्य से श्री आदीश्वर प्रभु का एक सहारा लेकर भक्तामर स्तोत्र का अन्तिम पाठ वडी ही भक्ति व एकाग्र करुण पुकार से किया। खूब भाव लगे, आनन्द विभोर हुआ। पाठ पूर्ण होते ही विघ्न दूर हुआ, नही तो आज यह अभिप्राय और आशीर्वाद लिख देने के लिये खुरई मे उपस्थित न रह सकता।

चातुर्मास वर्षायोग, खुरई — मुनि आर्यनन्दी
दिनाक ७/७/७७

श्री १०८ मुनिश्री महाबल जी महाराज

क्षुल्लक जयकीर्ति द्वारा यह जानकर प्रसन्न हूँ कि आप लोग "सचित्र भक्तामर रहस्य" ग्रन्थ का प्रकाशन कर रहे है जो अपने मे अद्वितीय है, अभिनन्दनीय है।

चातुर्मास वर्षायोग — मुनि महाबल
सदलगा (बेलगाव) — सघ सदलगा
२८/७/७७

अनन्य साहित्य-साधक विद्वान्

प० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'
खुरई (जिला सागर) म० प्र०

आपकी द्वादश वर्षीय साधना प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से प्रतिफलित हो रही है।

सत्य-शिव-सुन्दरम्

के उपासक इस कलाकार के अन्तर मे प्रतिभा, पाण्डित्य और परिश्रम की त्रिवेणी निरन्तर बहती ही रहती है।

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन प्रकाशन सस्था आपके ही सर्वोपरि व्यक्तित्व से इतनी सु-विख्यात है। लगभग ५० ग्रन्थो के आप सफल सम्पादक एव लेखक है।

७२ वर्षीय वयोवृद्ध होने पर भी तथा महाजनी सर्विस द्वारा आजीविकोपार्जन करने पर भी जिनवाणी की सेवा मे तन-मन-धन अर्पण करने वाले 'कुमुद' जी को जैन-जगत कभी न भूल सकेगा।

जैन वाङ्मय-वारिधि के आकण्ठमग्न रसिक कवि

श्री 'कुमुद' जी के आप अनन्य सहयोगी हैं। पद्यानुवादों मे आप विशेष अभिरुचि रखते है। अपने स्वर्गीय पूज्य पिताश्री व्रती बालचन्द्र जी के पद-चिह्नो पर चलने को निरन्तर लालायित, साहित्यिक निस्पृह विद्वान्, दाम और नाम से सदैव दूर रहते हैं।

आपने प्रस्तुत ग्रन्थ-रचना मे सत्य कथा-श्लोक सभालने मे पूरा योग दिया है।

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन एव प्रतिभा-सगम आदि स्थानीय साहित्यिक सस्थाएँ आपकी नि स्वार्थ सेवाओ को कभी भी विस्मृत न कर सकेंगी।

श्री फूलचंद जी 'पुष्पेन्दु'
खुरई (जिला सागर) म० प्र०

जैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ विद्वान सिद्धान्ताचार्य आदरणीय प० हीरा लाल जी सिद्धान्तशास्त्री व्यवस्थापक ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भडार ब्यावर (राजस्थान) जिनकी महती अनुकम्पा से तिजोडी मे बद रहने वाले भक्तामर स्तोत्र काव्य के भावात्मक मुगलकालीन दुर्लभ चित्र हमे प्राप्त हो सकें और जिन्हे हम इस ग्रन्थ मे सर्वप्रथम प्रकाशित कर जैन समाज के समक्ष रखने मे समर्थ हुए।

अत श्रीमान् प० हीरालालजी के हम हृदय से आभारी हैं।

जैन-सिद्धान्त के मर्मज्ञ विद्वान

प० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री

द्वादश वर्षीया बालिका

कुमारी कल्पना जैन

यह वही कोकिल-कठी बालिका है जिसने वीर निर्वाण रजत शताब्दी मे अपने मधुर गीतो से देश भर मे धूम मचा दी थी और जो अभी भी विविध समारोहो मे सादर आमत्रित होती है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे चित्रो के नीचे दिये गये भाषा पद्यानुवाद की सगीत स्वर लहरियाँ जब इसके भाव-विभोर कठ से नि सृत होती हैं तब मत्र-मुग्ध वातावरण निस्तब्ध हो जाता है।

स्मरण रहे कि कुमारी कल्पना सम्पादक प० कमल कुमार जी की दौहित्री है।

परामर्श-दातृ मण्डल

व्रती श्री माणिकचन्द जी चवरे न्यायतीर्थ
कारंजा (अकोला) महाराष्ट्र
अधिष्ठाता

व्रती श्रावक प० श्री जगन्मोहन लाल जी
कटनी (जबलपुर) म० प्र०
उप-अधिष्ठाता
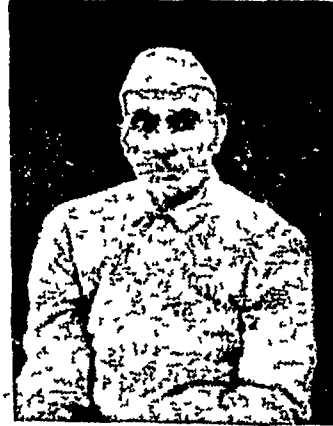
श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल, खुरई (सागर) म० प्र०

डा० शेखरचद जैन, एम० ए०, पी० एच० डी०
आर्ट्स कामर्स कालेज, भावनगर (गुजरात)

पं० नेमिचन्द्र जी शास्त्री, एम०ए० द्वय
प्राचार्य

प० भुवनेन्द्रकुमार जी शास्त्री, बी०ए०
गृहपति

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल, खुरई (सागर) म० प्र०

अर्घ्य-दान

पच परमेष्ठियो की पुनीत स्मृतियो मे—

सम्यग्ज्ञान धारिणि सरस्वती के पावन पाणि-पल्लवो मे—

त्रिलोकर्वात कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयो की पवित्र वेदिकाओ मे—

वीतराग विज्ञानमयी परम प्रशात मुद्रा युक्त

जिन विम्बो के पवित्र अक मे—

परम अहिंसक रत्नत्रय मंडित सर्वधर्म समन्वित

अनेकान्त धर्म की सेवा मे—

चतुर्विध संघ के तपः-पूत अञ्चलो मे—

जिन शासन भक्त देवी देवताओ की भव्य-भावनाओ मे—

विश्व के सम्पूर्ण आस्तिक भगवद्भक्त

नर-खेचर-तिर्यक् की प्रगाढ़ श्रद्धाओ मे—

एवं

ससार के समस्त

स्तोत्रकारो, साहित्यकारो, भाष्यकारो, काव्यकारो, कथाकारो

चित्रकारो

मंत्र-तंत्र साधको, यंत्र रक्षको विद्या साधको

व्रती मंडल की केन्द्रीभूत साधनाओ मे

सोल्लास सादर समर्पित

ग्रन्थ

सचित्र-भक्तामर-रहस्य

अर्घ्यावतारक

आशुकवि फूलचन्द 'पुष्पेन्दु' कमल कुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

लाला भीकमसेन रतन लाल जैन कालका वाले

१२८६ वकीलपुरा देहली-६

अन्तर्मुखी-दर्पण

पृष्ठांक

प्रारम्भिक पृष्ठो मे—

प्रासंगिक पृष्ठों मे—

भक्तामर सार्थक चित्रालोक (प्रथम खण्ड)

भक्तामर सत्य कथा लोक (द्वितीय खण्ड)

भक्तामर दिव्य मन्त्रालोक (तृतीय-खण्ड)

भक्तामर विविधि यन्त्रालोक (चतुर्थ-खण्ड)

भक्तामर सरस अर्चनालोक (पचम-खण्ड)

प्रस्तावना लेखक

विद्यावारिधि इतिहासरत्न डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन, लखनऊ

जिनकी प्रामाणिक-प्रभावक लेखनी मे हिन्दी-अंग्रेजी की वर्जनों पुस्तकें तथा लगभग सात सौ निबंध प्रसूत हुए और जो जैन सिद्धान्त भास्कर, जैन एंटीक्वेरी, शोधांक, अनेकान्त, वायस आफ अहिंसा आदि पुरातत्वीय-पत्रों के सम्मान्य सफल सम्पादक हैं। जरनल एडीटर भारतीय ज्ञानपीठ ग्रन्यमाला, प्रधान सचालक अखिल विश्व जैन मिशन, अनवरत विशिष्ट अभ्यासी जैन विद्या साहित्य संस्कृति इतिहास पुरातत्ववेत्ता श्री जैन साहब के करकमलो से लिखा हुआ आविर्भाव नितान्त पठनीय है—अवश्य पढ़िये—

आविर्भाव

भक्त शिरोमणि आचार्य मानतुग अपने सुप्रसिद्ध स्तोत्र का प्रारभ 'भक्त' शब्द मे करते हैं (भक्तामर प्रणत मौलिमणि प्रभाणाम्), और अन्त जिस पद्य के साथ करते हैं, उसमे व्यक्त कर देते हैं कि "किस प्रकार भगवान जिनेन्द्र की भक्ति से प्रेरित भक्त हृदय के स्वत स्फूर्त उद्गार भगवान की गुणावलि-निवद्ध जिस मनोहारी एव विचित्र स्तोत्र का रूप लेते हैं, उसका सतत् मनन वा पाठ करने वाले का वरण करने के लिए अभ्युदय एव नि श्रेयस रूपी द्विविध लक्ष्मी विवश हो जाती है।" इस प्रकार उन्होंने भक्त, भगवान, भक्ति के स्वरस और भक्ति के फल—सव का निर्देश कर दिया।

भक्ति-योग

भक्त और भगवान के सम्वन्ध का नाम ही भक्ति है। "गुणानुरागे भक्ति" अथवा "गुणेषु अनुराग -भक्ति" अपने आराध्य इष्टदेव के गुणो मे जो अनुराग होता है, उसे ही भक्ति कहते हैं। 'सर्वार्थसिद्धि' मे आचार्य पूज्यपाद ने भक्ति की परिभाषा की है—

"अर्हदाचार्यवहुश्रुतप्रवचनेषु भावविशुद्धियुक्तोऽनुराग भक्ति" अर्थात् "अर्हत् परमात्मा, आचार्य, उपाध्याय आदि वहुज्ञानी सन्तो और जिनवाणी मे भावों की विशुद्धि पूर्वक जो अनुराग होता है, उसे भक्ति कहते हैं।" प्रशस्त गुणानुराग ही भक्ति हैं। उसमे किसी भी प्रकार की अप्रशस्तता, स्वार्थ की गन्ध, फलाशा, छल आदि का समावेश नही होना चाहिये। प्रशस्त, निश्छल, नि स्वार्थ, निष्कामं एवं उत्कट भगवत् गुणानुरक्ति स्वत सर्व सुफल-प्रदायि होती है। भगवद् भक्ति में लीन भक्त की जो विकार-मुक्ति एव आत्मोन्नयन होते है वह भक्ति के तत्काल एवं प्रत्यक्ष फल हैं, और उस काल में उसमे कषयो की जो अत्यन्त मन्दता एवं शुभराग रूप प्रवृत्ति रहती है उससे उत्तम पुण्यवन्ध होता है, जो कालान्तर मे लौकिक अभ्युदय का और परम्परा से मोक्ष का कारण वनता है। जैसा कि भगवान कुन्दकुन्द ने भावपाहुड मे कहा है—

जिणवर चरणाबुरुह, णमति जे परमभक्तिराएण।
ते जम्मवेलिमूल, खणन्ति वरभाव सत्थेण॥

अर्थात् जो जन परम भक्ति रूपी अनुराग पूर्वक जिनेन्द्र भगवान के चरण-कमलो मे नत रहते हैं वे जन्म-मरण रूपी ससार वेलि का उक्त उत्कृष्ट भक्ति-

भावरूप शस्त्र द्वारा समूल उच्छेद कर देते हैं—सिद्धत्व या मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

मानतुग भी कहते हैं —

नात्यद्भुत भुवनभूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा,
भूत्याश्रित य इह नात्मसम करोति ।।

'हे विश्वमण्डल जगन्नाथ ! इसमे आश्चर्य ही क्या यदि आपके यथार्थ गुणो का गान रूप स्तवन द्वारा भव्यजन आपके ही समान बन जाते है, क्योंकि वह स्वामि ही क्या जो अपने आश्रितो या सेवको को अपने समान न बनाले ।"

इस पद्य में कवि ने भक्ति के आवेश मे भगवान मे कर्तृत्व के आरोप का आभास दे दिया और भक्ति को किंचित सकाम भी बना दिया, किन्तु उनका वास्तविक अभिप्राय वह नहीं है। जैनभक्त यह जानता है कि उसके इष्टदेव अर्हंत भगवान परम वीतराग होते हैं—किसी का कुछ भी भला-बुरा नही करते, न कुछ लेते या देते हैं।[1] आचार्य कुन्दकुन्द ने भी उपर्युक्त गाथा मे भगवान को नहीं, भक्ति को ही ससार मूलोच्छेदनी व्यक्त किया है। स्तुतिविद्या के पारगामी स्वामि समन्तभद्र ने जो उत्कृष्ट कवि और भक्त ही नही, परम तार्किक भी थे, स्पष्ट कर दिया —

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे, न निन्दया नाथ ! विवान्त-वैरे ।
तथाऽपि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्न पुनाति चित्त दुरिताञ्जनेभ्य ।।

"हे नाथ ! न आपको पूजा-स्तुति से कोई प्रयोजन है और न निन्दा से, क्योंकि आप समस्त वैर-विरोध का परित्याग करके परम वीतराग हो गये हैं, तथापि आपके पुण्य-गुणों का स्मरण हमारे चित्त को पाप-मलो से मुक्त करके पवित्र कर देता है।"

भक्तराज महाकवि धनञ्जय भी उसी तथ्य का समर्थन करते हैं —

उपैति भक्त्या सुमुख सुखानि, त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दु:खम् ।
सदावदात-द्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ।।

"भगवन् ! आपतो निर्मल दर्पण की भाँति सर्वदा स्वभावत स्वच्छ हो,

---

१—देखिये प० जुगल किशोर मुख्तार के लेख—वीतराग की पूजा क्यों? (अनेकान्त), फर्वरी १६७४, पृ० २२२-२२३, उपासना तत्त्व, स्तुति विद्या की प्रस्तावना आदि ।

जो व्यक्ति निष्कपट भक्ति मे निमग्न होकर उक्त दर्पण मे अपना मुख देखता है, उसे सुखद सुमुख के दर्शन होते है, और जो स्वभाव से विमुख होकर—विकृत करके—उसमे अपना मुख देखता है, उसे दु:ख ही प्राप्त होता है।"

भक्ति मे अद्भुत शक्ति है। उसकी महिमा अचिन्त्य एव अवर्णनीय है। किन्तु वह शक्ति सम्पूर्ण समर्पण एव स्वार्पण मे निहित है। निष्कपट, निष्काम और भावपूर्ण भक्ति ही कार्यकारी है।

"यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या"

एक सूफी सत तो कहता है —

सिजदे के सिले मे फिरदौस मुझे मन्जूर नहीं।
बेलौस बदा हूँ, मैं कोई मजदूर नहीं॥

"भगवद्भक्ति के बदले मे मुझे स्वर्गादि की सम्पदा स्वीकार नहीं है। क्योंकि मैं तो निस्पृह भक्त हूँ, कोई मजदूर या सौदागर नहीं, जो एक चीज देकर उसके बदले दूसरी चीज ले।" एक पाश्चात्य चिन्तक और आगे बढ जाता है—

"Prayer must never be answered, if it is, It is not prayer It is correspondence" "भक्ति, स्तुति, विनती, प्रार्थना, आदि का (लौकिक) फल भक्ति को मिलना ही नहीं चाहिये। यदि मिलता है, तो वह सच्ची भक्ति नहीं—वह तो आदान-प्रदान या एक प्रकार का लेन-देन हो गया।"

ऐसी उत्कट एव निष्काम भक्ति ही सच्ची भक्ति है। वस्तुत जैनी दृष्टि से आत्मविशुद्धि के लिए किया गया भक्ति का प्रयोग ही 'भक्ति योग' है। अपने इष्टदेव का सान्निध्य, स्वय अपने आत्मोन्नयन द्वारा, पाने का सर्वोत्कृष्ट साधन यह 'भक्ति योग' है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा साधक अप्राप्त अथवा परम प्राप्तव्य को प्राप्त कर लेता है। आत्मा स्वय परमात्मा बन जाता है—भक्त भगवान बन जाता है।

स्तवन-स्तोत्र

भक्ति का मूल रूप स्तवन है। वह उसका प्रारम्भिक रूप भी है, और शाश्वत भी। उसका महत्व एव उपयोगिता समय की गति के साथ न कम हुई है, और न होगी। अपनी प्राथमिक अवस्था मे जब साधक शुभ राग मे प्रवृत होता है तो परावलम्बी ध्यान के रूप मे वह अपने अनुकरणीय एव प्राप्य आदर्श

इष्टदेव के गुणों में अनुरक्त होकर उसका गुणगान करता है। इष्टदेव का यह भक्ति-प्रसूत प्रशस्त गुणगान ही भावभीने ललित स्तुति-स्तोत्रो का रूप ले लेता है। 'भूताभूतगुणोद्भावन स्तुति'—आराध्य मे जो गुण हैं और जो नही भी हैं उनकी उद्भावना का नाम ही स्तुति है। भक्ति के आवेश मे भक्त बहुधा भगवान मे ऐसे गुणों का भी आरोप कर बैठता है जो उसमें नहीं है, यथा परम वीतराग अर्हत् देव मे कर्तृत्व का आरोप करना, उनके स्वभाव विरुद्ध उन्हें सुख का कर्ता या दुःख का हर्ता कह देना, उन्हें सिद्धि या मोक्षदाता कह देना, अथवा उनके साथ पिता-पुत्र, स्वामि-सेवक, प्रेमपात्र-प्रेमी मधुर सख्य आदि विविध भाव स्थापित करना। वस्तुत ऐसे औपचारिक उद्गार, जब तक वे पथ मे नही भटकाते और सीमित रहते हैं, निर्दोष ही होते हैं। भक्ति की विह्वलता मे ही उनका औचित्य सिद्ध है। इस प्रकार भक्त और भगवान के सामुज्य का सेतु भक्त हृदय मे प्रस्फुटित भक्ति प्रवण स्तोत्र होते हैं। उपास्य की औपचारिक पूजा से कोटिगुणा प्रभावक स्तोत्र-पाठ को बताया है—'पूजा-स्कोटिगुण स्तोत्र' अथवा 'पूजा कोटिसम स्तोत्र' यत स्तोत्र रचना एव स्तोत्र पाठ मे मन-वचन-काय की एकाग्रता स्वत सिद्ध होती है, विशेषकर मन और वचन की। कहा भी है —'सा जिव्हा या जिन स्तौति' जिव्हा की सार्थकता इसी मे है कि वह जिनेन्द्र भगवान की स्तुति मे प्रयुक्त रहे। "स्तुति स्तोतु साधो कुशल परिणामाय स तदा" (स्वयम्भू स्तोत्र ११६)

जब से मानव हृदय मे धर्म भाव का उदय होता है, अथवा जब से भी भक्त और भगवान का सम्बन्ध है, भक्तों द्वारा भगवद् भक्ति मे स्तोत्र रचे और गाये जाते रहे हैं। भक्त जितना ही अधिक भक्तिरस मे सराबोर होगा, जितना ही अधिक मन्द कषायी, निश्छल और निष्काम होगा, जितना ही अधिक ज्ञानी एव प्रतिभा सम्पन्न होगा, और उसका भगवान भी जितना ही अधिक परमोत्कृष्ट लोकोत्तर अक्षय गुणो का निधान होगा, स्तोत्र भी उतना ही अधिक मनोहारी प्रभावपूर्ण तथा चमत्कारी होगा।

जैन स्तोत्र-साहित्य

युग की आदि मे सौधर्मेंद्र ने आदि तीर्थंकर की स्तुति की थी। वस्तुत प्रत्येक तीर्थंकर के जन्मोत्सव, तथा अन्य कल्याणकों के अवसर पर भी पूर्ण श्रुतज्ञानी परमभक्त देवराज भगवान की भावभीनी स्तुति करता है। मानव भक्तो के लिए उक्त शक्रस्तव स्तोत्रो का आदर्श समझा जाता रहा है। अनगिनत भक्तों

ने अपनी भक्ति एवं शक्ति के अनुसार इष्टदेव का स्तुतिगान किया है। अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान-महावीर के प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतम ने भी अर्द्धमागधी भाषा में भगवान का भावपूर्ण स्तोत्र रचा था। आचार्य भद्रबाहु ने उवसग्गहर स्तोत्र रचा बताया जाता है और आचार्य कुन्दकुन्द की भक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। गत साधिक दो सहस्र वर्षों में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, मराठी, उर्दू अंग्रेजी, आदि विभिन्न भाषाओं में जिन भक्तों ने असंख्य स्तुति, स्तोत्र, विनती पद आदि रचे हैं। भारतीय साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार विन्टरनित्स के अनुसार जैनों ने अति प्राचीन काल से ही धार्मिक गेय कविताओं-स्तुति-स्तोत्रादि की रचना में अन्य धर्मावलम्बियों के साथ सफल प्रतिद्वन्दिता की है और अनेक उत्तमोत्तम स्तोत्र भारतीय साहित्य को प्रदान किये हैं।' विशेषकर संस्कृत भाषा के जैन स्तोत्र तो भक्ति साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। ज्ञात एवं उपलब्ध स्तोत्रकारों एवं स्तोत्रों में प्रमुख निम्नोक्त हैं —

स्वामि समन्तभद्र	(२ री शती ई०)	देवागम, स्वयम्भू, जिनस्तुति शतक (स्तुति विद्या)
मानदेव	(३ री शती ई०)	शान्तिस्तव
सिद्धसेन क्षपणक	(४ थी शती ई०)	महावीर द्वात्रिंशिका एवं अन्य कई द्वात्रिंशिकाएँ।
पूज्यपाद	(५वीं शती ई०)	शान्त्यष्टक, सरस्वती - स्तोत्र, जैनाभिषेक, दशभक्ति।
पात्रकेशरि स्वामि	(६ठीं शती ई०)	पात्रकेशरि-स्तोत्र।
वज्रनंदि	(६ ठीं शती ई०)	नवस्तोत्र
मानतुंग	(७ वीं शती ई०)	भक्तामर स्तोत्र (आदिनाथ स्तोत्र)
भट्टाकलंकदेव	(७ वीं शती ई०)	अकलंकाष्टक
जिनसेन पुन्नाट प्रथम	(७वीं शती ई०)	जिनेन्द्रगुण संस्तुति
धनञ्जय	(७ वीं शती ई०)	विषापहार स्तोत्र
बप्पभट्टि	(८ वीं शती ई०)	चतुर्विंशति जिनस्तुति, सरस्वती-स्तोत्र।
विद्यानंद	(८ वीं शती ई०)	श्रीपुर पार्श्वनाथ स्तोत्र।
जिनसेन स्वामि	(६ वीं शती ई०)	श्री जिनसहस्रनाम-स्तोत्र।

१ एम० विन्टरनित्स—हिस्टरी आफ इण्डियन लिटरेचर, भा० २ पृ० ५४८

नदिषेण	(६ वीं शती ई०)	अजित-शान्ति-स्तव (प्रा०)
जम्बूसूरि	(६४८ ईस्वी)	जिन-शतक।
पुष्पदन्त	(६५६-७४ ई०)	शिव-महिम्नि-स्तोत्र।
पोन्न	(६६०-६० ई०)	जिनाक्षर माले (क)
शोभन मुनि	(६७० ईस्वी)	शोभन स्तुति।
धनपाल काश्यप	(६७०-१०१५ ई०)	ऋषभ पचासिका (गं)
गोल्लाचार्य भूपाल	(ल० ६७५ ई०)	भूपाल चतुर्विंशति
अमितगति	(६७५-१०२० ई०)	भावना द्वात्रिंशिका
वादिराज	(१०२५ ई०)	एकीभाव-स्तोत्र, (कल्याणकल्प-द्रुम) अध्यात्माष्टक स्तोत्र, ज्ञान-लोचन स्तोत्र
रामनदि	(१०२५ ईस्वी)	जिन-शतक
मल्लिषेण	(१०४७ ईस्वी)	ऋषिमडल - स्तोत्र, पद्मावती-स्तोत्र, आदि
इन्द्रनदि	(ल० १०५० ईस्वी)	पार्श्वनाथ स्तोत्र
अभयदेव सूरि	(१०६३-७८ ई०)	जयतिहुअण स्तोत्र (प्रा०)
जिनचन्द्र सूरि	(१०६८ ईस्वी)	सवेग रगशाला
पम्पा देवी	(ल० १०७५ ईस्वी)	चतुर्भक्ति (क)
माघनंदि मुनि	(ल० ११०० ईस्वी)	अर्हन्नुतिमाला, चतुर्विंशति स्तुति।
हेमचन्द्राचार्य	(११०६-७२ ई०)	वीतराग स्तोत्र महादेव स्तोत्र दो महावीर द्वात्रिंशिकाएँ।
जिन वल्लभ सूरि	(१११० ईस्वी)	अजित शाति-लघु स्तवन, भावारि वारणस्तोत्र, वीरस्तव, जिन कल्याण स्तोत्र
मुनिचन्द्र सूरि	(११११-१६ ई०)	प्राभातिक स्तुति।
मौक्तिक	(११२० ईस्वी)	चन्द्रनाथाष्टक (क)
ब्रह्मशिव	(११२५ ईस्वी)	त्रैलोक्य चूडामणि स्तोत्र (क)
जिनदत्त सूरि	(११२५ ईस्वी)	स्वार्थाधिष्ठायि स्तोत्र, विघ्न-विनाशि स्तोत्र।
धर्मघोष सूरि	(११२५ ईस्वी)	ऋषिमडल स्तोत्र।
कुमुदचन्द्राचार्य	(ल० ११२५ ईस्वी)	कल्याणमन्दिर स्तोत्र।

भानुकीर्ति	(११३६-७३ ई०)	शंख देवाष्टक।
वाग्वल्लकी वणिक	(११८३ ई०)	चन्द्रप्रभस्तुति (क)।
राजसेन	(ल० ११५० ई०)	पार्श्वनाथाष्टक।
विष्णुसेन	(ल० ११५० ई०)	समवसरण स्तोत्र।
श्रीपाल कवि	(११५२ ई०)	शतार्थी।
पद्मप्रभ मलधारि	(११६३-१२१३ ई०)	पार्श्वनाथ स्तोत्र (लक्ष्मी स्तोत्र)
रामचन्द्र सूरि	(११७५-१२०० ई०)	षोडश स्तवन आदि सात स्तोत्र।
विद्यानन्दि	(११८१ ई०)	पार्श्वनाथ-स्तोत्र।
आसड	(ल० १२०० ई०)	जिन-स्तोत्र।
सिद्धसेन	(")	शक्रस्तव।
शुभचन्द्र योगि	(")	जिनपति स्तवन।
वादिराज द्वि०	(")	नवग्रह-स्तोत्र।
धर्मवर्द्धन	(")	षड्भाषा निर्मित पार्श्वजिन स्तवन
हस्तिमल्ल	(ल० १२००-१२२५ ई०)	[illegible]-स्तोत्र, [illegible] स्तोत्र
आशाधर	(१२००-१२५० ई०)	सहस्रनामस्तवन सिद्धगुण-स्तोत्र सरस्वति-स्तोत्र, महावीरस्तुति।
सोमदेव	(१२०५ ईस्वी)	चिन्तामणि-स्तवन।
देवनंदि	(१२२५ ईस्वी)	सिद्धिप्रिय स्तोत्र, स्वयम्भूपाठ लघु, चतुर्विंशति जिन-स्तवन।
गुणवर्म	(१२३५ ईस्वी)	चन्द्रनाथाष्टक (क)।
महेन्द्रसूरि	(१२३७ ईस्वी)	तीर्थमाला - स्तोत्र वीरावली पार्श्व-स्तोत्र।
पद्मप्रभ	(")	पार्श्वस्तव भुवन-दीपक।
वाग्भट	(ल० १२४० ई०)	(सुप्रबोधन स्तोत्र)
नरचन्द्र	(")	चतुर्विंशति जिनस्तुति।
चारुकीर्ति	(")	गीत वीतराग प्रबन्ध
रत्नकीर्ति	(१२३१ ई०)	शम्भू-स्तोत्र
जिनप्रभ सूरि	(१२६५-१३३३ ई०)	चार-पाच स्तोत्र
धर्मघोष	(ल० १३०० ई०)	यमक-स्तुति, चतुर्विंशति-जिन-स्तुति।
रत्नाकर	(")	रत्नाकर पचविंशतिका
वीरगणि	(")	अजित-शान्तिस्तव (प्रा०)

शेखर	(ल० १३०० ई०)	अजित-शान्तिस्तव
न्द्र अध्यात्मि	(१३१३ ई०)	मदालसा-स्तोत्र
प्रभ	(१३१५-४८ ई०)	षड्भाषा विभूषित शान्तिनाथ स्तवन
लक	(ल० १३५० ई०)	चतुर्महारावलि जिनस्तव
कि भट्टारक	(१३६०-६५ ई०)	अनेक स्तोत्र
सुन्दर	(१३७६ ई०)	जिनस्तोत्र-रत्नकोश
जय	(१५वीं शती)	चतुर्विंशति स्तुति
जय मलि	(१६वीं शती)	जिन सहस्रनाम
विजय	(१७वीं शती)	जिनसहस्रनाम
ड	(१६वीं शती)	महावीराष्टक ।

उपर्युक्त सूची से प्रकट है कि लगभग आधी दर्जन 'जिन सहस्रनाम'
और एक दर्जन से अधिक जिन चतुर्विंशतिकाएँ रची गयीं। कई
शान्ति स्तव भी। पृथक् तीर्थंकरों में ऋषभ, चन्द्रप्रभु, शान्तिनाथ,
नाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के स्तवन ही मुख्यतया रचे गये।
नार, समवसरण आदि विषयों को लेकर भी कुछ स्तोत्र रचे गये। कुछ
ों में दार्शनिकता, कुछ में अध्यात्मिकता तथा कुछ में हितोपदेशिता का
दर्शित होता है, किन्तु शेष अधिकांश भक्ति परक ही है। तीर्थंकरों के
मान अन्य देवी देवताओं में सरस्वती स्तोत्रों की प्रथा ८ वी ९वी शती
होने लगी है और १० वी ११ वी शती से चक्रेश्वरी, अम्बिका
वती आदि विशिष्ट प्रभावशाली शासन देवियों के भी स्तोत्र रचे जाने
कई स्तोत्र मन्त्रपूत अथवा मांत्रिक शक्ति से युक्त माने जाते रहे हैं,
र उनके साथ सम्बद्ध चमत्कारों की आख्यायिकाएँ भी लोक प्रसिद्ध
ऐसे चमत्कारी स्तोत्रों में समन्तभद्र के स्वयंभू स्तोत्र, मानदेव के
स्तव, सिद्धसेन की महावीर स्तुति, पूज्यपाद के शान्त्यष्टक, पात्रकेशरि
त्रकेसरि-स्तोत्र, मानतुंग के भक्तामर-स्तोत्र, धनञ्जय के विषापहार,
राज के एकी भाव, मल्लिषेण के ऋषिमण्डल तथा कुमुदचन्द्र के कल्याणमंदिर
विशेष ख्याति रही है। भक्तामर, विषापहार, भूपालचतुर्विंशति एकीभाव
कल्याणमन्दिर सामूहिक रूप से पंच स्तोत्र भी कहलाते हैं और विशेष-
दिगम्बर आम्नाय में—ये पंचस्तोत्र अति लोकप्रिय रहे हैं। जैनों के
र साहित्य की विपुलता, भव्यता, भावप्रवणता और माधुर्य की अनेक
त्य एवं पाश्चात्य जैनेतर मनीषियों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

भक्तामर-स्तोत्र

सम्पूर्ण स्तोत्र साहित्य मे भक्तप्रवर प्रतिभाभिराम मानतुग द्वारा विरचित 'भक्तामर-स्तोत्र' अपर नाम "आदिनाथ-स्तोत्र" का अनेक दृष्टियो से सर्वोपरि स्थान है। 'वसन्त-तिलका' अपरनाम 'मधु-माधवी' नामक वार्णिक छन्द मे रचित सुष्ठु सस्कृत के अडतालीस पद्यो वाले इस मनोमुग्धकारी स्तोत्ररत्न मे परिष्कृत एव सहजगम्य भाषा प्रयोग, साहित्यिक सुषमा, रचना की चारुता, निर्दोष काव्य कला, उपयुक्त शब्दालङ्कारो एव अर्थालङ्कारो की विच्छित्ति दर्शनीय हैं, और अथ से अन्त तक भक्तिरस की अविच्छिन्न धारा अस्खलित गति से प्रवाहित है।[1] स्तोत्रकार ने अपने इष्टदेव मे कर्तृत्व का तो कथचित् आरोप किया है, किन्तु कही भी उससे कोई याचना नही की है, उसके द्वारा कुछ करने या कराये जाने की ओर कोई इगित नही किया—मात्र गुणगान किया है। जिनेन्द्र भगवान के रूप सौन्दर्य का, उनके अतिशयो और प्राति-हार्यों का तथा उनके नामस्मरण के महात्म्य से स्वत निवारित भयो, उपद्रवो आदि का वर्णन किया है। अनावश्यक पाडित्य प्रदर्शन से स्तोत्र को बोझिल नही बनाया और न उसमे तार्किकता, दार्शनिकता, वैराग्य या आध्यात्मिकता की ही पुट लगाई है। दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्र (११ वी शती) ने इस स्तोत्र को "महाव्याधिनाशक" बताया तो श्वेताम्बराचार्य प्रभाचन्द्रसूरि (१३ वी शती) ने इसे 'सर्वोपद्रव हर्त्ता' बताया। वस्तुत यह स्तोत्र मान्त्रिक शक्ति से अद्भुतरूप मे सम्पन्न है। इसके प्रत्येक पद्य के साथ एक-एक ऋद्धि मन्त्र यन्त्र एव महात्म्य सूचक आख्यान सम्बद्ध हैं। इसके पूजन-पाठ एव उद्यापन भी रचे गये हैं। स्तोत्र की उत्पत्ति विषयक कथाएँ भी उसके चमत्कारित्व की द्योतक हैं। जैन परम्परा के सभी सम्प्रदायो उपसम्प्रदायो मे यह सर्वाधिक लोकप्रिय स्तोत्र है। अनगिनत जैन स्त्री पुरुष तो इसका नित्य नियमत पाठ भक्ति पूर्वक करते ही हैं, अनेक जैनेतर व्यक्ति भी इससे प्रभावित हैं। इसमे जो अमृत भरा है, उसका पान करके भिन्न धर्मी पण्डित गण भी बारबार शिर सचालन करते हैं और मुग्ध हो जाते हैं। स्तोत्र का पाठ या आराधन कब और कैसे किया जाय इसके नियम भी प्रचलित हो गये हैं।[2]

---

१ देखिये—प० अमृतलाल शास्त्री द्वारा सपादित-अनुवादित भक्तामर स्तोत्र, द्वि० स०, वाराणसी १९६९ ई० प्रस्तावना पृ० १३-१५।

२ अमृतलाल शास्त्री वही पृ० ४-५। नाथूराम प्रेमी—आदिनाथ स्तोत्र षष्ठावृत्ति बम्बई १९२३ भूमिका पृ० २।

मैक्समूलर, कीथ, वेवर, गिरनाट, जैकोवी, विन्टरनित्स, शालोटक्राउजे जैसे प्रकाण्ड युरोपीय प्राच्यविदो तथा प० दुर्गाप्रसाद काशीनाथ शर्मा, गौरीशकर हीरानन्द ओझा, वलदेव उपाध्याय, भोलाशकर व्यास जैसे सस्कृतज्ञ भारतीय मनीषियो ने मानतुङ्ग की इस अमरकृति की उन्मुक्त प्रशसा की है। जर्मन विद्वान डा०—हर्मन जैकोवी ने १८७६ ई० मे भक्तामर एव कल्याण मन्दिर का जर्मन भाषा मे अनुवाद एव सम्पादन किया था। और १६३२ मे प्रो० एच० आर० कापडिया द्वारा सपादित उक्त स्तोत्रो के अग्रेजी सस्करण की प्रस्तावना लिखी थी। उनका कहना है कि[१] स्तोत्र साहित्य जैन भारती का अति विस्तृत अग है। विभिन्न भाषाओ एव विविध शैलियो मे रचित अनगिनत जैन स्तोत्रों मे मानतुग कृत भक्तामर स्तोत्र ने अनेक शताब्दियों मे सर्वोपरि स्थान प्राप्त किया हुआ है और इस सम्बन्ध मे समस्त जैन एकमत है। वस्तुत अपने भक्तिभाव प्रवणता एव रचना सौन्दर्य के कारण यह स्तोत्र इस महान लोकप्रियता का पूर्ण अधिकारी है। यद्यपि मानतुग ने क्लासिकल सस्कृत काव्य की अलड्कृत शैली मे रचना की है, तथापि उन्होंने स्वय को ऐसी दुरुह काल्पनिक उडानो एव शाब्दिक प्रयोगो मे बचाया है जिनमे काव्य का रस अलकारो के जाल मे ओझल हो जाता है। अत सस्कृत काव्यो के अभ्यासी पाठको के लिए मानतुग के पद्य सहज सुबोध है। एक उत्तम भक्तिकाव्य होने के अतिरिक्त, भक्तामर स्तोत्र का स्वरूप एक

---

१ Jain hymnology is a rather extensive branch of their literature yet among the almost numberless productions of ecclesiastical muse Mantunga's Bhaktamar has held, during many centuaries, the foremost rank by the unenimous cousent of the Jains And it fully deserves its great popularity by its religious pathos and the beauty of the dection Though Mantung writes on the flowery style of classical sanskrit poetry, still he avoids laboured conceits and verbal artifices as such Alankars' are apt to obscure the Ras and his Verses are, as a rule, easily understood by those accustomed to Read sanskrit kavyas Being a work of devotion the Bhaktamar has also the character of a prayer for help in the dangers and trials under which men suffer It is perhaps this particular trial which greatly endeared the Bhaktamar to the heart of the faithful

ऐसी विनती का भी है जिसका आश्रय नाना आपद-विपदाओं, भयो एव परीक्षाओं से त्रस्त मनुष्य अपनी सहायतार्थ लेते हैं। सभवतया अपनी इस विशेषता के कारण ही भक्तामर स्तोत्र विशेष रूप से भक्तों का ऐसा प्रिय कण्ठहार हुआ।" प्रो० विन्टरनित्स के अनुसार[1] धार्मिक भक्ति एव मान्त्रिक शक्ति, दोनों ही दृष्टियो मे मानतुग कृत भक्तामर एक सर्वाधिक प्रसिद्ध स्तोत्र है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायों मे इसकी विपुल ख्याति है। इस विद्वान् ने स्तोत्र के कई पद्यों के सुन्दर अग्रेजी पद्यानुवाद देकर उसको काव्य सुषमा एव भाव गाम्भीर्य को रेखांकित किया है, तथा बताया है कि १४वीं शती मे भी लोग इस स्तोत्र का मान्त्रिक प्रयोग करते थे, और इस स्तोत्र के अनुकरण पर कई अन्य स्तोत्र भी रचे गये।

उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त, वृत्ति व्याख्या, टीका, पद्यानुवाद, गद्यार्थ, पादपूर्ति काव्य, अनुकरण पर रचे गये स्तोत्र मन्त्र-यन्त्र, आख्यायिका कथादि रूप जितना विपुल एव विविध साहित्य गत् लगभग एक सहस्र वर्षों में भक्तामर स्तोत्र का लेकर रचा गया है, उतना किसी अन्य स्तोत्र पर नहीं रचा गया है, उतना किसी अन्य स्तोत्र पर नही रचा गया। अत मानतुग की इस कालजयी कृति का महत्त्व एव माहात्म्य स्वत सिद्ध है।

नाम और श्लोक संख्या

स्तोत्र के प्रथम श्लोक के प्रथम पद के आधार पर उसका सर्व प्रसिद्ध एव प्रचलित नाम 'भक्तामर-स्तोत्र' हुआ।[2] प्रथम श्लोक के युगादौ और द्वितीय श्लोक के 'प्रथम जिनेन्द्र' पदों को लेकर इसे 'आदिनाथ स्तोत्र' 'ऋषभ-स्तोत्र' भी माना जाता रहा है। परन्तु यदि प्रथम जिनेन्द्र' का अर्थ जिनेन्द्रो अर्हन्तो में प्रमुख अर्थात् तीर्थंकर देव कर लिया जाय और क्योकि प्रत्येक तीर्थंकर का युग उस तीर्थंकर के जन्म से प्रारम्भ होता है, तो यह सामान्यतया सभी तीर्थंकरो या जिनेन्द्रो की स्तुति है। वैसे भी स्तोत्र मे कहीं भी किसी भी तीर्थंकर विशेष का नामादि परिचय सूचक कोई स्पष्ट सकेत नहीं है—भक्त अपने इष्टदेव तीर्थंकर भगवान या जिनदेव का ही स्तवन करता है, उसे एक ही उपास्य एव आराध्य सत्ता मान कर।

---

१ Winternit's—History of Indian Literature, Part 2, page 549

२ देवागम, स्वयभू, विषापहार, एकीभाव, कल्याणमदिर आदि अन्य अनेक प्रसिद्ध स्तोत्रो की भाँति ही।

इस स्तोत्र की श्लोक सख्या के विवाद मे भी कुछ विवाद है। दिगम्बर परम्परा में प्राय प्रारभ से ही ४८ श्लोकी पाठ (जो प्रस्तुत सस्करण मे अपनाया है) मान्य एव प्रचलित चला आया है। उक्त परम्परा का भक्तामर सम्बन्धी जितना भी साहित्य उपलब्ध है, उससे यह तथ्य समर्थित है। श्वेताम्बर स्थानक वासी एव श्वेताम्बर तेरापथी सम्प्रदायो मे भी प्राय वही ४८ श्लोकी पाठ मान्य किया जाता है। केवल श्वेताम्बर मन्दिरमार्गी सम्प्रदाय मे ४४ श्लोकी पाठ मान्य है जिसमे ३२,३३,३४,३५ सख्यक चार पद्यों को छोड दिया गया है।

जैकोवी प्रभृति युरोपीय प्राच्यविदो को ४४ श्लोकी श्वेताम्बर पाठ ही तथा तत्सम्बन्धी श्वेताम्बर अनुश्रुतिया ही उपलब्ध हुई—उनके सामने ४८ श्लोकी दिगम्बर पाठ तथा तत्सम्बन्धी अनुश्रुतियो का विकल्प ही नही था, अतएव उनकी भक्तामर विषयक ऊहापोह का आधार श्वेताम्बर मान्यताएँ हीं रहीं। जैकोवी ने दिगम्बर पाठ के उन अतिरिक्त चार पद्यो पर तो कोई विचार किया ही नही—वे उमके सामने थे ही नही—श्वेताम्बर पाठ के भी श्लोक ३९ और ४३ (दिगम्बर पाठ ४३ और ४७) को भी प्रक्षिप्त अनुमान कियां। विद्वान् के मतानुसार वे मानतुग द्वारा रचित नही हो सकते और मूल रचना मे पीछे से जोडे गये लगते है।[1] इस प्रकार मूल भक्तामर स्तोत्र ४२ श्लोकी ही रह जाता है।

दूसरी ओर, भक्तामर की कतिपय प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो मे चार-चार श्लोको के ४ विभिन्न गुच्छक प्रचलित ४८ श्लोको से अतिरिक्त प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार उनमे से प्रत्येक पाठ ५२ श्लोकी हैं, और कुल प्राप्त श्लोको की सख्या ६४ हो जाती है। किन्तु इन अतिवित १६ श्लोको के सम्वन्ध मे प्राय सभी मनीषियो का यह मत है कि भाषा, अर्थ, रचनाशैली, पुनरुक्ति दोष आदि अनेक कारणो से वे श्लोक मानतुगकृत नहीं हो सकते, कालान्तर मे विभिन्न लोगो ने घडकर सम्मिलित कर दिये हैं।[2]

---

१ भक्तामर—कल्याणमन्दिर—नमिऊन के १९३२ मे प्रो० एच० आर० कापडिया द्वारा सम्पादित सस्करण का डा० हर्मन जैकोबी द्वारा लिखित प्राक्कथन (अग्रेजी)।

२ (क) मिलापचद रतनलाल कटारिया—जैन निवन्ध रत्नावली, पृ० ३३९-३४१।

(ख) अमृतलाल शास्त्री—भक्तामर स्तोत्र प्रस्तावना पृ० ११।

(ग) अजित कुमार शास्त्री—भक्तामर स्तोत्र (अनेकान्त १ नव० १९३८ पृ० ७१।

होने में कोई भी बाधा नहीं है, वे असंबद्ध या असंगत भी नहीं हैं, और इनके बिना स्तोत्र अपूर्ण और सदोष रह जाता है। उन चारों श्लोकों में ऐसी भी कोई बात नहीं है कि किसी भी साम्प्रदायिकता की कोई ठेस लगती हो। इससे क्या अन्तर पड़ता है कि किस सम्प्रदाय में इस स्तोत्र की आपेक्षिक प्राचीनता सौ पचास वर्ष कम या अधिक है।

अस्तु हमारी समझ में तो भक्तप्रवर मानतुंग का यह अप्रतिम स्तोत्र जैन मात्र को भावनात्मक एक सूत्रता में बांधने वाली एक उत्तम एवं रुचिर कड़ी है। ऐसी जितनी चीजें जो सबको समान रूप से ग्राह्य हों, जितनी भी उजागर की जायें और प्रचार में लाई जायें, जिन शासन के लिए श्रेयस्कर होगा, ऐसी सर्वग्राह्य चीजों के विषय में साम्प्रदायिक दृष्टि से सोचना समझना भी शायद ठीक न होगा।

आविर्भाव

भक्तामर स्तोत्र का आविर्भाव कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में अनुश्रुतियां प्रचलित हैं —

१—धाराधीश भोजदेव परमार (१००८-१०६० ई०) के समसामयिक धारा निवासी दिगम्बराचार्य महापंडित प्रभाचन्द्र ने 'क्रियाकलाप' ग्रन्थ की अपनी टीका की उत्थानिका में लिखा है—"मानतुंगनामक सिताम्बरो महाकवि निर्ग्रन्थाचार्यवर्यैरपनीत महाव्याधिप्रतिपन्न निर्ग्रन्थमार्गो भगवन् किं क्रियतामिति ब्रुवाणो भगवत परमात्मनो गुणगणं स्तोत्रं विधीयतामित्यादिष्ट' भक्तामर इत्यादि।" अर्थात् मानतुंग नामक श्वेताम्बर महाकवि को एक दिगम्बराचार्य ने महाव्याधि से मुक्त कर दिया तो उसने दिगम्बर मार्ग ग्रहण कर लिया और पूछा कि भगवन्! अब मैं क्या करूं? आचार्य ने आदेश दिया कि परमात्मा के गुणों को गूंथ कर स्तोत्र बनाओ। फलत मानतुंगमुनि ने भक्तामर स्तोत्र की रचना की (देखिये अनेकान्त फरवरी १९६६ पृ० २४५)

२—श्वेताम्बराचार्य प्रभाचन्द्रसूरि ने अपने प्रभावक चरित (१२७७ ई० के अन्तर्गत 'मानतुंग सूरि चरितम्' (सिंघी ग्रन्थमाला, १९४०, पृ० ११२-११७) में लिखा है कि वाराणसी नरेश श्री हर्षदेव के राज्य में धनदेव श्रेष्ठि का पुत्र मानतुंग था, जिसने संसार से विरक्त होकर दिगम्बराचार्य चारुकीर्ति से मुनि दीक्षा ली और महाकीर्ति नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसकी बहिन श्वेताम्बर साध्वी थी, जिसकी प्रेरणा से उसने दिगम्बर मत का परित्याग करके जिनसिंहसूरि से श्वेताम्बर साधु की दीक्षा ली, कालांतर में सूरि पद प्राप्त

५—ब्रह्म रायमल्ल वर्णी कृत 'भक्तामर स्तोत्र वृत्ति' (१६१० ई०)[1] मे कथावतार के रूप मे दी गई कथा का घटना स्थल धारा नगरी है, राजा का नाम भोज है, राजा के जैन मन्त्री का नाम मतिसागर है। राज सभा के कवि कालिदास द्वारा कालिका के आराधन से अपने कटे हुए हाथ पैरो को जोड़ना, कवि माघ द्वारा सूर्योपासना से अपना कुष्ट दूर करना और कवि भारवि द्वारा अम्बिका की अराधना से अपना भग्नोदर ठीक करना जैसे चमत्कारों से राजा-प्रजा के अत्यन्त प्रभावित होने पर मन्त्री ने अपने गुरु मुनिराज मानतुग से, जो उस समय विहार करते हुए धारा आ पहुँचे थे, राजसभा मे कोई अद्भुत चमत्कार दिखाकर धर्म की प्रभावना करने की प्रार्थना की। फलत उन्होंने ४८ साकलों से स्वय को खूब जकड़वा कर और एक के भीतर एक ताला बद ४८ कोठरियो मे बदी करवा कर भक्तामर स्तोत्र की रचना की जिसके प्रभाव से वह सब ताले टूट गये और मुनिराज बधनो से मुक्त होकर राज सभा मे आ विराजे। धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना हुई।

६—भट्टारक विश्वभूषण कृत भक्तामर चरित्र[2] (१६६५ ई०) मे वर्णित कथा के अनुसार राजा भोज है, घटनास्थल उज्जयिनी है, राजकवि कालिदास है। इसी नगर मे नाममाला के कर्त्ता जैन महाकवि धनञ्जय रहते है जो नगरसेठ सुदत्त के पुत्र मनोहर को विद्याभ्यास कराते हैं। धनञ्जय के गुरु कर्णाटक निवासी दिगम्बराचार्य मानतुग है। राजसभा मे कालिदास और धनञ्जय के बीच शास्त्रार्थ होता है। अन्तत मानतुग बुलाये जाते है और उनके द्वारा ४८ श्लोकी भक्तामर स्तोत्र की रचना के फल स्वरूप बधन मुक्त होने का ऊपर जैसा चमत्कार वर्णित है।

कवि विनोदी लाल, भ० सुरेन्द्रभूषण, नथमल बिलाला, जयचंद छावड़ा आदि कई अन्य विद्वानो ने भी भक्तामर स्तोत्र के अवतार की कथा दी है[3], किन्तु वह उपरोक्त न० ५ व ६ जैसी ही प्राय है।

इन सभी विभिन्न कथाओं मे समान तत्त्व मात्र इतना ही है कि मानतुग

---

१ प० उदयलाल काशलीवाल द्वारा अनुवादित तथा जैन साहित्यक प्रसारक कार्यालय बम्बई से प्रकाशित चतुर्थ सस्करण १९३०—"ब्र० रायमल्ल कृत सस्कृत भक्तामर कथा का हिन्दी रूपान्तर।"

२ यह कथा प० नाथूराम प्रेमी ने भक्तामर स्तोत्र (१९१६ ई०) की भूमिका मे प्रकाशित की थी, अन्यत्र भी कई जगह प्रकाशित है।

३ देखिये शोधाक २९ पृ० २१९।

नाम के एक महान जिनभक्त, महा कवि एव मुनिराज ने ऐसे अद्वितीय भक्तामर स्तोत्र की रचना की थी जिसके चमत्कारित्व की ख्याति ११ वीं शती ई० से ही पर्याप्त हो गई थी और दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही सम्प्रदायों में वह उत्तरोत्तर लोकप्रिय होता गया। स्तोत्र के प्रभाव से स्तोता की बन्धन मुक्ति होना भी समान रूप से मान्य किया गया। यह घटना किसी राजा की राजसभा में हुई हो, यह सभव है। इसके अतिरिक्त प्राय अन्य सब तथ्य घटना स्थल, राजा का नाम, अन्य जैन गुरुओ एव श्रावको के नामादि, जैनेतर कवियो आदि के नाम आदि, बहुधा परिचित होने पर भी समय एव स्थानादि के इतने अतर लिए हुए है कि उनकी ऐतिहासिकता विश्वसनीय नहीं है। जैकोबी, विटरनित्स, प० दुर्गाप्रसाद आदि प्राय सभी प्राच्यविद और अनेक जैन विद्वान भी प्राय इसी मत के है। वस्तुत, जैसा कि डा० हर्मन जैकोबी का कहना है कि भक्तामर स्तोत्र के अवतार विषयक कथानको में से क्योंकि एक भी किसी अन्य से अधिक प्रामाणिक नही है, उनके नाम-समयादि विषयक पारस्परिक विरोध यह सूचित करते है कि उक्त कथानको का कोई ठोस ऐतिहासिक आधार नही था। जब तक वैसा कोई आधार अथवा प्राचीन ग्रंथो मे स्पष्ट पूर्वापर उल्लेख प्राप्त नहीं होते, हम यही कह सकते हैं कि उक्त अनुश्रुतियो के प्रारम्भ काल तक मानतुग की ख्याति एक प्राचीन जैनाचार्य के रूप मे स्थापित हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त 'भक्तामर' तो स्वय ऐसा अमूल्य रत्न है जिसे चमकाने के लिये उसे काल्पनिक कथानको की खोटी धातु मे जडने की आवश्यकता ही नही है।

मानतुंग

मानतुग नाम के जिन विभिन्न जैन गुरुओ आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं, वे निम्नोक्त है —

१—मानतुगसूरि— जिनका उल्लेख 'सातवाहन के सभासद' के रूप मे मुनि रत्नसूरि कृत अममस्वामि चरित (११६५ ई०) की प्रशस्ति मे किया गया है। 'सातवाहन' से सतसईकार हाल या शालिवाहन का अभिप्राय हो तो इनका समय प्रथम शती ई० होगा। यो सात वाहनो का राज्य ३री शती के अन्त तक चला है अत इन मानतुग का समय (तीसरी शती ई० भी हो सकता है।

२—मानतुगसूरि—जो श्वेताम्बर खरतर गच्छ पट्टावलि मे न० २३ पर उल्लिखित हैं और मानदेव के शिष्य तथा वीर के गुरु थे। इस पट्टावलि

में चद्रकुल के सस्थापक चन्द्र का न० १८ है और समन्तभद्र का न० १६ है। क्योकि मानदेव का समय २५० ई० के लगभग माना जाता है, इन मानतुग का समय ३०० ई० के लगभग हुआ।

(३) मानतुगसूरि—जो तपागच्छ पट्टावलि मे न० २० पर है उल्लिखित हैं उसमे समन्तभद्र का न० १६ है और चन्द्र का न० १५—इसमे भी गुरु मानदेव और शिष्य वीर ही हैं।

(४) मानतुगसूरि—जो देवर्धिगणी (४५३ या ४६६ ई०) के सम सामयिक वीर के गुरु थे—अत उनका समय लगभग ४५० ई० है।

(५) मानतुग—जिन्हें एक पट्टावलि में 'मालवेश्वर चौलुक्य वयरसिंह देवमात्य' कहा है। मालव नरेशों मे चौलुक्य वयरसिंह तो कोई नही हुआ, किन्तु परमार वश मे दो वैरिसिंह हुए हैं। वैरिसिंह प्रथम धारा के परमार वश सस्थापक कृष्ण उपेन्द्र का उत्तराधिकारी था। कृष्ण उपेन्द्र एक अनुश्रुति के अनुसार ७४३ ई० मे और दूसरी के अनुसार ८२५ ई० मे हुआ। अतएव वैरिसिह प्र० का तथा उसके अमात्य मानतुग का समय ७५० ई० या ८५० ई० के लगभग हुआ। वैरिसिह द्वितीय ६५० ई० मे हुआ है—यदि उल्लिखित मानतुग इसके आमात्य रहे तो उनका समय ६५० ई० के लगभग हुआ।

(६) मानतुग—जो मोहनविजय कृत मानतुग—मानवती राग और तिलकविजय कृत मानतुग—मानवती चरित का नायक है, और अवन्ती का राजा था।

(७) मानतुग—भयहर अपरनाम नमिऊणस्तोत्र (प्राकृत) के कर्त्ता। स्तोत्र पार्श्वनाथ की स्तुति रूप है और अतिम पद्य मे मानतुग की छाप है।—

'जो पढई जोय निसुणई ताण कइणो य माणतुगस्स' इसे भक्तामरकार की ही कृति प्राय मान लिया गया है। किन्तु यह अनुमान मात्र ही है।

(८) मानतुग सूरि—चतुगच्छीय अथवा वटगच्छीय शीलगुणसूरि के शिष्य, पूर्णिमा शाखा के गच्छपति, मलयप्रभसूरि (१२०३ ई०) के गुरु, विनयचन्द्रसूरि १२२६-१२८८ ई०) के दादा गुरु और 'सिद्ध जयन्ती' (अपरनाम जयन्ती चरित्र, जयन्ती प्रकरण, जयन्ती प्रश्नोत्तर) के रचयिता। इन मानतुगसूरि का समय १२०० ई० के लगभग होना चाहिये।

(६) मानतुगसूरि—चन्द्रगच्छीय जो रत्नप्रभसूरि के शिष्य थे और जिन्होने १२७५ ई मे श्रेयांसनाथ चरित् की रचना की थी।

(१०) मानतुग—भक्तामर स्तोत्र के रचयिता।

उपरोक्त दश मानतुगो मे से न० ८ और ६ इतिहास सिद्ध हैं और उनमे

मे इनका उल्लेख किया है या किसी अन्य का, यह कहा नही जा सकता। मातङ्ग शब्द से उसके चाण्डाल होने की किवदन्ती कल्पना मूलक लगती है। 'दिवाकर' शब्द प्रशसा सूचक भी हो सकता है, किन्तु क्योकि एक प्रमुख श्वेताम्बराचार्य 'दिवाकर' उपनाम से प्रसिद्ध होगये तो मानतुङ्ग के साथ भी कुछ लोगो ने 'दिवाकर' शब्द जोड दिया। लेखक की असावधानी से मानतुङ्ग का मातङ्ग हो गया हो तो राजशेखर के मातग मानतुग हो सकते है। एक वीरदेव क्षपणक नामक दिगम्बर मुनि का भी हर्षवर्धन (६०६-६४७ ई०) के समय मे और वाण का मित्र होना पाया जाता है।[1] सभव है मानतुङ्ग उक्त वीरदेव के शिष्य या गुरु रहे हो। धनञ्जय के भी वह गुरु रहे हो सकते हैं। अतएव भक्तामरकार मानतुङ्ग मुनि का समय लगभग ६००-६५० ई माना जा सकता है।

भक्तामर-साहित्य

भक्तामर स्तोत्र विषयक साहित्य अति विपुल एव वैविध्य पूर्ण है।

१—लगभग ७०० ई० मे १३०० ई० पर्यन्त के कई सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की कतिपय रचनाओं मे भक्तामरस्तोत्र का परोक्ष या प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टि गोचर होता है।

२—क्रिया कलाप टीका (ल० १०२५ ई०) प्रभावक चरित (१२७७ ई०) प्रबन्ध चिन्तामणि (१३०४ ई०) प्रबन्धकोश (१३४८ ई०) गुणाकर कृत भक्तामर वृत्ति एव कथा (१३७० ई०) ब्र० रायमल्ल कृत भक्तामर स्तोत्र वृत्ति १६१० ई०) भ० विश्वभूषण कृत भक्तामर चरित्र (१६६५ ई०) विनोदीलाल कृत भक्तामर चरित कथा (१६९० ई०) भ० सुरेन्द्र भूषण कृत भक्तामर कथा (१७४० ई०) नथमल विलाला एव लालचन्द्र कृत भक्तामरस्तोत्र ऋद्धि मत्र काव्य छन्द कथा (१७७२ ई०) जयचन्द छावडा कृत भक्तामर चरित (१८१३ ई०) आदि कई ग्रथों मे मुनि मानतुङ्ग द्वारा भक्तामर स्तोत्र के आविर्भाव एव चमत्कार की कथा दी है। गुणाकर ने २६ पद्यो के माहात्म्य की सूचक प्रथक २ छब्बीस कथाएँ भी दी हैं। उसके बाद के लेखको ने अडतालीसों पद्यो की प्रथक २ कथाएँ दी हैं। प्रत्येक श्लोक से सम्बद्ध ऋद्धि मत्र और यत्र भी रायमल्ल विलाला, आदि कई लेखको ने दिये है। शुभशीलगणि (१४५२-६४ ई०) ने भी एक भक्तामर स्तोत्र महात्म्य लिखा है।

---

१ डा० ज्योतिप्रशाद जैन, वही, पृ० १६९

३—भक्तामर-स्तवन-पूजन साहित्य मे भट्टारक सोमसेन का भक्तामरोद्यापन (१४८४ ई०), भ० ज्ञानभूषण कृत भक्तामरोद्यापन (१५८० ई०) श्री भूषण शिष्य ज्ञानसागर कृत भक्तानर पूजन (१६१० ई०) रत्नचन्द्र गणि कृत भक्तामर स्तव (१६१७ ई०) ब्रह्म ज्ञानसागर की भक्तामर-स्तवन-पूजन (१६२५ ई०) यह ज्ञानसागर भ० लक्ष्मीचन्द्र के शिष्य थे। आदि उल्लेखनीय है। मुनि मेरुचन्द्र की भी एक भक्तामर स्तोत्र पूजन हैं।

४—भक्तामर स्तोत्र की वृत्तियो-टीकाओ मे— गुणाकर (१३७० ई०) की वृत्ति, मुनिनागचन्द्र की पचस्तोत्र टीका के अतर्गत भक्तामर स्तोत्र टीका (१४७५ ई०) ब्र० रायमल्ल (१६१० ई०) की वृत्ति, पाडे हेमराज (१६५२ ई०) की गद्य वचनिका और प० शिवचद्र (१८३४ ई०) की पच स्तोत्र टीका प्रसिद्ध हैं। आधुनिक बीसियो हैं।

५—भक्तामरस्तोत्र के पुरातन हिन्दी पद्यानुवादो मे सर्व प्रसिद्ध पाडे हेमराज का है। प० घनराज व अन्य कई विद्वानो के भी हिन्दी पद्यानुवाद मिलते हैं। गुजराती और मराठी मे भी स्तोत्र के पद्यानुवाद हुए बताये जाते हैं उर्दू भाषा मे गुलजारे तखय्युल या रूबाइयाते दरख्शा शीर्षक से बा० भोलानाथ दरख्शा ने भक्तामर स्तोत्र का सुन्दर अनुवाद १६२५ ई० मे किया था। जर्मन भाषा मे डा० जैकोबी ने और अग्रेजी मे शार्लोट क्राउजे, एच० आर कापडिया आदि कई विद्वानो ने पद्यानुवाद किये हैं। आधुनिक हिन्दी मे गिरधर शर्मा, उदयलाल काशलीवाल, नाथूराम प्रेमी, नाथूराम डोगरीय आदि के प्रारभिक पद्यानुवाद हैं। तदनन्तर पचासो अन्य रचे गये।

६—भक्तामर की पादपूर्ति या समस्या पूर्ति के रूप मे भी सस्कृत मे लगभग बीस पच्चीस काव्य रचे गये[1] इनमे सिहनघ के मुनि धर्मसिह के शिष्य मुनि रत्नसिह का 'प्राणप्रिय काव्य' अति सुदर है। यह ४८ श्लोकी काव्य १२ वी १३ वी शती मे रचा गया प्रतीत होता है यह नेमि भक्तामर भी कहलाता है। अन्य उल्लेखनीय पादपूर्ति काव्य हैं—ऋषभ-भक्तामर (समय सुन्दर) शान्ति भक्तामर (लक्ष्मी विमल), नेमि भक्तामर (भावप्रभ सूरि), दादा पार्श्व भक्तामर (राज सुन्दर), पार्श्व भक्तामर (विनय लाभ), वीर भक्तामर (धर्मवर्द्धन), सरस्वती भक्तामर (धर्मसिह), जिन-भक्तामर (अज्ञात) आदि। आधुनिक युग मे भी मुनि आत्मराय का आत्म-भक्तामर,

---

१ अगरचन्द नाहटा—भक्तामर स्तोत्र के पादपूर्ति रूप स्तव-काव्य (श्रमण सितम्बर १६७० पृ० २५-२६)

चतुरविजय का सूरीन्द्र भक्तामर, विचक्षणविजय का श्रीवल्लभ-भक्तामर, मुनि कानमल का कालू भक्तामर आदि उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त प० गिरधर शर्मा का समग्र-पाद पूर्ति काव्य और प० लालारामजी शास्त्री की भक्तामर शतद्वयी पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं।

७—विभिन्न दिगम्बर एव श्वेताम्बर शास्त्र भडारो मे भक्तामरस्तोत्र की सैकडो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती है, जिनमे से कुछ की प्राचीनता १२ वी १३ वी शती ई० तक पहुँचती है। स्तोत्र की कई मध्य कालीन प्रतिया सचित्र भी हैं और अति सुन्दर है (देखिये श्रमण फरवरी ७१ पृ० १३-१६ और मई ७३ पृ० २१-२४—नाहटाजी के लेख) पडित कटारिया जी ने अपने निवध मे स्तोत्र के कई पाठो के सशोधन भी सुझाये हैं।

८—आधुनिक युग मे भक्तामर स्तोत्र सुप्रसिद्ध काव्य-माला के सप्तम गुच्छक मे प्रकाशित हुआ था। पीटरसन और भडारकर की रिपोर्टों तथा वेलङ्कर के जिनरत्नकोश मे उसका उल्लेख है। जैनस्तोत्र सग्रह, जैन स्तोत्र सदोह, जैनस्तोत्र समुच्चय जैसे कई सकलन निकले हैं, जिन सब मे भक्तामर स्तोत्र को उचित स्थान दिया है। जर्मन और अग्रेजी भाषाओ मे भी भक्तामर स्तोत्र के स्तरीय अनुवाद, विवेचन आदि प्रकाशित हो चुके हैं। गुजराती, मराठी, आदि भाषाओ मे भी हुए है। हिन्दी भाषा मे तो भक्तामर स्तोत्र के सैकडो सस्करण, मूल मात्र, पद्यानुवाद, अथवा गद्यानुवाद, व्याख्या आदि सहित कथाएँ, मत्र-यत्र सहित पूजन उद्यापन आदि रूप से प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रस्तुत-संस्करण

स्तोत्रराज 'भक्तामर' के काव्य-माधुर्य, साहित्यिक सुषमा, भाव गाभीर्य, महत्व और माहात्म्य का सम्यक् परिचय पाठको को प्रस्तुत सस्करण 'सचित्र भक्तामर रहस्य' के अवलोकन से होगा। विद्वद्वर्य प० कमल कुमार जी शास्त्री वडे अध्यवसायी, अनुभवी, धार्मिक एवं कवि हृदय मनीषी हैं। उन्होंने वडे परिश्रम से इस सस्करण को सर्वांग पूर्ण बनाने का सत्प्रयास किया है। प्राय कोई भी अग या पक्ष छूटने नही पाया है। एतदर्थ वह एव उनके सहयोगी आशुकवि श्री फूलचन्द जी पुष्पेन्दु भी बधाई के पात्र हैं। हमने भी इस प्रस्तावना रूपी 'आविर्भाव' मे जैनी भक्ति, जैन स्तोत्र साहित्य, भक्तामर और उसके रचयिता आचार्य मानतुङ्ग, भक्तामर सबधी साहित्य आदि उपयोगी विषयों पर क्वचित् सक्षेप मे ऊपर जो विवेचन किया है, आशा है,

वह भी स्तोत्र के मूल्यांकन मे सहायक होगा। हम मित्र वर पंडितजी के आभारी हैं कि उनके स्नेह पूर्ण आग्रह का सुयोग पाकर इस मस्करण की उपयोगिता वृद्धि मे योग दे मके। इस ग्रन्थ रत्न के प्रकाशन का भार सहर्ष वहन करके लाला भीकमसेन रतनलाल जी जैन दिल्ली निवासी ने धर्म प्रभावना का जो कार्य किया है उसके लिये वह भी धन्यवादार्ह ह।

आशा है प्रस्तुत सचित्र भक्तामर रहस्य के प्रकाशन से इन महान स्तोत्र का लोक प्रियता एव प्रचार मे वाछनीय अभिवृद्धि होगी।

ज्योति निकुज
चार वाग, लखनऊ-१
१ जून १९७७ ई०

—(डा०) ज्योतिप्रशाद जैन

रहस्योद्‌घाटन

जो परम गुप्त, नितान्त छिपा हुआ, अत्यन्त भेदपूर्ण, गौण और अव्यक्त तो अवश्य है, परन्तु उतनी ही सत्यता से जो त्रैकालिक अस्तित्वमयी अभेद सहज तथा परम प्रकट भी है—ऐसे मुख्य गूढ तत्त्व को—अतर के मर्म को—"रहस्य" कहते हैं।

तिल मे तेल बास फूलन मे
त्यो घट मे घट नायक गायो

की भाँति उस अमर तत्त्व को देखा भी जा सकता है। परन्तु चाक्षुष नेत्रो से नही, वल्कि स्व-समयवर्ती साधनाजन्य अनुभूति से अथवा क्रमवर्ती प्रयोग जन्य स्वानुभूति से। द्रव्यदृष्टि वाले तो उसका दर्शन सदैव करते हैं। पर्याय दृष्टि वाले को वह हमेशा अगोचर ही है। क्योकि पर्यायदृष्टि वाला देखने वाले को नही देखता, दिखने वाले को ही देखता है। स्वयदृष्टा वनकर नही देखता वरन दृश्य वन कर देखता है। वस देखने ही देखने मे अतर है। जो स्वय दर्शनमयी है—वह भला दूसरो को क्या देखेगा ? दूसरे ही उसमे दिखते रहें तो दिखते रहे। दर्पण हमको देखने नही आता। हम ही दर्पण को देखने जाते हैं और दिख जाते हैं। यही वह दार्शनिक रहस्य है जिसे आध्यात्मिक मर्म के नाम से पुकारा जाता है। इसी रहस्य के उद्‌घाटन के लिए जिनेन्द्र और गणधरो से लेकर इन्द्र वृहस्पति और आचार्य अपनी पूरी सरस्वती उडेलते रहे, फिर भी वह तत्व वाणी विकल्प की पकड से वाहिर ही रहा। इसीलिए तो कहना पडा कि—

"गणधर इन्द्र न कर सकें, तुम विनती भगवान।"

तो भी केवल रहस्य के समीचीन दर्शनाभिलाषियो विवेकियो और अनुभवियो ने उससे सदैव ही साक्षात्कार किया है। क्योकि वे मन वचन कर्म की पर्तो को भेद कर उनसे परे तत्त्व की, अनुभूति लेते रहे—अपने को देखते रहे और अपने मे डटे रहे। उसी परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार करने-कराने के लिए श्रीमदाचार्य मानतुङ्ग जी ने भाव केन्द्रित भक्तामर काव्य की वचनात्मक रचना की। इसमे उनकी आत्मीय एकाग्रता ने आत्मानुभूति का जो अतीन्द्रिय आनन्द उठाया वह हमें भी अभी भक्ति के क्षणो मे देने के लिए भक्तामर काव्य के रूप मे प्रस्तुत है। जिस रहस्य को आचार्यश्री ने भक्तामर काव्य

रचना के माध्यम से पाया उसी रहस्य को पाने के लिए यद्यपि हमने भी भक्तामर काव्य के आश्रय को अपनाया तो है परन्तु हम इतने विलम्बित मति है कि श्री मानतुङ्ग जी की सूत्रीय गभीर गिरा को झेलने मे हमारा आत्मीय पात्र सर्वथा असमर्थ रहा। फलत भाष्यो की अटवी मे उस रहस्य को खोजने निकले है। शायद किन्ही सम्यक् दृष्टियो विवेकियो और अनुभवी विद्वज्जनो को वह इसी माध्यम से वह मिल जावे।

इस प्रकार भक्तामर के गूढ तत्त्व को या रहस्य को उदघाटित करने का भरसक प्रयास तो हमने विविध प्रकार से अवश्य किया है परन्तु उसकी प्राप्ति अपनी अपनी आस्था और साधना पर ही निर्भर है। यही कारण है कि इस ग्रथ को हमने भक्ति-योग के साथ ही साथ ज्ञानयोग और कर्मयोग से भी समन्वित किया है। अर्थात् भावना-अराधना और साधना का केन्द्र बिन्दु मानकर ही हमने **"सचित्र भक्तामर रहस्य"** नाम से यह महान् ग्रथ सम्पादित किया है।

भक्ति क्या है? इसका विशद विवेचन विद्यावारिधि इतिहास रत्न डा० ज्योतिप्रशाद जी जैन ने इसी ग्रन्थ के प्रारभिक पृष्ठो मे "आविर्भाव" शीर्षक से किया है। अतएव उसकी पुनरावृत्ति न करके जिनेन्द्र भक्ति के माहात्म्य को प्रदर्शित करने वाली कोटि २ सूक्तियो से केवल ८-१० श्लोक ही हम यहा उद्धृत कर रहे हैं—

विघ्नौघा प्रलय यान्ति शाकिनी भूत पन्नगा।
विष निर्विषता याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

जिनेन्द्रदेव की स्तुति करने से विघ्नो का समुदाय और शाकिनी-डाकिनी-भूत-प्रेत-सर्प आदि के भयकर उपद्रव सहसा नाश हो जाते हैं, यही नही वरन पिया हुआ विष भी निर्विषता को धारण करता है। इसी की पुष्टी षट्खडागम की धवला टीका मे की गई है—

विघ्ना प्रणश्यन्ति भय न जातु, न क्षुद्र देवा परिलघयन्ति।
अर्थान्यथेष्ठांश्च सवा लभन्ते, जिनोत्तमाना परिकीर्तनेन॥

जिनवर के गुणो का कीर्तन करने से विघ्न नाश होते है भय दूर भागता है, दुष्ट देवता आक्रमण नही करते और हमेशा अभीष्ट वस्तु की प्राप्त होती है।

दशभक्तयादि सग्रह मे पूज्यपादाचार्य ने कहा है—

यथा निश्चेतनाश्चिन्ता मणि-कल्प महीरुहा।
कृत्पुण्यानुसारेण तदभीष्ट फलप्रदा॥

तथाऽर्हंदावय श्चास्तरागद्वेष प्रवंतय' ।
भक्त भक्तयनुसारेण स्वर्ग-मोक्ष फल प्रदा ॥

यद्यपि चिन्तामणि रत्न तथा कल्पवृक्ष अचेतन है तथापि पुण्य-पुरुपो को उनके पुण्य के अनुसार विविध प्रकार के अभीप्सित फल देते है। तदनुसार वीतराग देव राग द्वेष रहित होते है, तो भी वे भक्तो को उनकी भक्ति के अनुसार स्वर्गमोक्ष के अनुपम सुख को देते है।

भक्तामर स्तोत्रकार श्री मानतुङ्गाचार्य ने कहा है —

आस्ता तव स्तवनमस्तसमस्तदोष-
त्वत्स कथापि जगता दुरतानि हन्ति ।
दूरे सहस्त्रकिरण कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥

प्रभो ! आपकी निर्दोष स्तुति तो दूर रहे, किन्तु आपकी पवित्र कथा का सुनना ही ससार के सब पापो को नाश कर देता है। ठीक ही तो है—सूर्य दूरातिदूर रहने पर उसकी किरणें सरोवरो मे कमलो को प्रफुल्लित कर देती है।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र मे श्री कुमुदचन्द्राचार्य जी कहते हैं—

त्व तारको जिन ! कथ भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्त ।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेव नून
मन्तर्गतस्य मरुत स किलानुभाव ॥

हे जिनेन्द्र ! जिस तरह अपने भीतर भरी हुई पवन के प्रभाव से चर्म-मसक पानी के ऊपर तैरती हुई किनारे लग जाती है, उसी तरह मन-वचन-काय से आपको अपने मन-मन्दिर मे विराजमान कर आप का ही चिन्तन करने वाले भव्यजन ससार सागर से विना वाधा के पार लग जाते हैं।

ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविन क्षणेन,
देह विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ।
तीव्र-नलादुपल - भावमपास्य लोके,
चामीकरत्व मचिरादिव धातुभेदा ॥

हे जिनेश ! जैसे ससार मे जिन धातुओं से सोना वनता है वे धातुएँ तेज अग्नि के ताव से अपने पूर्व पाषाण रूप पर्याय को छोड कर स्वर्ण वन जाती हैं वैसे ही आपके ध्यान से ससारी जीव क्षणमात्र मे तन त्याग कर परमात्मावस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

विषापहार स्तोत्र में महाकवि धनञ्जय जी कहते हैं—

तृणात्फलं यत्तदकिञ्चनाच्च,
प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः ।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रे—
र्नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥

जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति के माहात्म्य का सुफल संसार बन्धन से विलग होकर जन्म-मरण रहित परमात्मा का बन जाना है। भावशुद्धि से सांसारिक भोग सामग्री का मिलना उसी प्रकार है जैसा कि गेहूँ के खेत में बिना बोये घास फूस का उत्पन्न होना।

क्षत्रचूडामणि के रचयिता वादीभसिंह सूरि कहते हैं—

जन्म जीर्णाटवी मध्ये जनुषान्धस्य मे सती।
सन्मार्गे भगवत् भक्ति, र्भवितान्मुक्तिदायिनी ॥

हे प्रभो ! मैं जन्म रूपी जीर्ण जंगल में जन्मान्ध होकर परिभ्रमण कर रहा हूँ—ठोकरें खाता फिर रहा हूँ। अतएव सन्मार्ग दिखाने वाली आपकी भक्ति मेरे लिये समीचीन मुक्ति को देने वाली हो।

पद्मपुराण के रचयिता रविषेणाचार्य ने लिखा है—

वंदनं यो जिनेन्द्राणां, त्रिकालं कुरुते नरः ।
तस्य भाव विशुद्धस्य, सर्वं नश्यति दुष्कृतं ॥

जो पुरुष त्रिकाल जिनेन्द्रदेव की वन्दना नमस्कार करता है उसके परिणाम अत्यन्त निर्मल हो जाते हैं और विशुद्ध परिणामों के होने से उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इत्यादि।

यह तो हुआ श्री मज्जिनेन्द्र देवाधिदेव भक्ति का अनुपम माहात्म्य। अब प्रथमानुयोग के आधार पर कोटि कोटि दृष्टान्तों में से कतिपय पौराणिक

एवं ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं जो भक्ति योग के मूर्तिमान प्रयोग बनकर सर्वथा सिद्ध और प्रसिद्ध हुए :—

१—मानस्तम्भ विराजित चैत्यभक्ति से महामिथ्यात्वी प्रकाण्ड विद्वान् इन्द्रभूति ब्राह्मण को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति अर्थात् सही दिशा का बोध हुआ तथा साक्षात् भक्ति से गणधर पद की प्राप्ति के पश्चात् मुक्ति प्राप्ति।

२—स्वामी समन्तभद्र एक स्थान पर जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करते हैं —

सु श्रद्धा मम ते मते स्मृतिरपि त्वय्यर्चनं चापि ते ।
हस्तावञ्जलये कथाश्रुतिरतः कर्णोऽक्षि सम्प्रेक्षते ॥
सुस्तुत्यां व्यसनं शिरोनतिपरं सेवेदृशी येन ते ।
तेजस्वी सुजनोऽहमेव सुकृती ! तेनैव तेजःपते ॥

हे भगवन् ! आपके मत में अथवा आप ही के विषय में मेरी प्रगाढ़ श्रद्धा है, मेरी स्मृति भी आपको ही अपना विषय बनाये हुये है अर्थात् आपका स्मरण मेरी आत्मा में सदा बना रहता है। मैं पूजन भी आप का ही करता हूँ। मेरे हाथ आपको ही प्रणामाञ्जलि करने के निमित्त हैं, मेरे कान आप की ही पुण्य-कथा को सुनने में तल्लीन रहते हैं, मेरी आँखें आपके ही अनुपम रूप को एकटक देखती हुई नहीं अघाती, मुझे जो व्यसन है वह भी आपकी ही गुणावली की स्तुतियों के रूप में रचने का है और मेरा मस्तक भी आप का ही प्रणाम करने में तत्पर रहता है इस प्रकार मेरी सेवा है शुश्रूषा है जिसे मैं निरन्तर किया करता हूँ इसलिए हे तेजपते ! मैं तेजस्वी हूँ। सुजन हूँ और पुण्यवान हूँ। अर्थात् हे प्रभो ! जो कुछ भी मेरी आत्मा में अतिशय प्राप्त हुआ है वह सब आप की भक्ति का ही माहात्म्य है।

यही कारण है कि अर्हद्भक्ति के दृढ़ संकल्प ने आचार्य समन्तभद्र जी को भ० वीरप्रभु के तीर्थ शासन को वृद्धिगत करने वाला प्रधान आचार्य या भावी तीर्थंकर घोषित किया है। चन्द्रप्रभ की मूर्ति प्रकटाकर जैन शासन की अभूतपूर्व प्रभावना की। लौकिक और अलौकिक चमत्कार प्रकट किये।

३—मुनिवर श्री वादिराज जी ने जो एकीभाव स्तोत्र द्वारा भक्ति भाव प्रदर्शित की उसके फलस्वरूप उनका कुष्ट युक्त शरीर कञ्चन सदृश बन गया जिससे भारी प्रभावना हुई।

४—धनञ्जय कवि का बालक विषधर द्वारा डस जाने पर श्री अर्हद्भक्ति की तल्लीनता द्वारा निर्विष हुआ जिससे धर्म का अभ्युदय हुआ एवं प्रभावना हुई।

५—आचार्य कुदकुद की सम्यक् भक्ति से अम्बिका देवी द्वारा दिगम्बर धर्म की सनातनता की पुष्टि की घोषणा हुई।

६—आचार्य कुमुदचन्द्र की सर्वोत्कृष्ट भक्ति के प्रभाव से शिव मूर्ति के स्थान पर भ० पार्श्वनाथ के बिम्ब का प्रादुर्भाव हुआ।

७—तद्भव मोक्षगामी जीवन्धरकुमार की अर्हद आराधना के प्रताप से श्वान की तिर्यञ्च पर्याय से मुक्ति वा देवगति की प्राप्ति हुई।

८—आचाय मानतुग जी की अटूट भक्ति के परिणाम स्वरूप ४८ कारावास के एक के बाद एक लगातार ४८ ताले बन्द मजबूत दरवाजे टूटते गये।

९—जिनेन्द्र भक्ति के माहात्म्य से राजर्षि भरत को अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई पश्चात् वैराग्य होते ही केवलज्ञान की उपलब्धि हुई।

१०—आचार्य पूज्यपाद जी को जिनेन्द्र भक्ति के प्रसाद से आश्चर्यकारी ऋद्धियो की प्राप्ति हुई।

११—रावण की जिनेन्द्र भक्ति से प्रसन्न होकर धरणेन्द्र ने उसकी सेवा वा सराहना की।

१२—स्वामी विद्यानन्द जी मुनि (पात्रकेशरि) की जिनभक्ति के फल स्वरूप शासनदेवी पद्मावती द्वारा लिखित पार्श्वपणावलि पर सशोधित श्लोक दृष्टिगत हुआ।

इनके अतिरिक्त सीताजी की अग्नि-परीक्षा, द्रौपदी जी की दुश्शासन द्वारा चीर-हरण से लज्जा निवारण, अजन चोर का कर्मो से छुटकारा, ग्वाले की पर्याय से सेठ सुदर्शन की पर्याय मे आकर तद्भव मोक्षगामी होना, लाक्षागृह से पच पाण्डवो की मुक्ति का होना, जिनेन्द्र पूजा को गमनोद्यत एक कूप मण्डूक तिर्यञ्च का राजा श्रेणिक के हाथी द्वारा शरीर वियुक्त होने पर देव पद की प्राप्ति आदि सहस्रो उदाहरण जिनेन्द्र भक्ति मे तल्लीन होने के हैं।

यहा एक शका होती है कि वर्तमान मे जिन भक्तो को अभ्युदय निश्रेयस मे से किसी भी एक की प्राप्ति नही हो रही है—उसके उत्तर स्वरूप कल्याण मन्दिरस्तोत्रकार आचार्य कुमुदचन्द्र जी कहते हैं—कि—

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,
नून न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जन-बान्धव दु ख पात्र,
यस्मात्क्रिया प्रति फलन्ति न भावशून्या।

हे जन बान्धव ! पहिले किन्हीं जन्मो मे मैंने यदि आपका नाम भी सुना हो, आपकी पूजा भी की हो तथा आपका दर्शन भी किया हो तो भी यह

निश्चय है कि मैंने भक्ति भाव से आपको अपने हृदय मे भी कभी भी धारण नही किया। इसीलिये तो अब तक इस ससार मे मैं दु खो का पात्र ही बना रहा, क्योंकि भाव रहित क्रियायें फलदायक नही होती। अस्तु—

भक्ति-भावना के सबध मे यहा इतना कहना ही पर्याप्त होगा।

भक्तामर स्तोत्र को जिनेन्द्र भक्ति सबधी अन्यान्य स्तोत्रों की तुलना मे नि सन्देह सब मे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त है। इसका कारण जो भी हो भाषा या भाव का चमत्कार अथवा अभ्युदय और नि श्रेयस की उपलब्धि सम्बन्धी चमत्कार।

प्रस्तुत ग्रन्थ "सचित्र भक्तामर रहस्य" के प्रथम खण्ड को हमने "सार्थक चित्रालोक" नाम दिया है, क्योकि इस शीर्षक का प्रत्येक शब्द सार्थक है अथवा इसमे जो ५० ऐतिहासिक मुगलकालीन भाव-चित्र दिये है वे प्रत्येक श्लोक के शब्दो को अपनी मूकभाषा मे स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करते हैं। एक बारगी ही चित्र को देखकर पूरे श्लोक का भाव अपढ से अपढ व्यक्ति को भी भाषित हो जाता है। ये मूर्तिमान चित्र ऐसी सजीव मूर्तिया हैं जिनके दर्शन-मात्र मे सम्यग्दर्शन तथा सम्याज्ञान की प्राप्ति होती है। शास्त्र स्वाध्याय जैसा परावलम्बी निमित्त ढूढने की भी आवश्यकता वहा नहीं रहती। चित्र तो सार्थक हैं ही स्तोत्र का प्रत्येक श्लोक भी अर्थ सहित है। भाव और भाषा दोनो दृष्टियों से। व्याकरणीय व्याख्या से युक्त प्रत्येक शब्द का अर्थ इसमे है, प्रत्येक वाक्य का अन्वय इसमे है। मूल श्लोक और उसका पद्यानुवाद उसमे है। हिन्दी भावार्थ तो इसमे है ही और है नई विधा मे लिखा हुआ श्लोक गत आध्यात्मिक विशद विवेचन भी। ध्यान रहे कि विवेचन लिखने मे पूज्य वर्णी सहजानन्द जी महाराज तथा श्री कान जी स्वामी के प्रवचनो का आश्रय भी लिया गया है। अन्यान्य टीकाकारो के भाष्यो का तो सहायक ग्रथो के रूप मे भरपूर उपयोग किया गया है। इस भाँति प्रथम खड को सार्थक एव रोचक बनाने मे हमने अगाध परिश्रम किया है। अन्तर्राष्ट्रीय भाषा अग्रेजी के दो उपलब्ध अनुवादो का समावेश भी इस आलोक की अपूर्व निधि है।

द्वितीय खड 'सत्य कथालोक' के सुष्ठु नाम से विभूषित है। इसका रखने से जहां स्तोत्र की प्रामाणिकता और प्रायोगिकता को बल मिलेगा वहां रोचकता की दृष्टि से भी ग्रन्थ की लोकप्रियता मे वृद्धि होने की उत्तरोत्तर सभावना से इन्कार नही किया जा सकता। प्रत्येक श्लोक सबधी कथाएँ सत्य घटनाएँ हैं या मनगढन्त रचनाएँ—इसका निर्णय हम अपने ऊपर न लेकर आपके समक्ष वे ग्रन्थ साक्षी स्वरूप रखना उचित समझते हैं जिनके आश्रय से हमने इन

कथाओ को आधुनिक वेपभूपा मे मुसज्जित करके उन समस्त कहानी प्रेमियो के समक्ष रखा गया है जो तथाकथित सत्य कथाओ के पढने के शौकीन हैं। पौराणिक तथा ऐतिहासिक पात्र और घटनाएँ भले ही किन्ही उर्वरा मस्तिष्को की उपज हो परन्तु जो उनमे आधुनिक तथ्य ह उनके प्रथमानुयोग को नकारा नही जा सकता। कथा ग्रथो की साक्षी स्वरूप ग्रथ निम्नानुसार है —

(१) स्व० कविवर प० विनोदीलाल जी कृत भक्तामर कथा सार

(२) श्री शुभचन्द्र भट्टारक कृत संस्कृत भक्तामर कथा

(३) श्री रामलाल जी ब्रह्मचारी कृत भक्तामर कथा इत्यादि।

भावनात्मक खण्ड के बाद सब से अन्त मे "सरस अर्चनालोक" शीर्षक से हमने भक्तामर स्तोत्र का आराधनात्मक पाँचवाँ खण्ड रखा है। इसमे संस्कृत भक्तामर महाकाव्य संस्कृत पूजन-विधान मडल को युक्तियुक्त विधि से सजोया गया है। अनुष्ठानको के लिए यह खण्ड अत्यधिक उपादेय है। भक्तामर के माहात्म्य गीत को 'अर्चनालोक' मे रखकर इसे अत्यन्त सरस बनाया गया है। वैसे तो मेरे पास सुसग्रहीत भक्तामर स्तोत्र पूजा-विधान के तीन पाठ हैं तथापि उनमे सब से अधिक प्राचीन श्री सोमसेनाचार्य प्रणीत पाठ को इसमे रखा गया है।

अब रहे शेष 'दिव्य मन्त्रालोक' और 'विविध यन्त्रालोक' जो साधना खण्ड के अन्तर्गत आते हैं। इनके विषय मे बहुत कुछ कहना आवश्यक है क्योकि मत्र, यत्र और तत्र आज के बुद्धिजीवी युग मे अपना स्थान भी नही बना पा रहे हैं। श्रद्धा और भक्ति के आस्तिक युग मे इनका प्रभाव और प्रवचन अवश्य ही सर्वोपरि रहा होगा। यद्यपि आज भी यत्रो का युग है परन्तु यहाँ हमारा तात्पर्य मशीनी और कल-पुरजो वाले यत्रो से नही है प्रत्युत मानसिक यत्रो मे है जिसका सीधा सबध मत्रों, ऋद्धियो और सिद्धियो से है। ये यत्र क्या हैं ? सम्पूर्ण द्वादशाग वाणी को गुरु मत्रो और सूत्रो के आधार पर स्वरक्षित रखने वाले पिटारे। ये यत्राकृतियाँ ऐसे सक्षिप्त चार्ट हैं जिन्हे देखने मात्र मे आत्म स्मृति जागृत हो जाती है। यत्राकृतियाँ शब्द ब्रह्म की वे जीती जागती तस्वीरें हैं जिन्हे याद करने की जरूरत नही, बल्कि देखने भर से तत्सम्बन्धी ज्ञान हो जाता है। विधिपूर्वक इनकी सतत साधना करने से अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। यत्रो का सीधा सबध मत्रो से होता है और मत्रो की सेविकाएँ ऋद्धियाँ होती हैं। अतएव आवश्यक है कि दिव्य मत्रालोक के विषय मे भी अच्छी तरह से विचार कर लिया जावे।

मत्र शब्द मन धातु मे ष्ट्रन=(त्र) प्रत्यय लगाने से बनता है। जिसका

व्युत्पत्त्यर्थ होता है—मन्यते आत्मादेशोऽनेन इति मन्त्र अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का आदेश—निजानुभव जाना जावे उसे मन्त्र कहते हैं। णमोकार मन्त्र जगत के यावत् मन्त्रो का बीज मन्त्र है उसीसे समस्त मन्त्रो की उत्पत्ति हुई है। क्योकि यह मन्त्र शुद्धात्माओ की ओर इगित करता है। णमोकार मन्त्र मे उच्चरित ध्वनियो से आत्मा में धनात्मक और ऋणात्मक दोनो प्रकार की विद्युत् शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। जिनकी चिनगारी से कर्म-कलक भस्म हो जाता है। यही कारण है कि तीर्थङ्कर भगवान भी विरक्त होते समय इसी महामन्त्र का उच्चारण करते हैं। यह मन्त्र समस्त द्वादशाग वाणी का सार है। सम्पूर्ण मन्त्रो की मूलभूत मातृकाएँ इसमे विद्यमान है। स्मरण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन आदि सभी कार्य इस मन्त्र की साधना द्वारा साधक सिद्ध कर सकता है। वस्तुत मूलरूप से तो यह मन्त्र आत्म-साधक ही है। चूकि णमोकार मन्त्र के बीजाक्षरो से सभी मन्त्रो की उत्पत्ति हुई है इसलिए भक्तामर के प्रत्येक शब्द मे जो वर्णाक्षर हैं वे णमोकार मन्त्र के बीजाक्षर हैं। कविवर दौलतरामजी की प्रभाती देखिए जिसमे कहा गया है कि—

प्रात काल मन्त्र जपो णमोकार भाई।
मन्त्र जन्त्र तन्त्र सब जाहितें बनाई॥

किसी भी मन्त्र की साधना के लिए नव प्रकार की शुद्धिया आवश्यक हैं —

१—द्रव्यशुद्धि, २—क्षेत्रशुद्धि, ३—कालशुद्धि, ४—भावशुद्धि, ५—आसन शुद्धि, ६—विनयशुद्धि, ७—मनशुद्धि, ८—वचनशुद्धि ९—कायशुद्धि।

मंत्रो की जाप्य विधिया तीन प्रकार की हैं —

१—कमल-जाप्य, २—हस्ताङ्गुलि-जाप्य तथा ३—माला-जाप्य। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य मे जो १४ मूल प्रवृत्तिया होती हैं उनसे सचालित जीवन असभ्य और पाशविक होता है अतएव दमन विलियन मार्गान्तीकरण और शोधन द्वारा उन पर नियन्त्रण रखा जाना आवश्यक है। मनुष्य मे अनुकरण की प्रधान प्रवृत्ति पाई जाती है। इसी प्रवृत्ति के कारण पच परमेष्ठी का आदर्श सामने रखकर उनके अनुकरण से व्यक्ति अपना विकास कर सकता है।

मन्त्र निर्माण के लिए ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौं ह्र ह्रा ह स क्लीं क्लू द्रां द्रीं द्रू द्र श्रीं क्ष्रीं क्ष्वीं क्लीं हूं अ फट्, वषट्, सवौषट्, घे घै य ठ ख ह्ल ल्व्यूं प व य क्ष त थ ब आदि बीजाक्षरों की आवश्यकता होती है। इनमे देवताओ को उत्तेजित करने की शक्ति होती है। चेतना शक्ति (आत्म-शक्ति) को भी

इनसे स्फुरायमान किया जा सकता है।

जैन योगियों ने यम-नियम पूर्वक आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा धर्म-ध्यान और शुक्लध्यान की प्राप्ति की है। इस भांति भक्तामर स्तोत्र मे जितने भी मंत्र हैं वे सब शुद्धात्मा से निःसृत हैं और शुद्धात्मा की ओर इंगित करते हैं अतएव उनसे लौकिक सिद्धि मिलना कोई बड़ी बात नहीं है।

ध्यान का विषय तो जब तक वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा अपनी शुद्धात्मा को नहीं बनाया जाता तब तक आत्म-मुक्ति संभव नहीं है।

सचित्र भक्तामर रहस्य के दिव्य मंत्रालोक मे मंत्रों के साथ तत्त्ववर्षी ऋद्धि-मंत्र भी दिये हैं। ये ऋद्धियाँ मंत्र साधको के समक्ष अतिशय पुण्य फल वाली बनकर जाप्य करते समय सामने आती हैं और साधक को प्रलोभन देती हुई उसे अपने इष्ट आराध्य साध्य या उद्देश्य से विचलित करने को विवश करती हैं। परन्तु यदि मंत्र साधक इष्ट सिद्धि से सावधान है तो उसकी दृष्टि दूसरी ओर जाती ही नहीं है।

ऋद्धियों के मंत्र जाप्य द्वारा वह पुण्य से भी इन्कार करता है और अपनी दृष्टि सम्यक् रूप से अपने प्रयोजन पर ही केन्द्रित रखता है। मंत्र का सम्बन्ध जहां मन और वचन के भावनात्मक ध्यान से है वहां ऋद्धि मंत्रों का सम्बन्ध ऋषियों मुनियों और आचार्यों से है जो कि चारित्र के साक्षात् अवतार होते हैं। उनके आगे ऋद्धि सिद्धियाँ किलोलें करती रहती हैं, परन्तु वे उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। जिस प्रकार सभी मंत्र णमोकार मंत्र से प्रसूत हैं उसी प्रकार सभी ऋद्धियाँ ६४ ऋद्धियों मे गर्भित हैं। मंत्रों द्वारा आत्म दर्शन किया जाता है तो ऋद्धियों द्वारा आत्म-दर्शन की शक्ति जागृत की जाती है। मंत्रों मे अर्हंत् सिद्ध के ध्यान की मुख्यता है तो ऋद्धियों मे आचार्य उपाध्याय और सर्व साधुओं के ध्यान की मुख्यता है। विशेष-विद्यानुवाद, ज्ञानार्णव, मंत्र शास्त्र, मोक्षशास्त्र आदि के अध्ययन से जाना जा सकता है। इस प्रकार मंत्रालोक को हमने दिव्य विशेषण से विभूषित किया है क्योंकि इन मंत्रों और ऋद्धि मंत्रों के जाप्य के अर्थ साधना के लिए देवगण भी ऋषि मुनियों की शरण मे आते हैं। इनसे लौकिक दिव्यता तो प्राप्त होती ही है अलौकिक दिव्य दृष्टि, दिव्य ज्ञान और दिव्य चारित्र रूप मोक्ष लक्ष्मी भी प्राप्त होती है।

कुल मिलाकर 'सचित्र भक्तामर रहस्य' को यदि हम एक शोध ग्रन्थ की संज्ञा दें तो अत्युक्ति न होगी परन्तु शोध योग्य हमारी शैक्षिणक योग्यता न होने से हम उसके पात्र कदाचित् कभी भी न बन सकेंगे। यद्यपि इसमे हम

ने अपनी मौलिकता का भरपूर उपयोग किया है तो भी उद्धरण स्वरूप विविध ग्रन्थो का सहारा लेना श्रेयस्कर समझा गया अत उन ग्रन्थकारो के हम चिर-ऋणी हैं।

ग्रन्थ का कलेवर विद्यमान से भी दूना हो जाता यदि हम इसमे अपनी अतिरिक्त सग्रहीत सामग्री का समावेश भी यथेच्छया करते। विदित हो कि हमारे पास लगभग ५२ प्राचीन एव नवीन कवियो के हिन्दी पद्यानुवाद सकलित हैं। इसके अतिरिक्त अग्रेजी, गुजराती, मराठी, उर्दू, कन्नड, वगला, व्रज, बुन्देली आदि प्रादेशिक और आचलिक भाषाओं के पद्यानुवाद भी समानान्तर रूप से हमारे पास सुरक्षित हैं।

सस्कृत टीकाओ मे दो आचार्यों की वृत्तियां और भाष्य भी हमारे पास मौजूद हैं, सस्कृत भाषा मे पद्यानुवाद रूप मे भक्तामर का कथा साहित्य तथा दो प्रकार के भक्तामर पूजा-पाठ और प विनोदीलालजी की ४०० पृष्ठो मे लिखित सम्पूर्ण भक्तामर पद्य कथाएँ भी ऋद्धि-यन्त्र-मन्त्र-साधन विधि-फल सहित मौजूद है जिनका उपयोग पृथक-२ स्वतन्त्र ग्रन्थ मे ही समावेशनीय हो सकता है जो कि अर्थाभाव के कारण प्रस्तुत ग्रन्थ मे नही दिया जा सका।

अन्त में अपनी प्रशसा अपने मुख मे न करते हुए इसके मुद्रण-छपाई, सफाई, शुद्धि, मेकअप आदि कलात्मक पक्ष की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जिसका कि अभाव वडे-वडे ग्रन्थो मे भी देखा जाता है। प्रूफ सशोधन मे जो श्रम किया गया है उसका श्रेय स्वय को देने के पूर्व हम मुद्रणालय के सशोधक विद्वान् को देना उचित समझते है। राष्ट्रीय प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली ३२ के मालिक, मैनेजर, कम्पोजीटर आदि सचमुच मे बडे ही श्रमणभक्त हैं जो जिनवाणी प्रकाशन का कार्य इतनी सुन्दरता और तत्परता से करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के महान् उदारमना प्रकाशक महोदय श्रीमान् "भीकमसेन जी रतनलाल जी जैन" के आभार से तो हम क्या सारा जैन समाज भी सभवत. कभी भी उऋण न हो सकेगा। उन्होंने हमारे जितने ग्रन्थो का प्रकाशन अपनी श्रमोपार्जित कमाई से किया है उतना कोई भी नही कर सकता। मेरे द्वारा सम्पादित और लिखित प्रकाशनो मे उन्होंने अभी तक स्वेच्छा से ५०,००० रु० खर्च किये हैं सो वह भी व्यापार की तुच्छ वाछा से नहीं प्रत्युत जिनवाणी की नि शुल्क वितरण प्रभावना से प्रेरित होकर ही। हमारे अतिरिक्त औरो के ग्रन्थो के भी प्रकाशक वे होंगे सो तो अलग ही है। और यह जिनवाणी सेवा का कार्य वे आज से ही कर रहे हो सो भी वात नही। अर्द्धशताब्दी पूर्व से

मैंने इस रहस्य को खोलने मे सहायता ली है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ ।

रहस्योद्‌घाटन के समय से खुले हुए हृदय-कपाट अब बन्द कर रहा हूँ । भक्त पाठक, साधक विद्वान्, श्रीमान् आदि सर्व सज्जनगण क्षमा करते हुए त्रुटियो की ओर खुले हृदय से मुझ अकिंचित्कर को निर्देश करके अनुग्रहीत करेंगे । इत्यलम् ॥

कमल कुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'
व्यवस्थापक
श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन
खुरई (सागर) म० प्र०

आपसे मिलिये
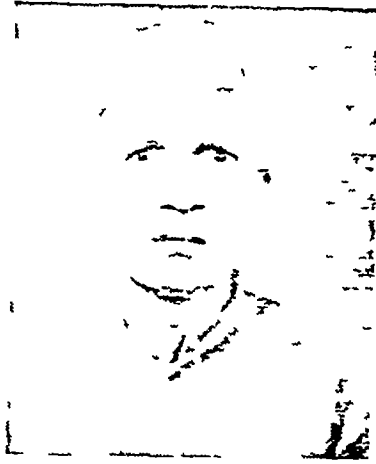
आप हैं श्री बाबू रतनलाल जी जैन कालका वाले !

क्या "कालका मेल" वाला कालका ?

जी हाँ, वही कालका जो मेल के कारण नहीं वल्कि उस रतनलाल जी के कारण प्रख्यात है, जो जैन समाज के "रतन" और इतर समाज के "गुदड़ी के लाल" कहे जाते हैं।

तीर्थराज श्री सम्मेद शिखर जी के नाम से प्रत्येक जैन बालक बालिका सु-परिचित है परन्तु क्या आपको मालूम है कि श्री सम्मेद शिखर जी जाने के लिए आप जिस स्टेशन पर उतरते हैं उसके प्लेट फार्म का क्या नाम है ?

"पारस नाथ हिल"—शिलापट्ट पर भ० पारसनाथ नाम देखते ही आपको कुछ ऐसी गर्वानुभूति अवश्य हुई होगी मानो भारत के भूगोल के नक्शे पर और इतिहास के अखण्ड साम्राज्य पर अभी भी तीर्थङ्कर भगवन्तो का शासन चल रहा है। तो, मैं आपको बतलाऊँ कि ईसरी बाजार और गिरीडीह मार्ग से प्राप्त होने वाला सम्मेद शिखर 'पारसनाथ हिल' स्टेशन की भूमिका पर खड़े हुए बिना मिल नहीं सकता। इस हिल स्टेशन को पारसनाथ की शासकीय मुहर लगाकर प्रसिद्ध करने वाला व्यक्ति है 'रतनलाल जैन' जिन्होंने ३५ वर्ष पूर्व तत्कालीन केन्द्र सरकार के पीछे निरन्तर हाथ धोकर पड़ने के पश्चात् यह भौगोलिक महान् सफलता प्राप्त की थी। यह घटना सन् १९४२ के लगभग की है।

सम्मेद शिखर ही नही, जगत्प्रसिद्ध जैन शिल्प कला तीर्थ 'आबू-हिल' के प्रति भी अर्पित इनकी सेवाएँ उल्लेखनीय है। आबू जैन तीर्थ राजस्थान सिरोही रजवाडे के अन्तर्गत है। दर्शको, तीर्थ यात्रियो और पर्यटको के निरन्तर आवागमन का दर्शनीय केन्द्र स्थल होने के कारण तत्कालीन चोहान वशीय महाराजा सा० को आर्थिक लोभ सताया और उन्होने वहाँ मुडकर (यात्रा कर) चालू कर दिया। यद्यपि टैक्स न लेने सम्बन्धी शिलालेखीय फरमान उनके पूर्वजो द्वारा सवत् १३१३ से मौजूद थे। दूसरे जगत् प्रख्यात दिलवाडा के शिल्प मन्दिर विशुद्ध रूप से जैन सम्प्रदाय की धरोहर रही ह। इस कर को माफ कराने मे श्री बाबू रतनलाल जी जैन, लाला तनसुखराय जी जैन, श्री अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय, प० कमल कुमार जी शास्त्री 'कुमुद', आदि के सजग आन्दोलन अ० भा० व० दि० जैन परिषद् के इतिहास मे अमर रहेंगे। यह घटना भी लगभग सन् ४०-४२ की है।

जब तीर्थभक्ति का प्रसग आही गया है तो लगे हाथ इस ओर की गई सार्वजनिक सेवा की एक बानगी और लीजिये। श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र की रेल्वे स्टेशन…आज जो इतनी उच्च विस्तृत और भव्य दिखलाई पड रही है सन् १९३९ मे उसका प्लेटफार्म जमीन को चूमता था। श्री बाबू रतनलाल जी जैन ने रेल्वे के फोटोग्राफरों द्वारा वहाँ की असुविधापूर्ण यात्रियो के उतार-चढाव के फोटो ले लेकर समाज और शासन का ध्यान उस ओर खीचा और अथक प्रयत्नो के फलस्वरूप उन्हे जो सफलता प्राप्त हुई वह सब अब प्रत्येक के दृष्टि गोचर है। यही कारण है कि श्री महावीर जी क्षेत्र के प्रति तब मे उनकी इतनी प्रगाढ आस्था है कि वे प्रतिवर्ष दो-चार बार वहाँ यात्रार्थ जाते है और अपनी बहुमूल्य भेटो को चढा कर अपने जीवन को सफल मानते है। हमारे सभी नवीन प्रकाशनो की प्रथम भेटें श्री महावीर जी के समक्ष उनके द्वारा अर्पित की गई हैं।

जब श्री बाबू रतनलाल जी इतने सेवाभावी साहित्यसेवी और लगनशील धर्मात्मा व्यक्ति रहे है तो अवश्य ही राजधानी की जैन सस्थाएँ इन्हे पदाधिकारी बनाने को लालायित रही होंगी ?

नि सन्देह सन् १९४० मे आप जैन मित्र मडल देहली के मत्री मनोनीत किये गये। इस सस्था ने लाखों की सख्या मे ट्रेक्ट प्रकाशित कराके समाज मे नि शुल्क वितरित किये। सन् १९३९ से ५० तक आप जैन प्रेम सभा कूचा पातीराम के भी स्थायी मत्री रहे। इसके अतिरिक्त सवत् २००० मे देहली जैन आश्रम मे पच कल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी उसके प्रचार मत्रित्व एव कार्य-

जीवन के रगीन पृष्ठ खुलते रहे। शिक्षण तो यद्यपि मेरा ग्रामीण प्रायमरी शाला से आगे नही बढ पाया, परन्तु आप जैसे विद्वानो के समकक्ष बैठने का जो अधिकार मुझे प्राप्त हो रहा है वह सत्समागम और स्वाध्याय के गूढ अनुभवो का प्रतिफल ही समझिये। पालन-पोषण मध्यम आर्थिक सम्पन्नता के वातावरण मे यथाविधि होता रहा।

आपके पिताश्री का अल्पवय मे ही स्वर्गवासी होना कुछ रहस्यपूर्ण-सा लगता है ?

'आपका अनुमान ठीक है। कुटुम्बियो द्वारा धोखे से धन हरण किया जाना उसमे एक विशेष कारण था। दाम्पत्य जीवन मे पदार्पण तो १३ वर्ष की अल्पावस्था मे ही कर लिया था। मेरी सहधर्मिणी का नाम सुश्री कलावती देवी था जो लाला धूमीमल जी की सुपुत्री थी। बडी ही सहृदय और मिलन-सार महिला थी वह ! धर्म मे विशेष अभिरुचि थी। दिनाक १६।१०।७३ को उनका धर्म ध्यान पूर्वक स्वर्गवास हो गया।

सन्तति के रूप मे सौ० कलावती देवी क्या कोई धरोहर छोड गई ?

यही एक मात्र पुत्र पकजराय जो दिनाक २।१०।३५ रविवार को पैदा हुआ था। बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त पकजराय गृह के व्यापार मे ही सलग्न है। पुण्यफल से एक षोडश वर्षीय पौत्र भी हमारे घर की शोभा है। दिनाक २०।५।६१ उसका जन्म दिवस है।

आपने अपनी आजीविका का माध्यम नही बताया ?

घरू व्यापार प्रारम्भ मे किया, तदुपरान्त आज तक नौकरी ही कर रहा हूँ। शुरू २ मे सन् १६१८ मे अपनी जन्मभूमि कालका मे ही लाला लखमीचद हिंगनलाल जी की फर्म मे काम करता रहा। इसके बाद देहली मे ही सर्विस कर रहा हूँ।

अपने जीवन के प्रसग सुनाईये जो धर्मभावना से प्रेरित होकर किये गये ?

सन् २८।२।५२ को श्री सम्मेद शिखर जी, चम्पापुर पावापुर राजग्रही आदि की वदना की। महावीरजी तो हर वर्ष होली के अवसर पर जाता ही हूँ।

इदौर मे जो पच कल्याणक प्रतिष्ठा सेठ हीरालाल जी द्वारा सम्पन्न हुई थी उसमे भी मैं सम्मलित हुआ था। सन् १६३१ मे श्री १०८ श्री शान्तिसागर जी महाराज का सतसग देहली मे विराजमान था तब हम कालका से दर्शन करने आये थे तभी से रात्रि के पानी का त्याग हमने किया। धूम्रपान व नशाकारक वस्तुओं का सेवन न करने की प्रतिज्ञा उसी समय से ली। कालान्तर

मे कारणवशात् सन् १९६० से नियम प्रतिज्ञाओ मे शिथिलता आ गई और वे अस्त व्यस्त हो गई ।

पातीराम कूचे के मन्दिर मे कोई भी श्रावक जिन-दर्शन करने नही जाता था । मैने घर २ जाकर शास्त्र स्वाध्याय का प्रवन्ध भी वही करवाया ।

वावूजी कृपया आप देहली के उन प्रमुख जैन वन्धुओ के नाम अवश्य वतलाइये जिनसे आपका घनिष्ट सम्वन्ध रहा ?

वैसे तो अनेक हैं, परन्तु मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं । सर्वश्री स्व० सरदारीमल जी गोटे वाले, स्व० तनसुखराय जी, लाला गुलावचन्द जी, जवूप्रसाद जी वाकलीवाल, लाला सुलतानसीग जी सिकन्दरावाद वाले, श्रीपाल जी, वावू उमरावसीग जी, लाला विशनचन्द जी, लाला पन्नालाल जी किताववाले, लाला सरदारसीग जी लुहाडा, आदीश्वर प्रसाद जी, महावीर प्रसाद जी आई० ए०, मुशी सुमेरचन्द जी, श्री प० कमलकुमार जी शास्त्री आदि हैं ।

प० कमल कुमार जी शास्त्री के द्वारा लिखित तथा सम्पादित पुस्तके जिन्हे आपने प्रकाशित करवाया है कृपया उनकी सूची प्रकट कीजिये—

भगवान महावीर और उनका सन्देश (दो वार), महावीरश्री चित्र-शतक, वज्राङ्गवली हनुमान तथा प्रस्तुत ग्रथ सचित्र भक्तामर रहस्य आदि । इसके पूर्व मेरी-भावना, कविवर गिरधर शर्मा का भक्तामर पद्यानुवादादि के कई सस्करण छपाये जा चुके हैं ।

अब आप अपने भावी जीवन की रूप रेखा के सम्वन्ध मे सक्षिप्त तौर पर प्रकाश डालने की कृपा करें !

बस, ग्रथ प्रकाशन और समाधिमरण के अतिरिक्त और कोई वाछा शेष नही है ।

बावू जी ! आपके साक्षात्कार से तो मै सचमुच ही कृतार्थ हो गया । धर्म के प्रति इतनी प्रगाढ आस्था, भक्ति आस्तिक्य आज के युग मे देखने को भी नही मिलता । फिर आप तो बदलती दुनिया की ऐसी राजधानी मे बैठे हैं जहाँ भौतिकता की चकाचौंध है ! धन्य है आपके आदर्श को, आप की धर्म रुचि को, आपकी साहित्य सेवा को । आप का अनुकरण आज के श्रीमान् करें यही प्रार्थना है पच परेश्वर से ।

साक्षात्कर्ता —
फूलचन्द 'पुष्पेन्दु',
(आशुकवि)

खुरई (सागर) म० प्र०
१/१०/१९७७

इस ग्रन्थराज के प्रकाशन के पूर्व वावू रतनलाल जी जैन प० कमल कुमार जी शास्त्री द्वारा लिखित कई पुस्तको का प्रकाशन करा चुके है।

भक्तामर स्तोत्र एक प्रभावशाली स्तोत्र है। णमोकार मन्त्र की भाँति इसका प्रभाव अचिन्त्य है। यदि इस स्तोत्र का पाठ प्रतिदिन शुद्धतापूर्वक किया जावे तो हर तरह के सकट दूर हो जाते है। मैं वर्षों से इसका अनुभव कर रहा हूँ, जव-२ मुझ पर सकट के वादल घिर आते हैं तव-२ मैं इस स्तोत्र का पाठ करके अपने को सकटों से मुक्त पाता हूँ। अस्तु

अन्त मे प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक द्वय तथा उदारमना वावू रतनलाल जी जैन को वधाई देता हूँ कि वे सच्चे कार्य मे अपनी चचला लक्ष्मी का सदुपयोग करते हुए भी ख्याति से दूर रहना चाहते हैं। श्री अरहन्तदेव से प्रार्थना है कि इनके द्वारा इसी प्रकार के साहित्य प्रकाशन का कार्य सदा होता रहे।

२३१६ धर्मपुरा, देहली-६
२६।६।७७

विशनचन्द जैन
रिटायर ओवरसियर

मगल-गीता

आशुकवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु' द्वारा रचित भक्तामर की मगल-गीता के प्रथम श्लोक का भावानुवाद नई विधा मे प्रस्तुत

नत मस्तक सुरभक्तो के—
जिनवर पद अनुरक्तो के—
मुकुटो की झिलमिल मणियाँ—
मणियो की हीरक लड़ियाँ।

जगमग जगमग दमक उठी—
प्रतिबिम्बित हो चमक उठी—
आदीश्वर के चरणो से—
चरण-युगल की किरणो से।

युग-युग शरण प्रदाता हो—
पतितो के भव त्राता हो—
जो समुद्र मे डूबे है—
जनम-मरण मे ऊबे हैं।

उनके सारे कष्ट हरें,
पाप तिमिर को नष्ट करें।

आदिनाथ के श्रीचरणों में, सादर शीश झुकाना है।
भक्तामर के अभिनन्दन की, मगल-गीता गाना है॥

—गुणार्थी
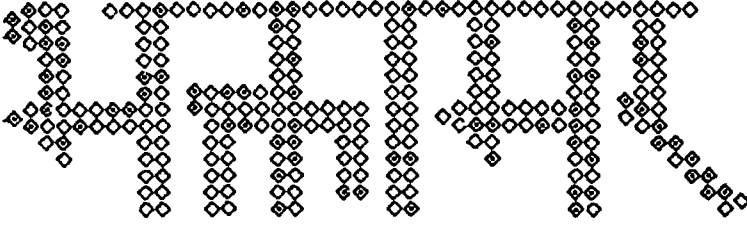
सार्थक चित्रालोक

(प्रथम खण्ड)

ॐ अर्हम्

स्तोत्र-पाठ

(वसन्ततिलका वृत्तम्)

भक्तामर - प्रणतमौलि - मणिप्रभाणा—
मुद्द्योतकं दलित-पापतमो - वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुग युगादा—
वालम्बनं भवजले पतता जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्-मयतत्त्वबोधा—
दुद्भूत-बुद्धि - पटुभि सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैं जगत्त्रितयचित्त - हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथम जिनेन्द्रम् ॥२॥

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतुं समुद्यतमति विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल सस्थितमिन्दुबिम्ब—
मन्यः क इच्छति जन· सहसा ग्रहीतुम्? ॥३॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षम. सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया? !
कल्पान्त - कालपवनोद्धत - नक्र-चक्र,
को वा तरीतुमलमम्बु निधि भुजाभ्याम् ॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्र,
नाभ्येति किं निजशिशो परिपालनार्थम् ॥५॥

अल्पश्रुत श्रुतवता परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिल किल मधौ मधुर विरौति,
तच्चारुचूतकलिका - निकरैकहेतु ॥६॥

त्वत्सस्तवेन भव - सन्तति सन्निबद्ध,
पाप क्षणात् क्षय-मुपैति-शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त - लोक - मलिनील मशेपमाशु ।
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम् ॥७॥

मत्वेति नाथ! तव सस्तवन मयेद—
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेनो हरिष्यति सता नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूद - बिन्दु ॥८॥

आस्ता तव स्तवनमस्तसमस्त - दोष,
त्वत्सङ्कथाऽपि जगता दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरण कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

नात्यद्भुत भुवन-भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रित य इह नात्मसम करोति? ॥१०॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पय शशिकरद्युति दुग्धसिन्धो,
क्षार जल जलनिधे रसितुं क इच्छेत्? ॥११॥

यैः शान्तरागरुचिभि परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक — ललामभूत!
तावन्त एव खलु तेऽप्यणव पृथिव्यां,
यत्ते समानमपर न हि रूपमस्ति ॥१२॥

वक्त्र क्व ते सुर-नरोरग - नेत्रहारि,
नि शेष - निर्जित-जगत् त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्क - मलिन क्वनिशाकरस्य,
यद् वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कलाकलाप—
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवन तव लङ्घयन्ति।
ये सश्रितास्त्रिजगदीश्वर! नाथमेक,
कस्तान् निवारयति सचरतो यथेष्टम्? ॥१४॥

चित्र किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि—
र्नीत मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्त - काल - मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखर चलित कदाचित्? ॥१५॥

निर्धूम - वर्तिरपवर्जित - तैलपूर,
कृत्स्न जगत्त्रयमिद प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलाना,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

नास्त कदाचिदुपयासि न राहुगम्य,
स्पष्टीकरोषि - सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर - निरुद्ध - महाप्रभाव,
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र! लोके ॥१७॥

नित्योदय दलित - मोह - महान्धकार,
गम्य न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व - शशाङ्क - बिम्बम् ॥१८॥

कि शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा!
युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु तमस्सु नाथ!
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरै र्जलभार नम्रै? ॥१९॥

ज्ञान यथा त्वयि विभाति कृतावकाश
नैव तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेज स्फुरन्मणिषु याति यथामहत्त्व,
नैव तु काचशकले - किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

मन्ये वर हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदय त्वयि तोषमेति।
कि वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्य
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

स्त्रीणा शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुत त्वदुपम जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मि,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदशुजालम् ॥२२॥

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद् - विलसदंशुलतावितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥

कुन्दावदात - चलचामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क - शुचिनिर्झर - वारिधार—
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम्।
मुक्ताफल - प्रकर - जाल - विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

गम्भीरतार - रवपूरित - दिग्विभाग—
स्त्रैलोक्यलोक - शुभसङ्गम - भूतिदक्ष।
सद्धर्मराजजय - घोषण - घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात—
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टिरुद्धा।
गन्धोदबिन्दुशुभ - मन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

शुम्भत्प्रभा-वलय भूरि - विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर निरन्तर भूरि सङ्ख्या—
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ॥३४॥

स्वर्गापवर्ग - गममार्ग - विमार्गणेष्ट:,
सद्धर्म - तत्त्व - कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनि र्भवति ते विशदार्थसर्व—
भाषास्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्य ॥३५॥

उन्निद्रहेमनवपङ्कज - पुञ्जकान्ति,
पर्युल्लसन्नखमयूख - शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधा परिकल्पयन्ति ॥३६॥

इत्थ यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक् प्रभा दिनकृत. प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि? ॥३७॥

श्च्योतन्मदाविल - विलोल - कपोलमूल—
मत्तभ्रमद् भ्रमर - नाद - विवृद्ध-कोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धत - मापतन्त,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

भिन्नेभकुम्भ-गलदुज्जवल-शोणिताक्त—
मुक्ताफल - प्रकर - भूषित - भूमि भाग. ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपिः
नाक्रामति क्रमयुगाचलसश्रितं ते ॥३९॥

कल्पान्तकाल-पवनोद्धत - वन्हिकल्प,
दावानल ज्वलित मुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्त,
त्वन्नामकीर्तनजल शमयत्यशेषम् ॥४०॥

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानला-हि,
संग्राम - वारिधि - महोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भय भियेव,
यस्तावक स्तवमिम मतिमानधीते ॥४७॥

स्तोत्रस्रज तव जिनेन्द्र ! गुणै-र्निबद्धा,
भक्त्या मया रुचिर वर्णविचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ गतामजस्र'
त 'मानतुङ्ग' मवशा समुपैति लक्ष्मी ॥४८॥

Having duly bowed down to the feet of Jina, which, at the beginning of the yuga, was the prop of men drowned in the ocean of worldlines, and which illumine the lustre of the gems, of the poostrated heads of the devoted gods, and which dispel the vast gloom of sins 1

× × ×

English Translation —Duly and honourable bowing down at the lotus-like feet of Shree Jindeva (आदिनाथ), which illuminates the lustr of jewels of the crowns of devout gods, bent down (before Adinath in obeisance), destroys the great or spreading darkness of sin and supports, in the beginning of the age (कर्मयुग), persons falling down into this ocean of world. 1

× × ×

I shall indeed pay homage to that First Jinedra, Who with beautiful orisons captivating the minds 'of all the three worlds, has been worshipped by the lords of the gods endowed with profound wisdom born of all the Shastras 2

× × ×

This is indeed strange that I am bent on eulogizing the first Jinendra who praised and worshipped by the rich and stotras, magnetizing the hearts (of the persons) of the three fold world, (composed) by the lords of gods who are proficient in talent developed by the knowledge of the true and essential principles of the Supreme Dwadashangi (द्वादशांगी) 2

× × ×

सम्यक् नमन
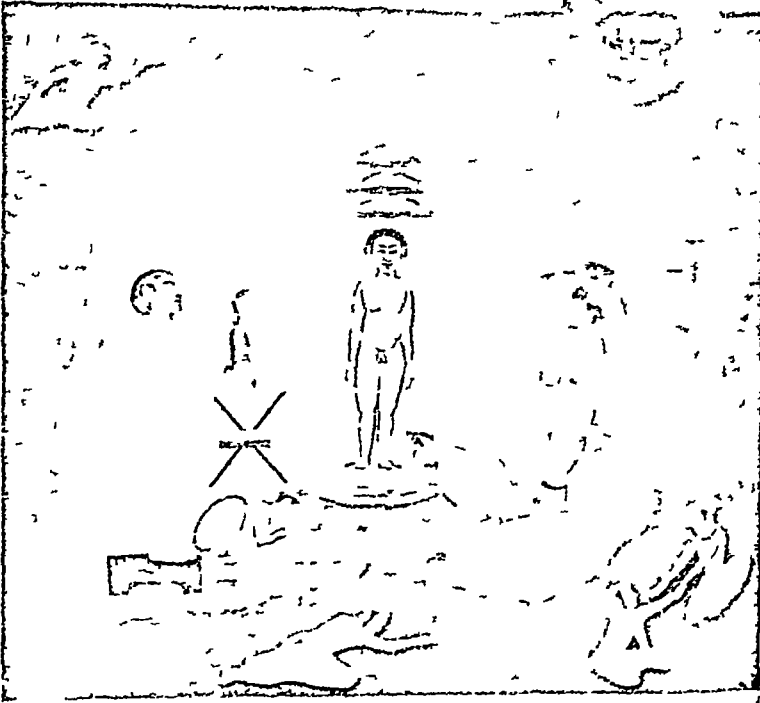
भक्त अमर नत मुकुट सु-मणियो, की सु-प्रभा का जो भासक ।
पाप रूप अति सघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकर-सा नाशक ॥
भव-जल पतित जनो को जिसने, दिया आदि मे अवलम्बन ।
उनके चरण-कमल का करते, सम्यक् वारम्वार नमन ॥१॥

आचार्य-प्रतिज्ञा
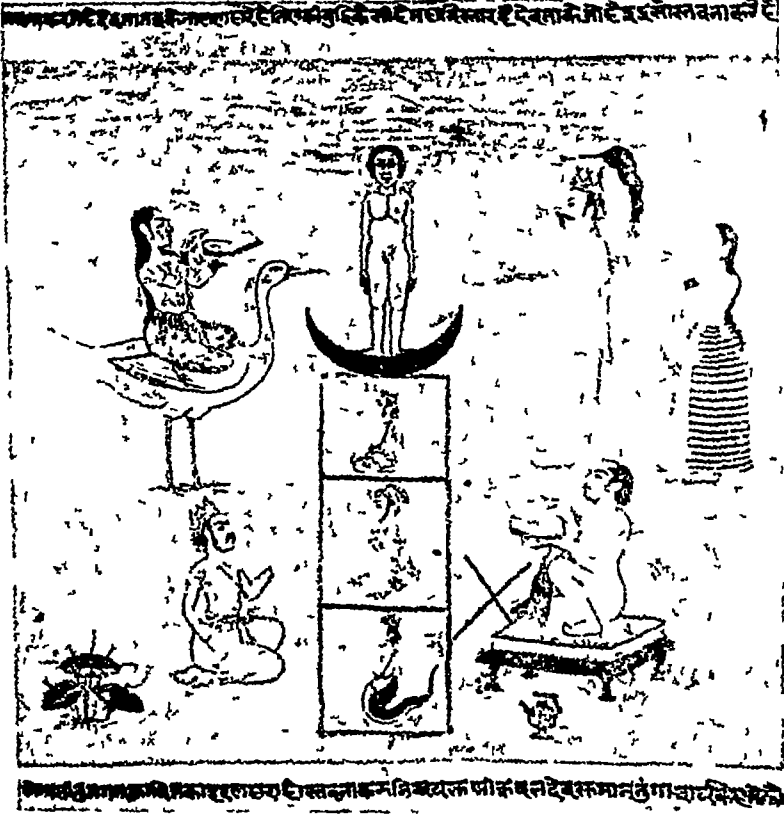
सकल वाङ्मय तत्त्वबोध से, उद्‌भव पटुतर धी-धारी।
उसी इन्द्र की स्तुति से है, वन्दित जग-जन मन-हारी॥
अति आश्चर्य कि स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की।
जगनामी सुखधामी तद्‌भव, शिवगामी अभिरामी की॥२॥

सचित्र-भक्तामर-रहस्य

मूल श्लोक (वसन्ततिलकावृत्तम्)

सर्वविघ्नविनाशक

भक्तामर - प्रणत-मौलि - मणि-प्रभाणा—
मुद्योतकं दलित - पापतमो - वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा—
वालम्बनं भवजले[1] पततां जनानाम्॥१॥

यः संस्तुतः सकलवाङ्मय-तत्त्वबोधा—
दुद्भूत - बुद्धि-पटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय - चित्त हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥
[युग्मम्[2]]

अन्वय

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम् उद्योतकम् दलितपापतमोवितानम् युगादौ भवजले पतताम् जनानाम् आलम्बनम् जिनपादयुगम् सम्यक् प्रणम्य ॥१॥

---

१ 'भवनिधौ' ऐसा भी पाठ है।

२ संस्कृत में कहीं-कहीं एक से अधिक श्लोकों का इकट्ठा अन्वय होता है, जहाँ दो श्लोकों का एकत्र अन्वय हो वह, उसे युग्म कहते हैं। यहाँ भी युग्म है।

सकलवाङ्मयतत्वबोधात् उद्‌भूतवुद्धिपटुभि सुरलोकनार्थै' जगत्त्रितय-चित्तहरै उदारै स्तोत्रै य सस्तुत त प्रथमम् जिनेन्द्रम् किल अह अपि स्तोष्ये ॥२॥

शब्दार्थ.

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणाम्—भक्त देवो के विशेप रूप से झुके हुए मुकुटों की मणियो की कान्ति के-।

विशेषार्थ —जो इष्टदेव की विशेप प्रकार से भक्ति करता है, वह भक्त कहलाता है। यहाँ इष्टदेव से तात्पर्य श्री वीतराग जिनेन्द्र देव से है। ऐसे इष्टदेव की भक्ति करने वाले जो अमर अर्थात् देव है, वे हुए भक्त देव। नत का अर्थ है झुके हुए, प्रणत विशेप रूप से झुके हुए। भक्ति मे भाव विभोर होते समय इसी प्रकार नत मस्तक होने के प्रसग आते है। मौलि अर्थात् मुकुट, मणि का अर्थ है—चन्द्रकात तुल्य मणि। देवो के मुकुटो मे इस प्रकार की मणियाँ जडी होती है। जिनकी । प्रभाणाम्—कान्ति की। यह पद षष्ठी विभक्ति के बहु वचन मे है।

उद्द्योतकम्—उद्योत (प्रकाश) को करने वाला।

विशेषार्थ —'उद्' उपसर्ग के साथ 'द्युति-दीप्तौ' धातु से उद्योत शब्द सिद्ध हुआ है। वह उसी प्रभा या प्रकाश के अर्थ को दर्शाता है। 'उद्द्योतयतीति उद्द्योतकम्' जो उद्योत को करता है, वह उद्योतक अर्थात् उद्योत को करने वाला। यह पद 'जिनपादयुग' का विशेपण होने के कारण द्वितीया विभक्ति मे आया है।

दलितपापतमोवितानम्—पापरूपी तमस् अर्थात् अन्धकार के विस्तार को समूह को नाश करने वाला।

विशेषार्थ —पाप रूपी तमस्-अन्धकार, वही हुआ पापतम, उसका वितान अर्थात् समूह, वही हुआ पापतमोवितान। उसको दलित किया है अर्थात् नाश किया है जिसने ऐसा वह दलित पापतमोवितान अर्थात् पापरूपी अन्धकार के समूह को नाश करने वाला। यह पद भी जिनपादयुग का विशेपण होने से द्वितीया विभक्ति मे आया है।

युगादौ—युग के आदि मे—चतुर्थ आरे के प्रारम्भ मे।

विशेषार्थ —लौकिक भाषा मे युग शब्द से सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि ऐसे काल के चार सुदीर्घ परिणामो का सकेत प्राप्त होता है, तथा जैन खगोल-ज्योतिष मे ५ वर्ष के समय को युग की सज्ञा दी गई है, परन्तु यहाँ युग शब्द

से वर्तमान अवसर्पिणी काल का तीसरा सुखमा-दुखमा नाम का आरे के अन्तिम भाग और चौथे आरे के आरम्भ भाग को समझना चाहिये—कि जिसमें प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव (आदिनाथ) भगवान उत्पन्न हुए थे।

इतिहासकारों ने संस्कृत युग को आदिकाल माना है, क्योंकि मानव संस्कृति के अनुरूप सर्व विद्या कलाओं असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य का उद्भव इसी काल में हुआ है।

भवजले—संसार रूपी सागर के अथाह जल में।

विशेषार्थ —भव रूपी जल अर्थात् भवजल, यहाँ भव शब्द से जन्म-जरा-मरण रूप संसार समझना चाहिये, उसका अथाह जल वही भव जल है। उसके विषय में यह पद सप्तमी के एक वचन में आया है।

पतताम्—पड़े हुए-गिरते हुए।

जनानाम्—मनुष्यों का। उपरोक्त दोनों पद षष्ठी के बहु वचन में हैं।

आलम्बनम्—आलंबन रूप-आधारभूत।

जिनपादयुगम् —जिनेश्वर देव के चरण युगल में।

जिन अर्थात् जिनेश्वर (तीर्थंकर) देव के पाद-पग-चरण का युग—युग्म (युगल)। उनके

सम्यक्—भली भाँति भक्ति पूर्वक, मन-वचन-काय के प्रणिधान पूर्वक।

प्रणम्य—प्रणाम करके।

सकलवाङ्मयतत्त्वबोधात्—समस्त शास्त्र के तत्त्वज्ञान से।

विशेषार्थ —सकल-समस्त ऐसे ही वाङ्मय में अर्थात् सकल वाङ्मय में। वाङ्मय अर्थात् शास्त्र, उससे उत्पन्न तत्त्वबोध अर्थात् तत्त्वरूपी बोध याने तत्त्वज्ञान। उससे यह पद पंचमी हेत्वर्थ में आया है।

उद्भूतबुद्धिपटुभिः —उत्पन्न हुई बुद्धि से चतुर—ऐसा।

विशेषार्थ —उद्भूत—उत्पन्न हुई बुद्धि से पटु—चतुर=उद्भूतबुद्धिपटु, उनके द्वारा—सुरलोकनाथैः पद जो कि आगे आ रहा है उसका विशेषण होने से यह पद भी तृतीया के बहुवचन में है।

सुरलोकनाथैः —देवेन्द्रों द्वारा।

विशेषार्थ —सुष्ठु राजन्ते इति सुरा। जो सब प्रकार से शोभायमान हैं वे देव—सुर, उनका लोक वह सुरलोक अर्थात् देवलोक अथवा स्वर्ग। उसका नाथ अर्थात् अधिपति वही हुआ सुरलोकनाथ अर्थात् देवेन्द्र।

जगत् त्रितयचित्त हरैः —तीनों जगत के चित्त को हरण करने वाला ऐसा।

विशेषार्थ —'त्रयोऽवयवा अस्य त्रितय'—तीन हैं अवयव जिसमें ऐसा वह

त्रितय, जगता त्रितय—जगत्त्रितय अर्थात् तीन जगत, उसका चित्त वही हुआ जगत्त्रितय चित्त, उसका हरण करने वाला, वही हुआ जगत् त्रितय चित्तहर—उनके द्वारा। यह पद स्तोत्रैं शब्द का विशेषण होने से तृतीया के बहुवचन मे आया है। यहाँ तीन जगत से तात्पर्य तीन लोक है। अर्थात् उर्ध्व लोक, मध्यलोक, पाताल लोक का निर्देश किया गया है। तीन लोक का चित्त याने तीनों लोको मे रहने वाले सुर नर असुर के चित्त, तात्पर्य यह कि जिन्होंने सुर नर और असुरो के चित्त को आकर्षित किया है, ऐसे—

उदारैः—महार्थ महा अर्थ वाले—उत्कृष्ट गम्भीर अर्थ वाले। यह पद स्तोत्रैं का विशेषण होने से तृतीया के बहु वचन मे प्रयुक्त हुआ है।

स्तोत्रैं—स्तोत्रो—स्तवनो के द्वारा।

य—जो

संस्तुत—भलीभाँति स्तवन के पात्र हुए

तम्—उन

प्रथमम्—प्रथम।

विशेषार्थ—यहाँ प्रथम शब्द मे चौबीस तीर्थङ्करो मे से पहिले तीर्थङ्कर को समझना चाहिए। चौबीस तीर्थङ्करो मे प्रथम श्री ऋषभदेव हुए जो कि नाभिराय कुलकर तथा मरुदेवी के पुत्र थे। उन्हे ही युगादि देव आदिनाथ भी कहा जाता है।

जिनेन्द्रम्—जिनेन्द्र को—तीर्थङ्कर को।

विशेषार्थ—जिन अर्थात् सामान्य केवली, उनमे भी श्रेष्ठ, अष्ट प्रातिहार्य समवशरण आदि महान् विभूतियो से सम्पन्न तीर्थङ्कर नाम की पुण्यतम् प्रकृति के धारक जो हैं वे ही जिनेन्द्र देव हैं।

तम् प्रथम जिनेन्द्रम् ये तीनो शब्द द्वितीया के एक वचन मे व्यवहृत हुए हैं।

किल—निश्चय से।

अहम्—मैं (मानतुङ्गाचार्य)

अपि—भी

स्तोष्ये—स्तवन करूँगा।

भावार्थ

हे तेजस्विन्!

भक्तिमन्त देवताओ के विनम्र मुकुटो की मणियो को जगमगाने वाले, पापरूपी अन्धकार के समूह का नाश करने वाले तथा ससार-सागर मे गिरे हुए-

पड़े हुए प्राणियो के आधारभूत युगादि देव श्री जिनेन्द्र भगवान के चरण युगल को मन-वचन-काय के प्रणिधान पूर्वक सम्यक् नमस्कार करके, समस्त शास्त्रो के तत्त्वज्ञान से जिन्हे बुद्धि कौशल की सम्प्राप्ति हुई है, ऐसे देवेन्द्रो ने तीनो लोको के चित्त को हरण करने वाले, महान् गभीर आशय वाले स्तोत्रो के द्वारा जिनकी स्तुति की है, उन्ही युग के आदि मे उत्पन्न प्रथम जिनेन्द्र देव की वन्दना मैं (मानतुगाचार्य) भी करूँगा। ऐसा स्तुतिकार का सकल्प है।

विवेचन भाव पक्ष

लोहे की जजीरो द्वारा जकडाया गया है समस्त शरीर जिनका ऐसे वे श्री मानतुगाचार्य अन्धकार पूर्ण पाताल तुल्य काल कोठरी मे समासीन अपने इष्टदेव श्री आदिनाथ भगवान का स्तोत्र रचने के लिए उद्यत हैं। उस समय भाव मगल की प्राप्ति के लिए वे मन-वचन-काय के प्रणिधान पूर्वक उनको नमस्कार करते है और फिर विशद अर्थ वाले गभीर पदो द्वारा उनकी स्तुति करने का सकल्प करते हैं।

"स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथम जिनेन्द्रम्"

इन शब्दो द्वारा उनका सकल्प व्यक्त होता है।

मगल दो प्रकार के है एक द्रव्य मगल दूसरा भाव मगल। उसमे अष्ट द्रव्य तो द्रव्य मगल रूप है और श्री जिनेश्वर देव का स्मरण वन्दन भाव मगल स्वरूप है। उद्देश्य की सिद्धि तथा विघ्नो के निवारणार्थ ऐसे भाव मगल की प्राप्ति आवश्यक है। यही कारण है कि प्रत्येक जिनभक्त किसी भी सूत्र सिद्धान्त अथवा काव्य की रचना करते समय सर्वप्रथम मगलमय पच परमेष्ठी का स्मरण करके उन्हे मन-वचन-काय के प्रणिधान पूर्वक नमस्कार करते हैं।

अजुलि बद्ध दोनो हाथ मस्तक से लगाकर पचाग पूर्वक नमन क्रिया होती है। किन्तु यदि उसमे श्रद्धा आस्था आदर बहुमान की लगन तथा भक्ति भावना न हो तो वह नमस्कार द्रव्य नमस्कार कहलाता है और तब वह उद्देश्य की सिद्धि तथा विघ्न निवारण का निमित्त नही बनता। इसी से स्तुति कार ने मन वचन काय के योग से भक्ति भावना पूर्वक श्री आदिनाथ भगवान को नमस्कार किया है।

जिनागमो मे स्पष्ट उल्लेख है कि अरिहत परमेष्ठी मगल रूप है, सिद्ध

भगवत मगल रूप हैं, परम पद में स्थित साधु सघ मगल स्वरूप है एव केवली जिनेश्वरों द्वारा प्रणीत धर्म महा मगल मय तो है ही किन्तु उनके प्रति किये गये भाव नमस्कार भी महामागलिक है।

स्तोत्र कर्त्ता आचार्य मानतुग जी जिन आदिनाथ भगवान के युगल चरणाम्बुजो में नमस्कार करते है वे चरण-कमल कैसे है? इसकी व्याख्या उन्होंने निम्नलिखित तीन विशेषणो द्वारा स्पष्ट की है।

प्रथम तो उन्होंने नत मस्तक भक्त देवों को श्री चरणो में नमस्कार करते हुए दर्शाया है जिसके फलस्वरूप मस्तक के मुकुट मणियों की काति इतनी अधिक जगमगाने लगती है कि एक प्रकार का अलौकिक आलोक चतुर्दिक् फैल जाता है अथवा श्री जिनेश्वर देव के पद-नख इतने अधिक तेजवन्त है कि उनसे नि सृत प्रखर रश्मियों के कारण नतमस्तक मुकुट की मणियां अत्यधिक कान्ति से झिलमिलाने लगती है। नख-प्रकाश के इस परावर्तन से एक अद्भुत तेजोमय वातावरण का निर्माण होता है। श्री जिनेश्वर देव के सानिध्य में एक कोटि देवता निरन्तर उनकी सेवा नदिन करते रहते है। यहा भक्त देवों से तात्पर्य इसी कोटि के देवों से है अथवा अन्य सम्यक्त्वी देव भी भक्ति वश प्रभु के पास आकर अत्यन्त विनयपूर्वक नमस्कार करते है, उनको भी भक्त देव समझना चाहिये।

द्वितीयत —श्री जिन चरण युगल पाप-तिमिर के पुज को नाश करने वाले है। इसका अर्थ यह है कि नमस्कार करते ही हृदय में स्थित पापान्धकार का पलायन अति शीघ्र हो जाता है। मन को पवित्र करने के लिए जिन-चरण की सेवा समान अन्य कोई सुन्दर सुलभ साधन नही है।

तृतीयत —ये चरण युगल ससार रूपी सागर में डूबे हुए प्राणियो के लिए आलम्बन रूप हैं अर्थात् जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक इनकी चरण शरण में आते है तो उनको किसी प्रकार के भव-भ्रमण का भय नहीं रहता। अन्य शब्दो में इस प्रकार कह सकते है कि चरण युगल भव-सागर पार करने के लिए सुदृढ़ सुन्दर नौका तुल्य हैं। उनका आश्रय लेने से भक्त जन ससार-समुद्र को सरलता से पार कर जाते है और अक्षय अनन्त सुखों के अधिकारी होते है।

यहा "युगादी" शब्द के द्वारा युग की आदि में अवतरित आदिनाथ भगवान की ओर अथवा युग शब्द के श्लेष का विश्लेषण करने से वहाँ आदिनाथ के युगल श्री चरणो की ओर भी सकेत मिलता है।

इन विशेषणो से स्तोत्र कर्ता आचार्यश्री यह भी कहना चाहते है कि जिनको अचिन्त्य शक्ति प्राप्त है ऐसे देव भी जब श्री जिनेश्वर देव को परम

भक्ति से नित्य नमस्कार करते हैं तो फिर हमारी क्या गिनती ? हम जैसी भव भीरु आत्माओं को तो उनकी प्रणामादिक के द्वारा निरन्तर ही भक्ति करनी चाहिए। मैं जो यहाँ श्री आदिनाथ भगवान के युगल चरणो मे सम्यक् नमन कर रहा हूँ वह भक्त देव देवेन्द्रो का अनुकरण मात्र है। उत्तम अनुकरण करना गतानुगतिकता नही प्रत्युत् विशिष्ट पुरुषो द्वारा प्रवर्तित एक प्रशंसनीय आचार है। "महाजनो येन गत स पन्था" आदि उक्तिया इसके प्रमाण हैं।

भक्त परम पद का इच्छुक होता है और वह परम पद (अमर पद) क्या है ? परम पद प्राप्त किये हुए अरहत देवो की भक्ति करना ही है। इस भक्ति मे प्रणाम या नमस्कार का स्थान पहला है यह विस्मरण नही करना चाहिए। अब दूसरे पद पर आइये। इस पद मे स्तोत्र कर्ता ने "स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथम जिनेन्द्रम्" इन शब्दो मे स्तोत्र का अभिधेय (अभिप्राय) निरूपित किया है। अर्थात् इस स्तोत्र मे अपने इष्ट देव प्रथम तीर्थङ्कर श्री आदिनाथ भगवान की स्तुति की गई है।

ये ऋषभदेव भगवान देवाधिदेव हैं। देव तथा देविया भी उनका स्तवन करते है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने "य सस्तुत —" आदि पद रखे हैं। देव देवेन्द्र मनगढन्त कल्पनाओ के साथ स्तुति नहीं करते वल्कि सकल शास्त्रो का नवनीत जो तत्त्वार्थ है, उनका पारायण करने से जो नैपुण्य प्राप्त हुआ है उस प्रतिभा के द्वारा ही जिनेन्द्र देव की स्तुति करते हैं और उसमे भी गभीर अर्थो वाले स्तोत्रो का प्रयोग करते हैं। भावार्थ यह है कि मैं भी उन देवो के अनुकरण स्वरूप श्री आदिनाथ जिनेन्द्रदेव की स्तुति करने के लिए इस स्तोत्र की रचना कर रहा हूँ।

गुणो की दृष्टि से सभी तीर्थङ्कर भगवन्त समान होते हैं अत यह स्तुति अन्य तीर्थङ्करो पर भी चरितार्थ होती है। कोई तीर्थङ्कर अधिक प्रभावशाली या शक्तिशाली हो और कोई कम, इस मान्यता का जैनधर्म मे कोई स्थान नहीं है। अर्थात् किन्ही भी तीर्थङ्कर को निमित्तभूत मानकर स्तुति की जा सकती है और उस स्तुति मे सभी तीर्थङ्करो के प्रति की गई स्तुति गर्भित हो जाती है।

तीर्थङ्कर भगवन्त चौंतीस विशिष्ट अतिशयो से मण्डित होते हैं। जिनका वर्गीकरण चार आधारभूत अतिशयो मे किया जा सकता है—(१) ज्ञानातिशय (२) वचनातिशय, (३) पूजातिशय, (४) अपायापगमातिशय। इनमे सर्वज्ञता ज्ञानातिशय है। दिव्यध्वनि वचनातिशय है। शतेन्द्रो द्वारा पूजा पूजातिशय है। ईतिभीति रहित सुभिक्ष के सद्भावपूर्ण वातावरण का होना ही अपायापगमातिशय कहलाता है। ये चारो अतिशय प्रथम छन्द मे सूचित किये गये हैं।

"भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रभाणा उद्योतकम्" यह पद पूजातिशय का सूचक है। "दलितपापतमोवितानम्" अपायापगमतिशय की ओर संकेत करता है: क्योंकि अपाय ही पाप का परिणाम है। "आलम्बन भवजले पतता जनानाम्" इस पद से ज्ञानातिशय और वचनातिशय का निर्देशन होता है। क्योंकि ज्ञानी के सद्वाक्य ही भक्तजनो के लिए आलम्बन रूप बन सकते है।

यहाँ कोई यह प्रश्न कर सकता है कि ऊपर तो जिन चरणो को संसार-समुद्र मे डूबे हुए मनुष्यो के लिए आलम्बन स्वरूप कहा है और फिर यहाँ ज्ञान और वचन को आलम्बन स्वरूप बताया जा रहा है—ऐसा क्यो ? तो इसके समाधान स्वरूप जिन चरण मे—यथाख्यात चरित्र के धारी जिनेन्द्र भगवान को ही लिया जा सकता है, क्योंकि वे पूर्ण सर्वज्ञ और वीतराग होते हैं उनकी सातिशय हितोपदेशी वाणी के द्वारा ही धर्म की देशना होती है इसलिए इसमें कोई विरोध नही आता है।

कलापक्ष

आचार्य श्री मानतुङ्ग जी ने इस भक्तामर स्तोत्र की संरचना के लिए 'वसततिलका' वृत्त को अपनाया है जो कि संस्कृत भाषा का एक अति ललित छन्द है। जिसका कि दूसरा नाम 'मधु माधवी' छन्द भी है। इस कर्णप्रिय छन्द का लक्षण काव्य शास्त्र मे "तभजा जगौगा" माना गया है। अर्थात् इसमे क्रमश तगण, भगण, जगण और अन्त मे गुरु होता है। इस प्रकार चौदह अक्षरों मे इसका निर्माण होता है। लघु-गुरु की संकेत लिपि निम्न तालिका से जानी जा सकती है —

ऽ ऽ ।	ऽ । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
गुरु गुरु लघु	गु० ल० ल०	ल० गु० ल०	ल० गु० ल०	गु० गु०
तगण	भगण	जगण	जगण	गुरु० गुरु०

भक्ताम	र प्रण	तमौलि	मणि प्र	भाणा
गु० गु० ल०	गुरु ल०ल०	ल० गु० ल०	ल० गु० ल०	गु० गु०

अन्वय.

विबुधार्चितपादपीठ ! विगतत्रप अहम् बुद्धया विना अपि त्वास्तोतु समुद्यतमति (अस्मि)। जलसस्थितम् इन्दुबिम्बम् वाल विहाय अन्य क जन जन सहसा ग्रहीतुम् इच्छति ? ॥

शब्दार्थ

विबुधार्चितपादपीठ !—सुरेन्द्रो द्वारा समर्चित है पद-सिंहासन जिनका ऐसे हे जिनेश्वर देव !

विशेषार्थ—विबुध अर्थात् देव उनके द्वारा अर्चित-पूजित अत विबुधार्चित, ऐसा वह पादपीठ अर्थात् पग रखने का आसन, वही हुआ **विबुधार्चितपादपीठ**। यह पद जिनेन्द्र प्रभु का विशेषण होते हुए भी यहाँ सम्बोधन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। देव गण जव जिनेन्द्रदेव के चरणो की पूजा करते हैं, तव उनके पादपीठ की पूजा भी स्वयमेव हो जाती है।

विगतत्रप—लल्जा रहित, निर्लज्ज, मर्यादा विहीन।

विशेषार्थ—विगत—विशेषतापूर्वक गई है जिसकी त्रपा-लज्जा-शर्म-हया वही हुआ विगतत्रप (वहुव्रीहि समास)।

अहम्—मैं, मानतुगाचार्य।

बुद्धया विना अपि—वुद्धि विहीन होने पर भी वुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति-प्रज्ञा।

स्तोतुम्—(आपकी) स्तुति करने के लिए।

नोट—यहाँ पर भी त्वा पद को अध्याहार से लिया गया है।

समुद्यतमति—तत्पर हुई है बुद्धि जिसकी ऐसा वह।

विशेषार्थ—समुद्यत—सम्पूर्ण रूप से उद्यत है जिसकी मति अर्थात् वुद्धि वही हुआ **समुद्यतमति**।

जलसस्थितम्—जल मे पडे हुए।

विशेषार्थ—जले—पानी मे, सस्थित—पडा हुआ वही हुआ जल सस्थित (सप्तमी तत्पुरुप)। यह पद इन्दुबिम्बम् का विशेपण होने से द्वितीया विभक्ति मे आया है।

इन्दुबिम्बम्—चन्द्र के प्रतिबिम्ब को-चन्द्रमा की प्रतिच्छाया को।

विशेषार्थ—इन्दु—चन्द्रमा, उसका **बिम्ब** अर्थात् प्रतिबिम्ब वही हुआ इन्दुबिम्ब, उसकी अर्थात् चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को।

वालम् विहाय—बालक को छोडकर, वालक विना।

अन्य क जन—दूसरा कौन मनुष्य ?
सहसा—विना विचारे (तत्काल—जल्दी से।
ग्रहीतुम्—पकड़ने के लिए—ग्रहण करने के लिए। (तुमन्त प्रत्यय)।
इच्छति—इच्छा करता है—चाहता है। अर्थात् कोई भी नही चाहता।

भावार्थ

हे सुर गण पूजित पादपीठ !

बुद्धिहीन होने पर भी जो मैं आपकी स्तुति करने के लिए तत्पर हुआ हूँ, यह मेरी निर्लज्जता एव धृष्टता ही है भला जल मे दृश्यमान चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकडने का साहस एक नादान अबोध बालक के अतिरिक्त और कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नही।

विवेचन

स्तोत्र रचना की प्रतिज्ञा कर चुकने के पश्चात् मुनिवर श्री मानतुगाचार्य कहते है—कि हे जिनेन्द्र देव ! आप परमपूज्य देवाधिदेव हैं तभी तो देवगण आपके पावन चरणो की भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं। यही नहीं वरन् आपके पादपीठ अर्थात् पद विन्यास के आसन को भी पूजते हैं। कहा वे कहा हम ? आपकी स्तुति हम किस प्रकार करें ? तद्रूप बुद्धि हमारे पास तो है नही। लोक व्यवहार तो ऐसा है कि जिस कार्य मे अपनी बुद्धि की पहुँच हो वही करना सर्वथा योग्य है। जो कार्य शक्ति के विना किया जाता है वह बीच मे ही छोडना पडता है। अत उसके हास्यास्पद होने का अवसर भी आता है। परन्तु आपकी स्तुति करने का अदम्य उत्साह हमारे हृदय मे इतना प्रबल है कि अपनी शक्ति की मर्यादा तोड कर भी मैं इस वृहत्तर कार्य के करने को तत्पर हुआ हू।

आगे के पदो मे अपने विधान का समर्थन करने के लिए जिन-जिन उपमानो का प्रयोग वे यहां करते हैं, उनके दृष्टान्त निम्न भाति हैं।

जल मे चन्द्रमा का लुभावना प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, परन्तु ऐसी सुन्दर वस्तु को पकडने का प्रयत्न कोई भी बुद्धिमान मनुष्य नहीं करता, क्योकि उसमे उसे सफलता मिलने का विश्वास ही नही होता। हां, नादान और अबोध बालक अवश्य ही उस प्रतिबिम्ब को पकडने का असफल प्रयास करता है।

आपकी स्तुति के लिए मेरी तत्परता ठीक बालक के प्रयत्न की तरह ही है। अर्थात् मात्र बाल चेष्टा है।

इसी पद मे आचार्य श्री का कर्तृत्व बुद्धि रहित अपनी लघुता का भी

प्रदर्शन पाया जाता है। यद्यपि वे [illegible] [illegible] और यशस्वी प्रतिभा सम्पन्न चारित्र्यनिष्ठ विद्वान् सुकवि हैं तथापि अपनी गिनती अबोध बालकों में ही करते हैं। निस्संदेह जो महान् होते हैं वे कभी भी बड़े बोल नहीं बोलते। क्योंकि —

"लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दूर" लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

Shameless I am, O Lord, as I, though devoid of wisdom, have decided to eulogise you, whose feet have been worshipped by the gods Who, but an infant, suddenly wishes to grasp the disc of the moon reflected in water? 3

× × ×

I am immodest and impudent (as) I through deficient in poetic genius, am intent on eulogizing you-you whose foot stool (throne) was worshipped and honoured by gods Who else than a child wants to catch hold of a shadow of the moon (seen) in water? 3

× × ×

मूल श्लोक (जल-जन्तु भय मोचक)

वक्तुं गुणान् गुण - समुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरु - प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - नक्र - चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ।।४।।

जिनेश्वर के गुणो की महानता
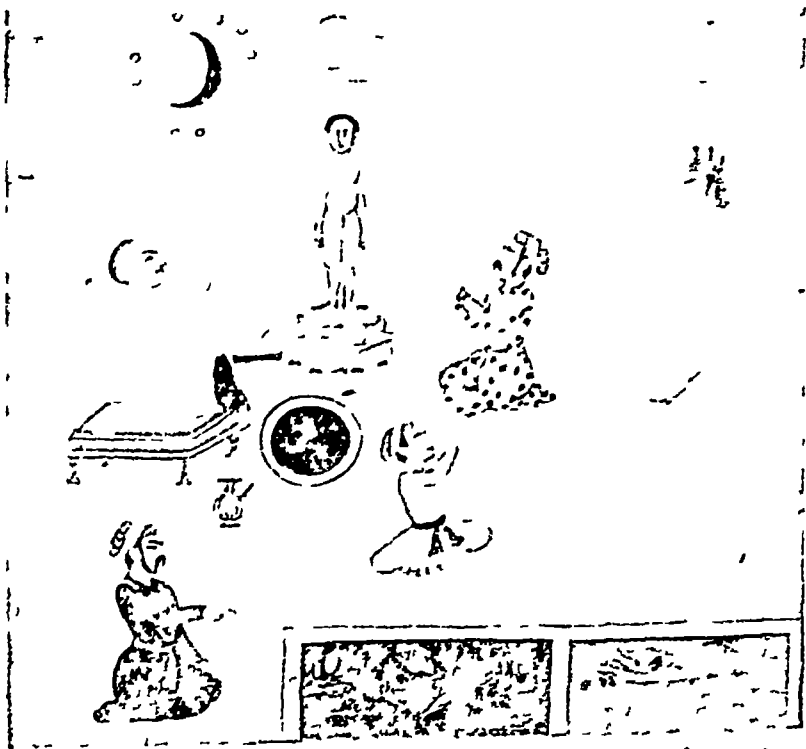
हे जिन चन्द्रकान्त से बढकर, तव गुण विपुल अमल अति श्वेत ।
कह न सके नर हे गुण सागर! सुरगुरु के सम बुद्धि समेत ।।
मक्र, नक्र चक्रादि जन्तु युत, प्रलय पवन से बढा अपार ।
कौन भुजाओ से समुद्र के, हो सकता है परले पार ? ।।४।।

अन्वय

गुण-समुद्र ! बुद्धया सुरगुरुप्रतिम अपि क ते शशाङ्ककान्तान् गुणान् वक्तुम् क्षम ? वा कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रम् अम्बुनिधिं भुजाभ्याम् तरीतु क अलम् ?

शब्दार्थ

गुण-समुद्र !—हे गुणो के समुद्र—हे गुणसागर ।

विशेषार्थ—गुणों के समुद्र—गुण-समुद्र यहा गुण शब्द से तात्पर्य ज्ञान, दर्शन चारित्रादि आत्मा के अनन्त गुणों से समझना चाहिए ।

बुद्धया—बुद्धि के द्वारा ।

सुरगुरु प्रतिम—बृहस्पति के समान ।

सुरगुरु—बृहस्पति, उनके प्रतिम—समान, वही हुआ सुरगुरु प्रतिम ।

अपि—भी ।

क—कौन मनुष्य ?

ते—तुम्हारे, आपके ।

शशाङ्ककान्तान्—चन्द्रमा तुल्य उज्ज्वल—ऐसा

विशेषार्थ—शशाङ्क—चन्द्रमा, उस जैसी कान्त—कान्ति वाला उज्ज्वल वही हुआ शशाङ्ककान्त । यह पद भी गुणान् का विशेषण होने से द्वितीया के बहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है ।

गुणान्—गुणो को ।

वक्तुम्—कहने के लिए—कहने मे ।

क्षम—समर्थ है ?

यहा अस्ति पद अध्याहार से ग्रहण करने योग्य है ।

वा—अथवा ।

कल्पान्तकाल पवनोद्धतनक्रचक्रम्—प्रलय काल के तूफानी तेज थपेडों से उछल रहे हैं मगरमच्छ घडियाल-आदि भयकर जल-जन्तु जिसमे ऐसे ।

विशेषार्थ—कल्प—युग, उसका अन्त कल्पान्त, निमित्त हो उसमे जो काल, वही हुआ कल्पान्तकाल अर्थात् प्रलयकाल, उस प्रलयकाल की प्रचण्ड-तेज आधी मे उछल रहा है मगरमच्छ घडियाल आदि जलचरो का समुदाय, वही हुआ कल्पान्तकाल पवनोद्धतनक्रचक्र, उसको । यह पद अम्बुनिधि का विशेषण होने से द्वितीया के एक वचन मे आया है ।

शास्त्रोक्त विधान है कि जब प्रलय काल होता है तब भयकर आधी चलती

विवेचन

स्तोत्र रचना मे तत्पर आचार्य श्री कहते हैं कि हे आदीश्वर देव! आप तो गुणो के महासागर सदृश शान्त है अर्थात् आप अनन्त गुणो से परिपूर्ण हैं और फिर प्रत्येक गुण चन्द्रमा की भांति उज्ज्वल है। इन सब गुणो की यथार्थ वन्दना बृहस्पति तुल्य प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भी जब नही कर सकता तब फिर भला मेरी क्या सामर्थ्य जो आपके गुणो का वर्णन कर सकू ?

आपके यथार्थ गुणो का वर्णन करने के लिए कितना ही प्रयास करे किन्तु नही कर सकते। विशेष स्पष्टीकरण करते हुए वह कहते हैं कि जहां प्रलय काल की पवन जैसी आधी चल रही हो और मगरमच्छ घडियाल आदि जल-चर प्राणी जिसमे उछल रहे हो ऐसे महासागर को दोनो भुजाओ से तर कर

सकने मे कौन-सा मनुष्य समर्थ हो सकता है ? तात्पर्य यह कि ऐसा कोई नही कर सकता।

इसी भाँति कोई मनुष्य कितना ही बुद्धिमान हो, विद्वान हो, महापण्डित की ख्याति मे विभूपित हो तो भी आपके गुणो का यथावत् वर्णन नही कर सकता।

यहाँ यह समझने योग्य वस्तु है कि गुण अनत हैं और वाणी क्रमवर्ती है तथा गुण चैतन्यमयी हैं तथा वाणी जड शब्दमयी है इसलिए वाणी द्वारा जिनेश्वरदेव के सब गुणो का यथावत् वर्णन किसी भी प्रकार नही हो सकता। फिर तीर्थङ्कर भगवन्त के एक ही गुण का वर्णन करना होता तो वह भी वाणी के द्वारा सभव नही था क्योकि शब्दशक्ति मर्यादित है अतएव सम्पूर्ण गुणो का वर्णन वाणी मे नही आ सकता।

Lore thou art the very occean of virtue who though vying in wisdom with the preceptor on the gods, can descride thine excellences spotless like the moon ? Whoever can cross with hands the ocean, full of alligators lashed to fury by the winds of the Doomsday 4

Who is able to describe your merits, as clear and shinning as the light of the moon, even though he may equal Vrihaspati- in talent ? Who is able to swim an ocean full of propoises and whates, tossed upwards by the tempest of deluge ? 4

अन्वय

मुनीश ! स अहम् तथापि भक्तिवशात् विगतशक्ति अपि तव स्तव कर्तुं प्रवृत्त मृग प्रीत्या आत्मवीर्यम् अविचार्य निजशिशो परिपालनार्थम् किम् मृगेन्द्रम् न अभ्येति ?

शब्दार्थ.

मुनीश—हे मुनीश्वर ऋषभदेव—हे मुनीन्द्र आदिदेव !

विशेषार्थ —मुनि—साधु, उनके ईश—स्वामी—ईश्वर, वे मुनीश, श्री जिनेश्वर देव साधु संघ के स्वामी होते हैं, अत उनको इस प्रकार के विशेषण में प्रयुक्त किया है। यहा मुनीश पद से श्री ऋषभदेव भगवान को संबोधित किया है।

स —वह असमर्थ—अशक्त—सामर्थ्यहीन।

अहम्—मैं मानतुग।

तथापि—फिर भी।

भक्तिवशात्—भक्ति के कारण—भक्ति के लिए।

विगत शक्ति —शक्ति हीन—शक्ति रहित।

विशेषार्थ —वि—विशेष रूप से, गत—चली गई है, शक्ति—(बल, ताकत, एनर्जी) जिसकी ऐसा वह विगतशक्ति अर्थात् शक्ति विहीन।

अपि—होते हुए भी।

तव स्तव कर्तुम्—तुम्हारे गुण कीर्तन को करने के लिए।

प्रवृत्त —तत्पर हूं, सन्नद्ध हूँ।

मृगी—हरिणी।

प्रीत्या—प्रीति से, स्नेहातिरेक से।

आत्मवीर्यम्—अपने सामर्थ्य को।

विशेषार्थ —आत्म—अपनी, वीर्य—शक्ति, वही हुआ आत्मवीर्य, उसको (यह पद द्वितीया के एक वचन मे आया है।)

अविचार्य—विना विचारे।

निजशिशो —अपने वच्चे की।

विशेषार्थ —निज—अपने, शिशु—बालक, वही हुआ निज शिशु, उसका यह पद षष्ठी के एक वचन मे प्रयुक्त हुआ है।

परिपालनार्थम्—रक्षा करने के लिए।

किम्—क्या ?

मृगेन्द्र न अभ्येति—सिंह का सामना नहीं करती ? अर्थात् अवश्य करती है।

विशेषार्थ —मृग—पशु, उनका इन्द्र—राजा, वही हुआ मृगेन्द्र अर्थात् पशुओं का राजा।

भावार्थ

विवेचन

अभी तक आचार्य श्री मानतुंग मुनि ने भक्तामर के प्रथम छंद में मंगलाचरण पूर्वक आदिनाथ भगवान को नमन किया और उनके पश्चात् क्रमश दूसरे, तीसरे तथा चौथे छन्द में उन्होंने अपनी लघुता, अल्पज्ञता एवं असमर्थता को एक कोटि में रखा तो दूसरी कोटि में श्री आदिनाथ भगवान के गुणो की प्रचुरता, अनन्तज्ञान की प्रभुता तथा अनन्तशक्तिमत्ता को रखा। ये दोनो कोटियां परस्पर में सर्वथा विपरीत है अथवा इतनी अधिक असम्भव है जितनी कि किसी सरिता के दो तटों का मिलना। तथापि इस असम्भवता को जोडने का प्रयत्न अपने काव्य वैभव एवं भक्ति के बल पर करने के लिए वे तत्पर हुए हैं। अर्थात् भक्ति के माध्यम से अशक्ति भी शक्ति बन कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर रही है। इसके लिए आचार्य श्री ने एक बहुत ही सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किया है—

वात्सल्य भक्ति, प्रेम और ममता का एक सशक्त प्रतीक माना जाता है।

मानव मे ही नही प्रत्युत तिर्यञ्च पशुओ मे भी यह वात्सल्य भावना दृष्टिगत होती है और उसका ज्वलन्त उदाहरण उस समय देखा जाता है कि जव किसी हरिणी का नन्हा सा शावक (वत्स) शेर के चगुल मे आ जाता है तव यदि ऐसे समय मे हरिणी वहाँ उपस्थित हो तो वह मूक वन कर अपनी ममता भरी आँखो से उसका वध कतई नही देख सकती। यद्यपि वह जानती है कि सिंह का मुकाबला करना उसकी शक्ति के वाहर है तथापि वात्सल्य एव प्रेम की जवरदस्त भावना उसे सिंह का सामना करने के लिए प्रेरित करती है। भले ही उसमे उसे सफलता मिले या नही, किन्तु कर्त्तव्य से विमुख नही होती। इसी दृष्टान्त के समानान्तर कवि श्री ने अपने को लघु, अशक्त एव अल्पज्ञता की कोटि मे रख कर भी उत्कृष्ट भक्त सिद्ध किया है अर्थात् इस भक्ति की प्रवलता ने उपर्युक्त तीनो प्रकार की निर्वलताओ पर विजय प्राप्त की है और इस प्रकार भक्ति रस से परिपूर्ण यह सम्पूर्ण काव्य भक्तामर के नाम को इसी छन्द मे सार्थक कर देता है।

Though devoid of power yet urged by devotion, O Great Sage, I am determined to eulogise you Does not a deer, not taking into account its own might, face a lion to protect its young-one out of affcction ? 5

× × ×

O, great sage ! (Through I am quite deficient in poetic talent) yet I have unnertaken to compose this Stotra in your praise, being prompted by my devotion to you Does not a doe, being encouraged by love for her fawn, ran at the lion to deliver her young one (from the lion's clutches) without thinking of her own power ? 5

× × ×

मूल श्लोक (सरस्वती भगवती विद्या प्रसारक)

अल्पश्रुत श्रुतवता परिहास - धाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिल किल मधौ मधुर विरौति,
तच्चारुचूतकलिका[1] - निकरैकहेतु ॥६॥

स्तोत्र रचना का मूल कारण-भक्ति
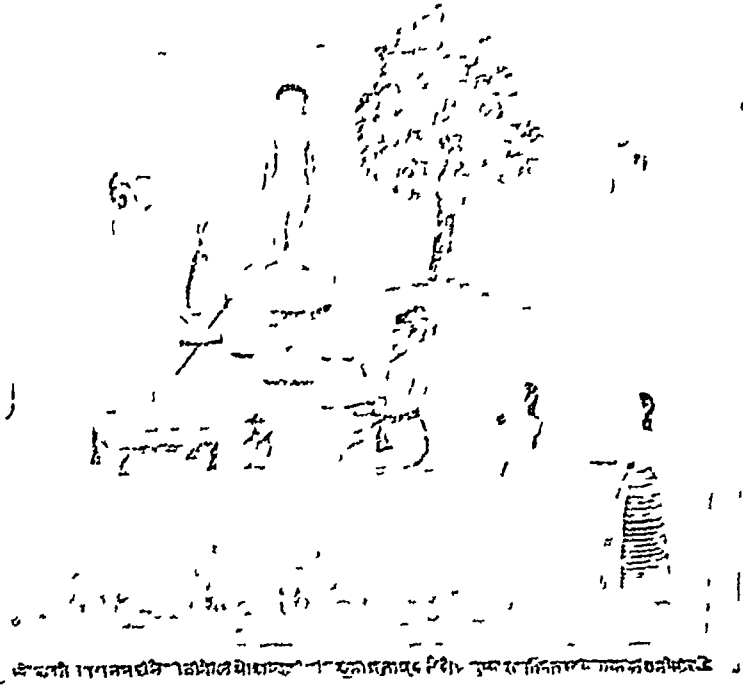
अल्पश्रुत हू श्रुतवानो से, हास्य कराने का ही धाम ।
करती है वाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठो याम ॥
करती मधुर गान पिक मधु मे, जग जन मन हर अति अभिराम ।
उसमे हेतु सरस फल फूलो के युत हरे-भरे तरु-आम ॥६॥

---

१ तच्चारुचाम्र इति पाठान्तरम् ।

अन्वय.

अल्पश्रुतम् (अतएव) श्रुतवताम् परिहासधाम् माम् त्वद्भक्ति एव बलात् मुखरीकुरुते, किल यत् कोकिल मधौ मधुर विरौति, तत् चारुचूत-कलिकानिकरैकहेतु ।

शब्दार्थ.

अल्पश्रुतम्—अल्पज्ञ, अल्पज्ञानी, अल्पश्रुताभ्यासी ।

विशेषार्थ —अल्प—थोडा है, श्रुत—शास्त्रज्ञान जिसको ऐसा वह अल्पश्रुत । जैन परिभाषा में शास्त्रो को श्रुत कहा जाता है, क्योकि वह गुरुओ के मुख से सुनकर ही अवधारण किया जाता है ।

अतएव—इसलिए । अल्पश्रुत का परिणाम जो कि श्रुतवताम् परिहास-धाम के रूप मे आगे आ रहा है, वतलाने के लिए अतएव शब्द को अध्याहार से यहाँ ग्रहण किया गया है ।

श्रुतवताम्—विद्वानो के ।

विशेषार्थ —जिन्होंने श्रुत अर्थात् शास्त्रो को भलीभांति देखा, सुना, समझा और भाव भावित किया है वे श्रुतवत् अर्थात् विद्वान् हुए । यह पद षष्ठी के बहुवचन के रूप मे यहाँ प्रयुक्त हुआ है ।

परिहासधाम—उपहास का पात्र, हँसी का स्थान ।

विशेषार्थ —परिहास—उपहास—हँसी, उसका धाम—स्थान—ठिकाना । वह हुआ परिहासधाम । यह पद माम् का विशेषण होने से द्वितीया के बहु वचन वनने पर भी सामासिक शब्द के रूप मे प्रयुक्त हुआ है ।

माम्—मुझको ।

त्वद्भक्ति एव—आपकी भक्ति ही ।

बलात्—वलपूर्वक, जबरन ।

मुखरीकुरुते—वाचाल कर रही है, मुखर कर रही है ।

किल—निश्चयत -निश्चय से, सचमुच मे ।

यत्—जो ।

कोकिल —कोयल ।

मधौ—मधु ऋतु मे, वसन्त काल मे ।

(मधु—वसन्त ऋतु ।)

मधुर—मधुर स्वर से, सुरीले स्वर से ।

विरौति—कुहुकती है, कुहू-कुहू करती है, कूजती है ।

तत्—वह, सो ।

चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु —सुन्दर आम्रवृक्षो के मौर (बौर, मजरी, कोपल) का समूह ही एक मात्र कारण है ।

विशेषार्थ —चारु—मनोहर, सुन्दर, चूत—आम्रवृक्ष। उसकी कलिका—मजरी। सो वह हुआ चारुचूतकलिका। उसका निकर—समूह, वही हुआ चारुचूतकलिकानिकर। वही है एक मात्र हेतु जिसमे ऐसा वह चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु ।

भावार्थ.

आचार्यश्री स्तुति रचना का कारण प्रकट करते हुए उसमे अपने कर्तृत्वपने का निषेध करते हैं। वे कहते हैं कि हे आदिनाथ भगवन्! मैं अल्पज्ञ हूँ, शास्त्रो का विशेष जानकार नही हूँ, तथापि स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ। ऐसा करने से निश्चय ही मैं विद्वानो की हँसी का पात्र बनूँगा। मुझमे आपके गुणगान करने की शक्ति तो है नहीं, परन्तु भक्ति अवश्य ही वलवती है जो कि मुझे जबरन स्तुति करने के लिए वाचाल कर रही है—विवश कर रही है।"

जैसे कि कोयल मे यदि स्वत बोलने की शक्ति होती तो वह वसन्त ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओ मे भी बोलती हुई सुनाई देती, परन्तु वह तो तभीमीठी वाणी बोलती है, जब कि वसन्त[1] ऋतु मे आम्रवृक्षो की मजरियाँ लहलहा उठती हैं अर्थात् आमो के बौर ही उसके बोलने के प्रेरणा केन्द्र हैं। उसी भाँति आपकी गुण-मजरी ही एक मात्र मुझ अल्पज्ञ की स्तुति का प्रेरणा केन्द्र बनी हुई है।

विवेचन

हमारे ज्ञान का जितना भी अल्पाधिक विकास है, वह मतिज्ञानावरण एव श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपशम की तारतम्यता के अनुसार ही व्यक्त है। श्री मानतुगाचार्यजी अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहते हैं कि—"मुझ मे मतिज्ञान का क्षयोपशम तो अल्प है ही साथ ही श्रुतज्ञान का विकास भी अत्यन्त अल्प है।"

तीसरे छन्द मे आया हुआ "बुद्धया विनापि" पद जहाँ उनकी मतिज्ञान सबधी अल्पज्ञता की ओर सकेत करता है, वहाँ इसी छद मे आया हुआ "अल्प-

१ चैत और वैसाख ये दो महीने वसन्त ऋतु के हैं।

मूल श्लोक (सर्व दुरित सकट क्षुद्रोपद्रवनिवारक)

त्वत्सस्तवेन भव - सन्तति - सन्निबद्धं,
पाप क्षणात् क्षय-मुपैति-शरीरभाजाम।
आक्रान्त - लोक - मलिनील - मशेषमाशु।
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वर - मन्धकारम् ॥७॥

जिनस्तवन से पापक्षय
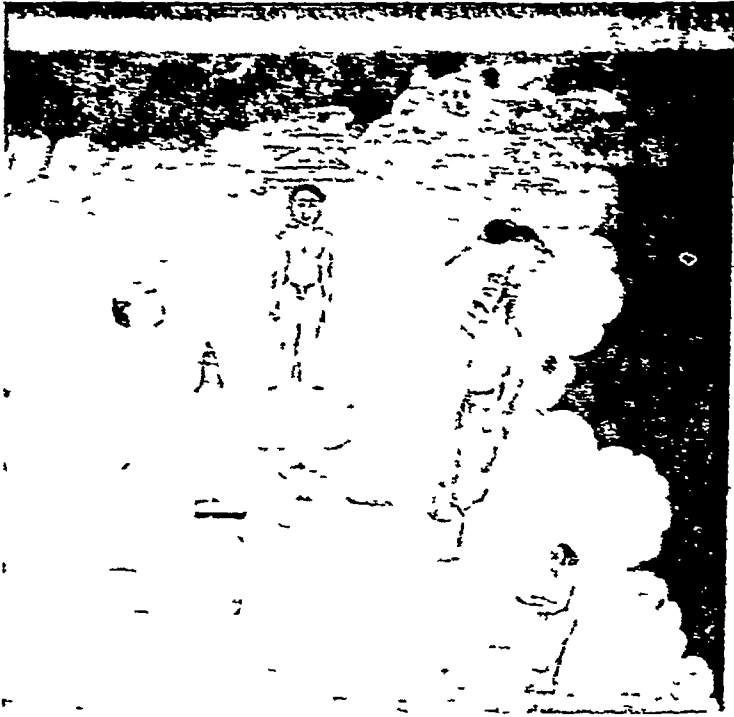
जिनवर की स्तुति करने से, चिर संचित भविजन के पाप।
पल भर मे भग जाते निश्चित, इधर-उधर अपने ही आप ॥
सकल लोक मे व्याप्त रात्रि का, भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त।
प्रात. रवि की उग्र-किरण लख, हो जाता क्षण मे प्राणान्त ॥७॥

क्षणात्—पल भर मे—क्षण भर मे—जल्दी मे जल्दी।
क्षयम्—विनाश को।
उपैति—प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ

हे प्रभो! जिस प्रकार भ्रमर समूह के समान रात्रि का सघन काला अन्धकार सूर्य की किरणो का स्पर्श पाते ही पूर्णरूपण नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार आपके कीर्तन से जीवधारियो के जन्म-जन्मान्तरो से उपार्जित एव बद्ध पाप कर्म तत्काल ही समूल नष्ट हो जाते है।

विवेचन

इस छन्द मे भगवत् भक्ति का फल आचायश्री के द्वारा निरूपित किया गया है—

ससारी जीव निरन्तर मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योगो क द्वार से पापाश्रव करके कर्म बन्धन मे बधता रहता है। कम बन्धनो से जन्म जन्मान्तरो तक चतुगतियो मे परिभ्रमण करता रहता है। जहा उसे जन्म जरा मरण रोग शोक आदि नाना प्रकार की आधि-व्याधि और उपाधियो से त्रस्त होना पडता है, कम बन्धन से मुक्ति का सबसे सुगम-सरल साधन केवल भगवत् भक्ति ही है।

जिनेश्वर देव के गुणो के स्मरण से प्रशस्त राग के कारण शुभाश्रव शुभ-बन्ध का स्थिति और अनुभाग बढता जाता है औरअशुभास्रव अशुभबन्ध का स्थिति अनुभाग क्रमश कम हो जाता है यहा तक कि उत्कट भक्ति से आवद्ध सम्पूर्ण कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं। कहा भी है—

> जन्म-जन्म कृत पाप, दर्शनेन विनश्यति।
> न चिर तिष्ठते पाप, छिद्र हस्ते यथोदकम्॥

जिस प्रकार सूर्य की किरण मे रात्रि का सघन काला अन्धकार पौ फटते ही विलीन हो जाता, है उसी प्रकार आपके दर्शन स्मरण रूपी सम्यक्त्व की किरण से मिथ्यात्व रूपी अन्धकार क्षण भर मे नष्ट हो जाता है।

मानव हृदय मे जब अपने आदर्श के गुणो का आलोक भर जाता है तो फिर कल्मष रूपी अन्धकार वहाँ कैसे ठहर सकता है ? भला कही एक म्यान मे दो तलवारें रह सकती हैं—अर्थात् कभी नही।

मिथ्यात्व तो तभी तक था जब तक कि हृदय मे जिनेन्द्र भक्ति का प्रखर प्रकाश नही था। मानव हृदय मे श्री जिनेन्द्रदेव के गुणो का प्रकाश होते ही उसमे छुपे बैठे हुए समस्त सासारिक पाप कर्म तुरन्त ही समाप्त हो जाते हैं और इसीलिए ही भक्त आत्मा आत्म विभोर हो निरन्तर सोचता है कि—

अनन्तानन्त-ससार सन्ततिच्छेदकारणम्।
जिनराजपदाम्भोज - स्मरण शरणं मम ॥

अर्थात् श्री जिनराज के चरण कमलो का स्मरण अनन्तानन्त ससार की परम्परा को नाश करने वाला है। भगवन्! आप मुझे अपनी शरण मे लेलो।

As the black-bee-like darkness of the night, over-spreading the universe, is dispelled instantaneously by the rays of the sun, so is the sin of men, accumulated through cycles of births, dispelled by the eulogies offered to you 7

× × ×

As the rays of the sun quickly and easily disperse the total darkness of night which, being as dark and black as bees, pervaded throughout the whole world similarly the continuous sins and crimes of all the living beings (which reference to this worldly succession) are easily destroyed by your praise 7.

× × ×

मूल श्लोक (सर्वारिष्ट योग निवारक)

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद—
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात्[1]।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूद - बिन्दुः ॥८॥

स्तुति की प्रस्तावना

मैं मति-हीन-दीन प्रभु तेरी, शुरू करूँ स्तुति अघ-हान।
प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तो का निश्चय से मान ॥
जैसे कमल-पत्र पर जल कण, मोती कैसे आभावान।
दिपते हैं फिर छिपते हैं, असली मोती मे है भगवान ! ॥८॥

---

१ प्रसादात् इति पाठान्तरम्।

अन्वयः

इति मत्वा नाथ ! तनुधिया अपि मया, इद तव सस्तवनम् आरभ्यते, तव प्रभावात् सताम् चेत हरिष्यति ननु उदबिन्दु नलिनीदलेषु मुक्ताफल-द्युतिम् उपैति।

शब्दार्थः

इति मत्वा—ऐसा मानकर।

विशेष सूचना—सातवें छन्द मे आचार्यश्री ने यह दर्शाया था कि "प्राणियो के अनेक जन्मो मे उपार्जित किये हुए पाप कर्म श्री जिनेन्द्र देव के सम्यक् स्तवन करने से तत्काल सम्पूर्णतया नष्ट हो जाते है।" इस प्रसग को आठवें छन्द के साथ जोडने के लिए यहाँ प्रस्तुत छन्द मे इति शब्द का प्रयोग किया गया है।

नाथ !—हे नाथ ! हे स्वामिन् !

तनुधिया अपि—मन्द बुद्धि वाला होने पर भी।

विशेषार्थ—तनु—स्वल्प, मन्द है, धी—बुद्धि जिसकी ऐसा वह तनुधी। यह पद मया का विशेषण होने से तृतीया के एक वचन मे आया है। अपि—फिर भी। तात्पर्य यह कि मन्द बुद्धि वाला होने पर भी।

मया—मेरे द्वारा।

इद—यह।

तव—आपका, तुम्हारा।

सस्तवनम्—स्तोत्र, सस्तवन।

विशेषार्थ—स—समीचीन। स्तवन—गुण कीर्तन, वही हुआ सस्तवन—अर्थात् सम्यक् स्तोत्र।

आरभ्यते—प्रारम्भ किया जा रहा है (कर्मणि प्रयोग)।

तव प्रभावात्—आपके प्रभाव से (पचमी)।

सता—सत्पुरुषो के, सज्जन[1] पुरुषों के।

चेत हरिष्यति—चित्त को हरण करेगा।

ननु—निश्चय से।

उदबिन्दु—जल की बूद।

---

१ दुर्जनो को तो अच्छे से अच्छा भी काव्य बुरा लगता है, इसलिए यहाँ पर सज्जन विशेषण दिया है।

विशेषार्थ —**उद्**—पानी, उसकी **बिन्दु** —बूद टीप । वही हुआ **उदबिन्दु** । पानी वाचक **'उदक'** शब्द का यहाँ सामासिक रूप मे **उद्** आदेश हुआ है ।

नलिनीदलेषु—कमलिनी के पत्तो पर ।

विशेषार्थ —**नलिनी**—कमलिनी, उसका **दल** –पत्ते, वह हुआ **नलिनीदल,** उनपर (सप्तमी वहु वचनान्त) ।

मुक्ताफलद्युतिम्—मोती की कान्ति को ।

विशेषार्थ —**मुक्ताफल**—मोती, उसकी **द्युति**—कान्ति, वही हुआ **मुक्ताफलद्युति,** उसको ।

उपैति—प्राप्त करती है ।

भावार्थ

हे प्रभावक प्रभो !

जिस प्रकार कमलिनी के पत्ते पर पडा हुआ ओस-विन्दु उस पत्ते के स्वभाव एव प्रभाव से मोती के समान आभा विखेर कर दर्शको के चित्त को आल्हादित करता है, उसी प्रकार मुझ मदबुद्धि के द्वारा किया हुआ यह स्तवन भी आपके प्रताप, प्रभाव एव प्रसाद से सज्जन पुरुषो के चित्त को प्रफुल्लित करेगा ।

विवेचन

श्री मानतुगाचाय जी श्री जिनेन्द्र गुण कीर्तन को समस्त पाप कर्मो का उन्मूलक सिद्ध करने के बाद पुन उसकी अतिशय महिमा का दूसरा पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—कि मन्द बुद्धि वाला होने पर भी मेरे द्वारा यह स्तवन कार्य क्यो प्रारभ किया जा रहा है जब कि वहुश्रुत विद्वानो द्वारा इसके उपहासास्पद होने की पूरी पूरी सभावना है ? उत्तरस्वरूप वे स्वय कहते हैं कि इसकी पृष्ठभूमि मे एक सुदृढ आत्मविश्वास हिलोरें ले रहा है और वह आत्मविश्वास है श्री जिनेन्द्र देव का प्रताप, प्रभाव एव प्रसाद । क्योकि वे ही तो इस स्तवन रूपी शरीर की आत्मा हैं। गुण गायन भले ही मदबुद्धि के द्वारा किया जा रहा हो परन्तु चूकि उसमे आपके गुणो की ही पुट आद्यत विद्यमान है तो आश्चर्य नही कि मेरा यह लघु स्तोत्र भी महान् चमत्कारी बन कर सत्पुरुषो के हृदय को प्रफुल्लित करने मे समर्थ होगा ।

ओस की बूद का भी भला कोई मूल्य होता है ? परन्तु वही बूद जब कमलिनी के पत्र पर पड जाती है तब स्वभावत ही वह मोती का रूप धारण

करके दर्शको के मन को मोहित करती है। आखिर उस पानी की बूद को मोती की आभा देने मे किसका हाथ है ? कमलिनी के पत्ते का ही क्या यह स्वाभाविक प्रभाव नहीं है ? अर्थात् अवश्य है। उसी भाँति स्तुति मे गर्भित सारा चमत्कार आपके ही परम प्रसाद का परिणाम है। इसमे मेरा कुछ नही।

इस छद मे मुनिवर्य ने पुन अपनी कर्तृत्वहीनता एव अपने इष्टदेव की अचिन्त्य गुरुता का उल्लेख किया है। यही तो उनकी महानता है। कहा भी है—

बडे बडाई न करें, बडे न बोलें बोल।
हीरा मुख तें ना कहे, लाख हमारो मोल ॥

आध्यात्मिक ध्वनि

भव्य जीवो के वचन रूपी जल-कण मिथ्यात्व-मल मैल के हटते ही गुणानुवाद रूपी पत्ते भी उस पानी पर फैले हुए हैं ! हे भगवन् ! मेरी आत्मा पर कर्मों के आवरण है ! उसमे यथार्थ स्वरूप होना असम्भव है, तव भी पौद्गलिक शब्दो से मेरे द्वारा जो स्तवन हो रहा है, वह सतो को तो सन्तुष्ट करेगा ही। दूसरे शब्दो मे कहा जाए तो ऐसा भी अर्थ ध्वनित होता है कि सम्पूर्ण सिद्धि तो स्वय रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग पर चलने से ही होती है, परन्तु उसका प्रारम्भ तो सम्यक् दर्शन से ही होता है, अर्थात् यदि मोक्ष न होगा तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो होगी ही।

Thinking thus O Lord, I though of little intelligence, begin this eulogy (in praise of you), which will, through Your magnanimity, captivate the minds of the righteous, water drops, indeed, assume the lustre of pearls on louts leaves 8

× × ×

Having believed (your this eulogy as a means of destroying all sins) thus I, (though) possessed of only scanty genius, begin this composition This, being favoured by you, will captivate the hearts of good ones Indeed the drops of water, being in contact with the leaves of lotuses, bear resemblance to the luster of pearls 8

मूल श्लोक (सप्तभय संहारक अभीप्सित फल दायकं)

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्त - दोषं
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

पापहारिणी-जिनवर-गाथा
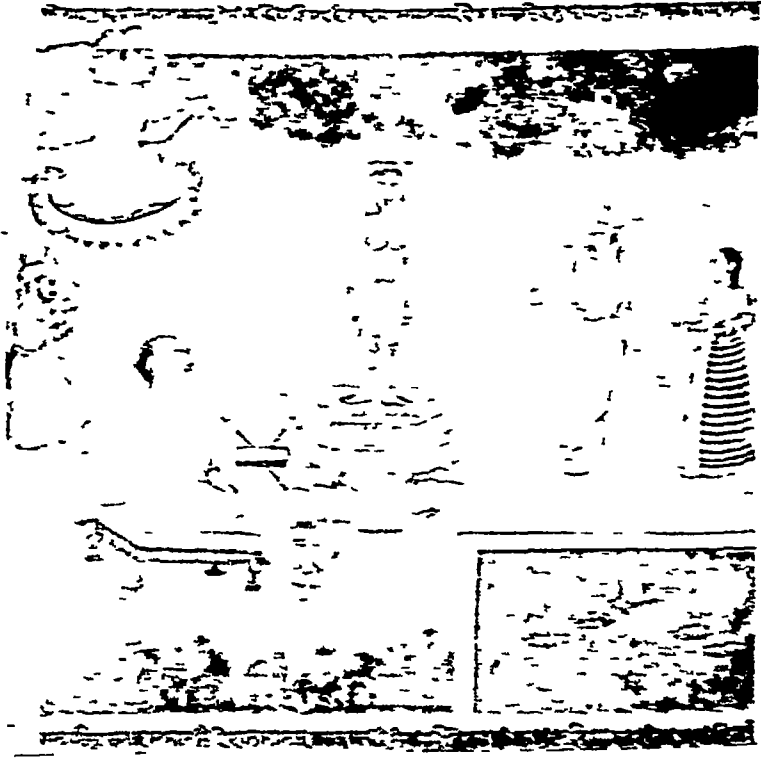
दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष।
पुण्य कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष॥
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती सर के कमलों को भरपूर।
फेंका करता सूर्य किरण को, आप रहा करता है दूर॥९॥

अन्वयः

तव अस्तसमस्तदोषम् स्तवनम् दूरे आस्ताम् त्वत्सकथा अपि जगताम् दुरितानि हन्ति सहस्रकिरण दूरे (अस्ति तस्य) प्रभा एव पद्माकरेषु विकास-भाज्जि कुरुते ॥

शब्दार्थः

तव—आपका—तुम्हारा।

अस्तसमस्तदोष—निर्दोष—समस्त दोषो से रहित।

विशेषार्थ —अस्त—ध्वस्त, तिरहित अर्थात्—दूर हुए है जिस मे से समस्त—समग्र, दोष—अवगुण याने निर्दोष—अर्थात्-समस्त दोष रहित।

स्तवनम्—गुणो का कीर्तन—स्तवन—स्तुति।

दूरे आस्ताम्—दूर रहे।

त्वत्सकथा—आपकी सद्वार्ता—आपकी चरित्रचर्चा।

अपि—भी।

'जगताम्—समस्त ससारी जीवो के।

विशेषार्थ —'जगता अर्थात् जगन्निवासिलोकानाम्' (यहा आधार मे आधेय का उपचार है)

दुरितानि—पापो को अपराधो को।

हन्ति—हनन करती है, नष्ट करती है।

सहस्रकिरण —सूर्य।

विशेषार्थ —सहस्र—हज़ार हैं, किरण—रश्मि, जिसमे ऐसा वह सहस्र-किरण अर्थात् सूर्य, दिनकर, सहस्ररश्मि।

दूरे—दूर।

(अस्ति)—(है)।

(तस्य)—(उसकी)।

प्रभा एव—कान्ति ही।

पद्माकरेषु—सरोवरो मे।

विशेषार्थ —पद्म—कमल, उसका आकर—समूह जिसमे हो उसे कहा जाता है पद्माकर।

जलजानि—कमलो को।

विशेषार्थ —जल मे पैदा हो, उत्पन्न हो वह जलज अर्थात् कमल।

विकासभाज्जि—विकसित, प्रफुल्लित।

कुरुते—कर देती है ।

भावार्थ

हे चरित्रनायक !

सम्पूर्ण दोषो से रहित आपका पवित्र कीर्तन तो बहुत दूर की बात है, मात्र आपकी चरित्र-चर्चा ही जब प्राणियो के पापो को समूल नष्ट कर देती है तब स्तवन की अचिन्त्य शक्ति का तो कहना ही क्या ।

सूर्यागमन के पूर्व ही जब उसकी प्रभापुज मात्र से सरोवरो के कमल खिल खिल उठते हैं तब सूर्योदय होने पर तो उसकी किरणो के स्पर्श से वे खिलेंगे ही खिलेंगे, इसमें सन्देह नही, अर्थात् सूर्य सुदूरवर्ती होने पर भी अपने किरणो के माध्यम से सरोवरो के कमलो को विकसित कर देता है ।

विवेचन

अभी तक स्तुतिकार उपरोक्त पद्यो मे जिनेश्वर देव के स्तवन की अचिन्त्य महिमा का गुणगान गाते रहे हैं । इस छन्द मे वे उनके चरित्र कथन की महिमा दिग्दर्शित कराते हुए कहते हैं—कि आपका प्रशस्ति गायन तो बहुत बडी बात है क्योकि उसका महत्व तो स्वयं सिद्ध है परन्तु आपकी केवल चर्चा ही इतनी प्रभावक है कि उससे प्राणियों के पाप ध्वस्त हो जाते हैं । इसी विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए वे एक दृष्टान्त रूपक प्रस्तुत करते हैं—कि सूर्य पृथ्वी की धरातल से कोसो दूर अपने स्थान पर अवस्थित है तो भी अपनी प्रभा से सरोवरो के कमलो को खिला देता है अर्थात् आपकी चर्चा तो सूर्य की प्रभा की तरह है और आपका स्तवन साक्षात् रविमडल ही है ।

इस श्लोक की छायावादी व्याख्या करने से एक दूसरा भी अर्थ ध्वनित होता है कि—हे आदीश्वर देव ! आपको इस कर्मभूमि मे आये हुए पूरा कल्पकाल व्यतीत हो गया परन्तु काल की वह दूरी अथवा विरह का अन्तराल आपकी चर्चा से समीपतम लगने लगता है कि जिसको सुनकर श्रोताओ के हृदय-कमल आज भी खिल उठते हैं । अर्थात् जब भक्त अपने हृदय-कमल मे आपका आह्वान करता है तो उस क्षण विरह काल का नही बल्कि सामीप्य का ही भान होता है । फिर जो भक्त आपके गुणो का स्तवन करता है वह आपके समान समस्त दोषो से रहित पवित्र व्यक्तित्व प्राप्त कर ले इसमे सन्देह ही क्या ?

सारांश यह कि जब अंश में ही इतना अधिक प्रताप है तो अंशी के महत्व का तो कहना ही क्या !

आध्यात्मिक-ध्वनि

स्वाभाविक आत्मा में शरीर, शब्दादिक का अत्यताभाव है। अत उनके माध्यम से, सयोग से चैतन्यमुर्ति आत्मा का यथार्थ वर्णन नही हो सकता। जड शब्द वाचक वन सकते हैं, वाच्य नही। अत केवल कथा वार्ता ही हो सकती है। यह कथा वार्ता ही दृढ आवरणो को भेद डालती है। फलस्वरूप आपकी प्रभा झलकने लगती है। क्या हमारे लिए यही पर्याप्त नही है ? इससे मिथ्यात्व और अनतानुबधी कषायें तो नष्ट हो जाती हैं, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान कषायें भी नीरस हो जाती हैं। चैतन्य कमल सम्यक्त्व-सूर्य के उदय मे प्रफुल्लित हो उठते हैं। देखिये एकीभाव स्तोत्रकर्त्ता मुनिश्री वादिराज जी के स्तोत्र का मुन्दर भावानुवाद —

जड शब्दों की प्रवृत्ति और है, निज स्वरूप चिन्मय कुछ और।
ऐसे पहुँच सकेंगे तुम तक, वाक्य हमारे हे सिरमौर ! ॥
भले न पहुँचे भक्ति-सुधा में, पगे हुए भीने उद्‌गार।
भव्यों को तो बन जावेंगे, कल्पवृक्ष वाछित दातार ॥

जड शब्दों की प्रवृत्ति और है, निज स्वरूप चिन्मय कुछ और।

Let alone Thy eulog, which destroys all blemishes, even the mere mention of Thy name destroys the sins of the world After all the sun is far away, still his more light makes the lotuses bloom in the tank. 9.

× × ×

Although the sun be away, his rays are strong enough to bloom sun lotuses in the pond ; similarly not to talk of your faultless praise the account (of your doings) only will prove destructive to the evils of the living beings. 9

मूल श्लोक (उन्मत्त कूकर विष-निवारक)

नात्यद्भुत[1] भुवन-भूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त. ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रित य इह नात्मसम करोति ? ॥१०॥

भक्ति से भगवत् प्राप्ति
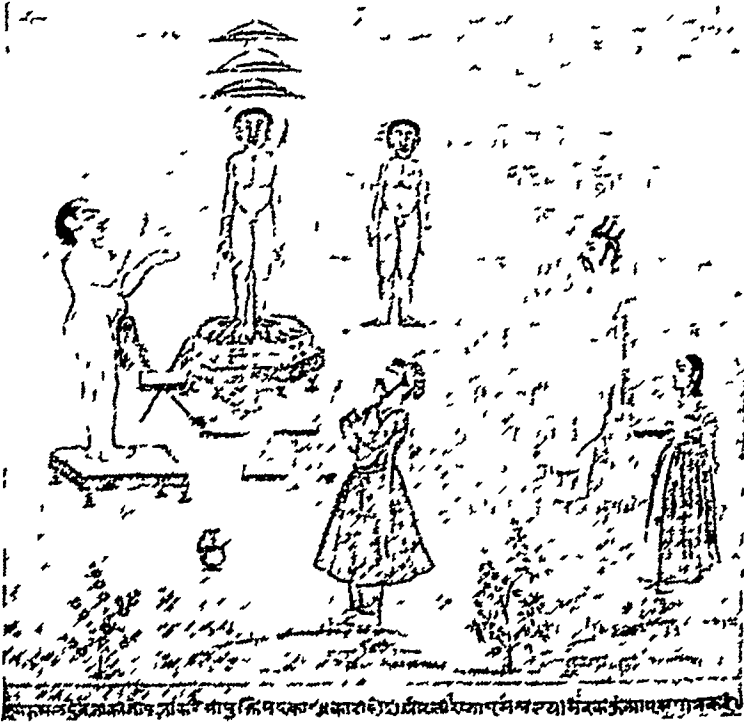
त्रिभुवन तिलक जगतपति हे प्रभु ! सद् गुरुओ के हे गुरुवर्य ।
सद्भक्तो को निज सम करते, इसमे नहीं अधिक आश्चर्य ॥
स्वाश्रित जन को निज सम करते, धनी लोग धन धरनी से ।
नहीं करे तो उन्हें लाभ क्या ? उन धनिको की करनी से ॥१०॥

---

१ "अत्यद्भुत" भी पाठ है, जो भवन्तम् का विशेषण है ।

अन्वयः

भुवनभूषण ! भूतनाथ ! भूतै गुणै भवन्तम् अभिष्टुवन्त भुवि भवत तुल्या भवन्ति (इति) अति अद्भुतम् न वा ननु तेन किम् य इह आश्रितम् भूत्या आत्मसमम् न करोति ।

शब्दार्थः

भुवनभूषण—हे विश्व के शृगार !

विशेषार्थ —भुवन—लोक, जगत, विश्व, उसके भूषण—मडन, अलकार, शृगार, वही हुआ भुवनभूषण ।

यह पद सबोधन मे लिया गया है । इस सबोधन के पश्चात् आने वाला शब्द 'भूतनाथ' भी इसी विभक्ति मे प्रयुक्त हुआ है ।

भूतनाथ ! हे जगन्नाथ—हे प्राणियो के स्वामिन् !

विशेषार्थ —भूत—प्राणी । उनके नाथ—स्वामी, वही हुए भूतनाथ । लौकिक शास्त्रो मे भूतनाथ शब्द शकर जी के अर्थ मे भी प्रसिद्ध है ।

भूतै —वास्तविक, प्रभूत, विपुल, विद्यमान ।

विशेषार्थ —'भूतै जातै विद्यमानै' (गु० टी०) ।

गुणै —गुणो के द्वारा ।

नोट —भूतै तथा गुणै दोनो शब्द तृतीया वहुवचनान्त हैं ।

भवन्तम्—आपको ।

अभिष्टुवन्त —भजने वाले भव्य पुरुष ।

भुवि—पृथ्वी पर, भूतल-तल पर । (सप्तमी एक वचन)

भवत —आपके ।

तुल्या—सदृश , समान ।

भवन्ति—हो जाते हैं ।

(इति)—(यह) इति शब्द यहा पर अध्याहार से ग्रहण किया गया है ।

अति—अधिक, वहुत ।

अद्भुतम्—आश्चर्यजनक, विचित्र, विलक्षण ।

न—नही है ।

वा—अथवा ।

ननु—निश्चय से (अव्यय पद)

तेन—उस (मालिक अथवा स्वामी से)

किम्—क्या ।

विद्यमान वास्तविक, विपुल गुणो का कीर्तन करने वाले भव्य भक्त यदि आप जैसे ही प्रभु बन जाते है तो इसमे आश्चर्य करने की कोई बात नही। क्योकि इस लोक मे जो धनीमानी श्रीमान् है वे भी अपने आश्रित सेवको को विपुल आर्थिक सहायता देकर अपने ही समान समृद्धिशाली बना लेते है। यहा पर आचार्यश्री ने जहा तीर्थङ्कर भगवन्तो के शासन मे साम्यवाद की झलक दिखलाई है वहाँ दूसरी ओर उन धनिक शासको पर भी कटाक्ष किया है कि जो अपने आश्रित अधीन सेवकों को अपने समान समृद्धिशाली नही बनाते तो फिर उनके विपुल वैभवशाली होने का क्या लाभ ? अथवा उनकी समृद्धि से क्या प्रयोजन ?

जैन-शासन मे साम्यवाद और समाजवाद की जितनी प्रतिष्ठा पाई जाती है उतनी अन्यत्र नही, यदि वर्तमान युग उसका अनुकरण करे तो विश्व की सारी समस्याए ही समाप्त हो जावें।

तात्पर्य यह कि जो भक्त जिनेन्द्र प्रभु का गायन करता है वह कभी अनाथ बन कर ससार-सागर मे गोते नही खाता वल्कि अपने प्रभु के समान ही अक्षय पद को प्राप्त कर लेता है।

इस छद मे एक अन्य भाव की छाया का भी यहां प्रतिभास मिलता है — वह यह कि—हे जिनेश्वरदेव जो मैं यहा आपका प्रशस्त कीर्तन कर रहा हूँ वह नियम से कालान्तर मे सिद्ध पद को प्राप्त करायेगा।

O ornament of the world ! O Lord of beings ' No wonder that those, adoring You with (Thy) real qualities, become equal to you What is the use of that (master), who does not make his subordinates equal to himself by (the gifts of) wealth 10

× × ×

O, ornament of the world and Lord of the living ! It is no wonder if he, who properly and duly praises you in this world, may attain equality with you What is the use of the master if he does not make his dependent equal to himself in wealth and fortune ? 10

× × ×

मूल श्लोक (आकर्षक एवं वांछा पूरक)

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेः रसितुं क इच्छेत्? ॥११॥

परम दर्शनीय परमात्मा
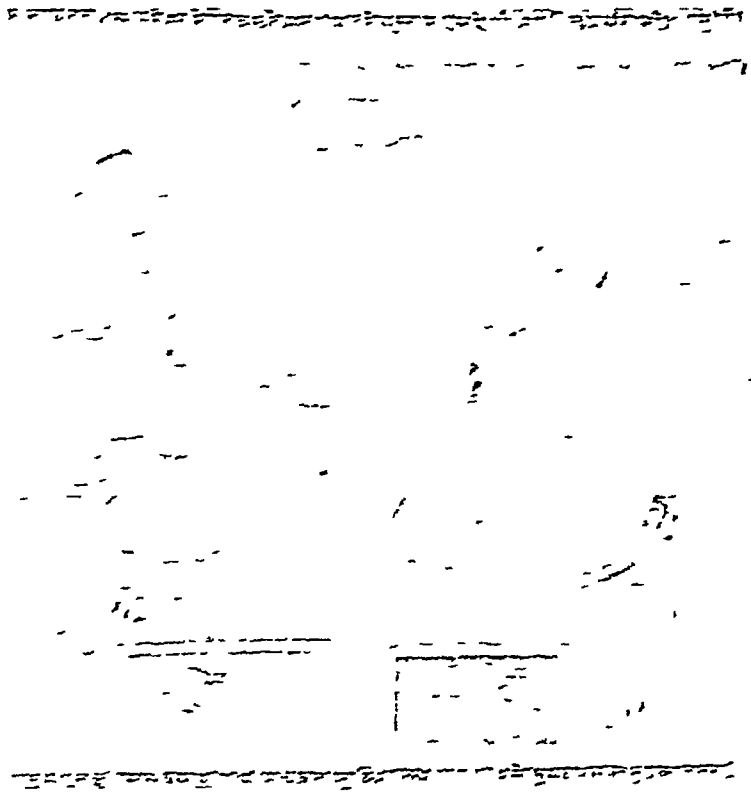
हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु, तुम्हें देखकर परम पवित्र ।
तोषित होते कभी नहीं हैं, नयन मानवों के अन्यत्र ॥
चन्द्र-किरण सम उज्ज्वल निर्मल, क्षीरोदधि का कर जलपान ।
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहे कौन पुमान ? ॥११॥

अन्वय

अनिमेषविलोकनीयम् भवन्तम् दृष्ट्वा जनस्य चक्षुः अन्यत्र तोषं न उपयाति। दुग्धसिन्धोः शशिकरद्युति पयः पीत्वा कः जलनिधेः क्षारं जलम् रसितुं इच्छेत् ?

शब्दार्थ

अनिमेषविलोकनीयम्— बिना पलक झुकाए, एक टक देखने योग्य अर्थात् टक-टकी लगाकर दर्शन करने योग्य।

विशेषार्थ. निमेष—आंख की पलकें, उनसे रहित जो हुआ अनिमेष, उसके द्वारा विलोकनीय—दर्शनीय अर्थात् देखने योग्य। यही हुआ अनिमेष-विलोकनीय।

तात्पर्य यह कि आंख के पलक झुकाए बिना (टिमकार रहित) नेत्रों से निरन्तर दर्शन करने योग्य। यह पद आगे आने वाले भवन्तम् का विशेषण होने से द्वितीयान्त एक वचन में आया है।

भवन्तम्—आपको—श्री जिनेन्द्रदेव को।

दृष्ट्वा—देख करके। (क्त्वान्त प्रत्यय)

जनस्य—मनुष्य का।

चक्षुः—नेत्र।

अन्यत्र—और कहीं पर—अन्य किसी और पर (क्रिया विशेषण अव्यय)

तोषम्—सन्तोष को, परितोष को। (द्वितीयान्त एक वचन)

न—नहीं।

उपयाति—प्राप्त करता है—पाता है।

दुग्धसिन्धोः—क्षीर सागर के।

शशिकरद्युति—चन्द्रमा की किरण के समान कांति वाले धवल—शुभ्र।

विशेषार्थ—शशि—चन्द्र, उसकी कर—किरण, उसकी द्युति—कान्ति है जिसमें वह हुआ शशिकरद्युति—यह पद आगे आने वाले पय का विशेषण है। इसमें द्वितीया के एक वचन में प्रयुक्त हुआ है।

पय—जल, क्षीर, दुग्ध को।

पीत्वा—पीकर। (क्त्वान्त)

कः—कौन (पुरुष) ?

जलनिधेः—(लवण) समुद्र के। दरिया के।

क्षारम्—खारे।

जलम्—पानी को।

रसितुम्—चखने के लिए। (तुमन्त)

विशेषार्थ —यहाँ जलनिधे अशितुं की सन्धि कर के जलनिधेरशितुं पद भी बोला जा सकता है। परन्तु अशितुम् का अर्थ "खाने के लिए" होता है। अत वह यहाँ ग्राह्य नही है।

इच्छेत्—इच्छा करेगा। (विध्यर्थ अन्यपुरुष एक वचन)

भावार्थ.

हे परम दर्शनीय जिनेन्द्र देव!

आप इतने अधिक लावण्यमयी हैं कि निरन्तर टकटकी लगाकर टिमकार रहित नेत्रो से दर्शन करने के योग्य हैं। अर्थात् जो पुरुष आपको एक वार भी अच्छी तरह देख लेता है उसकी आखो मे आप ऐसे समा जाते हैं कि वह फिर अन्य किसी देव को देख कर सन्तुष्ट नही होता। जिस प्रकार चन्द्रमा की शुभ्र किरणो की कान्ति के समान धवल क्षीर सागर का मधुर जल पी चुकने के पश्चात् ऐसा कौन पुरुष होगा जो लवण समुद्र के खारे पानी को चखने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई नही।

विवेचन.

स्तुतिकर्ता ने पिछले पद्यो मे क्रमश श्री जिनेन्द्रदेव की स्तुति तथा चरित्र चर्चा की महिमा का गुणगान किया अव इस पद्य द्वारा वे भगवत् दर्शन का महत्व प्रतिपादित कर रहे हैं—

मानतुगाचार्य कहते हैं कि हे देवाधिदेव। आप इतने अधिक स्वरूपवान् हैं कि जिसकी आखो मे आप एक वार भी समा जाते हैं वह निरन्तर ही आप को टकटकी लगाकर देखता ही रह जाता है—उसके पलक तक भी नही झपकते फिर अन्य देवी देवताओ की ओर देखने का तो कोई प्रश्न ही नही उठता। अर्थात् जो एक वार भी आपके दर्शन कर लेता है उसके चक्षुओ को जगत के अन्य पदार्थों के देखने से सतोष प्राप्त नही होता। क्षीर सागर के सुस्वादु मधुर निर्मल शीतल दुग्धोपम जल को पी चुकने के वाद ऐसा कौन पुरुष होगा जो लवण समुद्र के खारे पानी को पीने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई नही।

इस छद मे यहाँ उपमालकार की छटा देखने योग्य है। क्षीर सागर की उपमा वीतरागदेव से दी गई है और लवण समुद्र की उपमा सरागी देवो से दी गई है।

कैसा है वीतराग देव का स्वरूप? प्रशम रस से परिपूर्ण है और मुख-

कमल अतीव हर्षोत्फुल्ल है। दृष्टि नासाग्र है। गोद कामिनी के संग से रहित है—सूनी है। युगल कर अस्त्रों-शस्त्रों से विहीन है तथा दिगम्बर मुद्रा कृत्रिम वस्त्राभूषणों से रहित स्वाभाविक यथाजात बालक की तरह निर्दोष निर्विकार है। जब कि सरागी देवी देवताओं का स्वरूप वीतरागी देव से सर्वथा विपरीत होता है। इसीलिए कहा गया है —

वीतराग मुखं दृष्ट्वा, पद्मराग समप्रभं।
जन्म जन्म कृत पाप, दर्शनेन विनश्यति ॥

ऐसी प्रशान्त भव्य वीतराग मुद्रा का अवलोकन करने के बाद विलासी विकृत मुद्रा को देखकर कौन भला मानुष प्रसन्न होगा ? तीनों लोकों में सर्वोत्कृष्ट दर्शनीय तत्त्व यदि कोई है तो एक मात्र वीतराग परमात्मा ही हैं।

Having (once) seen You, fit to be seen with winkless eyes or by Gods, the eyes of man do not find satisfaction elsewhere. Having drunk the moon-white milk of the milky ocean, who desires to drink the saltish water of the sea ? 11

× × ×

The eyes of a man, after having seen you, who is to be looked at with twinkless and fixed gaze, get no satisfaction elsewhere Who likes to drink the salty water of an ocean after he tasted water of the milky sea as shining and clear as the moon ? 11

× × ×

मूल श्लोक (हस्तिमद विदारक-वांछित रूप प्रदायक)

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक — ललामभूत!
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

लोकातिशय जिन स्वरूप सौन्दर्य
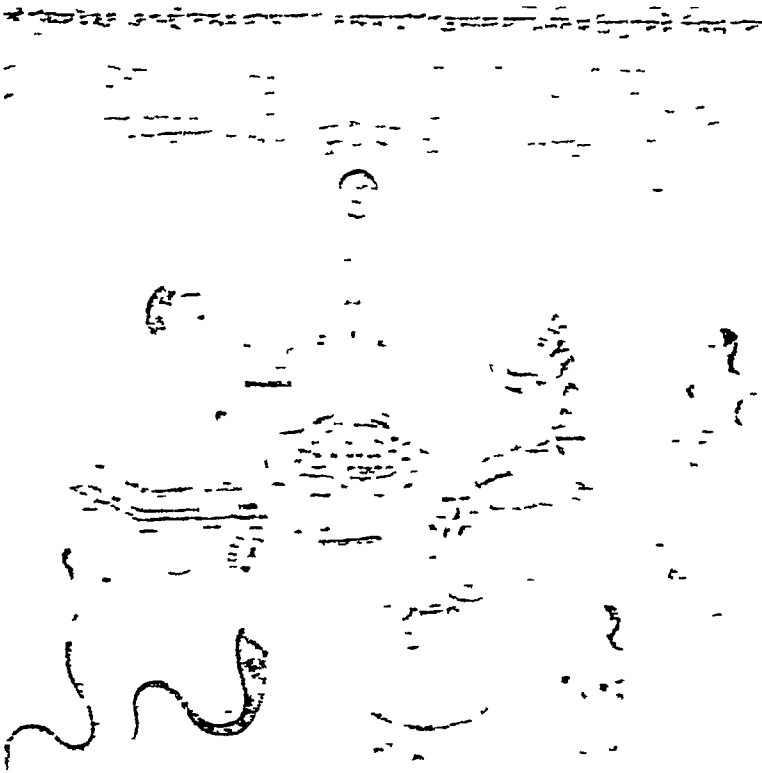
जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह।
थे उतने वैसे अणु जग में, शान्त-रागमय निःस्नेह॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के, अद्वितीय आभूषण रूप।
इसीलिए तो आप सरीखा, नहीं दूसरों का है रूप॥१२॥

अन्वय

त्रिभुवनैक ललामभूत ! शान्तरागरुचिभि यैः परमाणुभि त्वम् निर्मापित ते अणव अपि खलु तावन्त एव (आसन्) यत् पृथिव्याम् ते समानम् अपरम् रूपम् नहि अस्ति ॥

शब्दार्थ

त्रिभुवनैक ललामभूत ! —हे अद्वितीय त्रैलोक्य शिरोमणि—हे तीन लोकों के अनुपम अलकार रूप (भगवान् !)।

विशेषार्थ —त्रि—तीन, भुवन—लोक का समुदाय यही हुआ त्रिभुवन उसमें एक—अद्वितीय-अनुपम ऐसा ललामभूत—अलकाररूप-शिरोभूषणरूप। वही हुआ त्रिभुवनैक—ललामभूत। यह पद जिनदेव के सबोधन रूप में लिया गया है। ललाम शब्द का सामान्य अर्थ सुन्दर श्रेष्ठ रमणीय है, परन्तु विशेष अर्थ में "शिर पुरोन्यस्त मस्तकाभरण ललाममुच्यते" अर्थात् शिर से आगे मस्तक के आभरण को ललाम कहते है।

शान्तराग रुचिभि —मोह, ममता, राग आदि के शान्त (क्षय) होने से प्रशम रस की कान्ति प्रकट हुई है जिससे ऐसे—वीतराग-भावना के उत्पादक।

विशेषार्थ — शान्त—क्षय हो गया है राग—मोह ममता जिनकी वे हुए शान्तराग उसकी रुचि—कान्ति-से युक्त वही हुआ शान्तराग रुचि अर्थात् जिसके मुख मण्डल पर प्रशम रस की कान्ति देदीप्यमान है, ऐसा। यह पद परमाणुभि का विशेषण होने से तृतीया के बहु वचन मे प्रयुक्त हुआ है।

यैः परमाणुभि —जिन परमाणुओ से।

विशेषार्थ —'परमाश्च ते अणव परमाणव' जो अणु अत्यन्त सूक्ष्म है अर्थात् पुद्गल द्रव्य का वह अविभागी सूक्ष्म प्रतिच्छेद जिसका कि अन्य विभाग न होता हो वह परमाणु कहलाता है, उन परमाणुओ के द्वारा। यह पद तृतीया के बहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है।

त्वम्—तुम।

निर्मापित —निर्मापित किये गए हो—बनाये गए हो।

ते—वे।

अणव —परमाणु।

अपि —भी।

खलु—निश्चय से।

तावन्त—उतने ।
एव—ही ।
(आसन)—थे । (अध्याहार से ग्रहीत)
यत्—क्योकि ।
पृथिव्याम्—समस्त पृथ्वी तल पर ।
ते—तुम्हारे ।
समानम्—सदृश-समान ।
अपरम्—कोई दूसरा ।
रूपम्—रूप-सौन्दर्य ।
न हि—नही ।
अस्ति—है ।

भावार्थ

हे त्रैलोक्य मण्डन वीतराग देव !

आपके परमौदारिक शरीर का निर्माण प्रशान्त रस के जिन राग रहित दैदीप्यमान परमाणुओ से हुआ है वे कुल परमाणु निश्चित रूप से उतनी ही सख्या मे थे यही कारण है कि इस भूमण्डल पर आप जैसा सुन्दर रूप अन्य किसी मे दृष्टिगोचर नही होता ।

विवेचन

पिछले छद मे स्तुतिकार ने सामान्य रूप से अरिहत प्रभु के सौंदर्य की अपूर्वता का वर्णन किया था । प्रस्तुत छद मे उनकी दिव्य देह की सुन्दरता का वर्णन विशेष रूप से कर रहे हैं । साथ ही उनके इस अद्वितीय सौन्दर्य प्राप्ति का क्या कारण है वह भी इसमे परिलक्षित होता है। यही नही वल्कि उनके इस अपेक्षित कथन से अन्य देवो का सराग सौन्दर्य स्वयमेव धुंधला पड जाता है।

आचार्यश्री कहते हैं कि हे नाथ ! आप तीनो लोकों के शृङ्गार हैं, आपकी दिव्य देह अद्वितीय सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं । आपके मुख मण्डल से प्रशान्त रस से उत्पन्न तेज झलक रहा है, चूँकि आपका अन्तर समरस से अभिभूत है इसलिए आपका बाह्य परमौदारिक शरीर भी उतना ही दैदीप्यमान हो रहा है और इस प्रकार आप शान्त रस की साक्षात मूर्ति है । मुख मुद्रा पर झिल-मिलाने वाली शान्ति एव वीतरागता का कारण क्या है ? उसका उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि जिन पुद्गल परमाणुओ से आपकी इस दिव्य देह का

निर्माण हुआ है वे कुल परमाणु राग रहित थे और सख्या मे भी उतने ही थे जितने कि आपके शरीर मे विद्यमान हैं। अगर उनमे से कुछ भी परमाणु शेष रहे होते तो आप जैसी शान्ति की मूर्ति अन्यत्र भी दिखलाई देती, परन्तु ऐसा तो है ही नही। तात्पर्य यह कि आपका रूप एक अनोखा, अनुपम और निराला ही है जिसकी तुलना विश्व में किसी भी वस्तु से नही की जा सकती।

O supreme ornament of all the three worlds ! As many indeed in this world where the atoms possessed of the lustre of non-attachment, that went to the composition of Your body and that is why no other form like that of Yours exists on this earth 12

× × ×

The only ornament of three worlds ! The peaceful and splendid atoms, with which your bodily frame has been constructed, were as many as were required for the purpose, as there is none equal to you in luster & beauty 12

× × ×

मूल श्लोक (लक्ष्मी सुख-प्रदायक, स्व शरीर-रक्षक)

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग - नेत्रहारि,
निःशेष - निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क - मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

निरुपम जिन मुख-मण्डल

कहाँ आपका मुख अति सुन्दर, सुर नर उरग नेत्र हारी ।
जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमाधारी ॥
कहाँ कलंकी बंक चन्द्रमा, रंक समान कीट सा दीन ।
जो पलाश-सा फीका पड़ता, दिन में हो करके छवि-छीन ॥१३॥

अन्वय:

(भगवन्) सुरनरोरगनेत्रहारि निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ते वक्त्रम् क्व ? कलङ्कमलिनम् निशाकरस्य (तत्) बिम्बम् क्व ? यत् वासरे पाण्डुपलाशकल्पम् (भवति)।

शब्दार्थ:

सुरनरोरगनेत्रहारि—देव, मनुष्य और भवनवासी नागकुमार जाति के देवेन्द्र (धरणेन्द्र) आदि के नेत्रों को हरण करने वाला।

विशेषार्थ :—सुर—देव, नर—मनुष्य और उरग—भवनवासी देव उनके नेत्र—लोचन, उनको हरण करने वाला वही हुआ सुरनरोरगनेत्रहारि अर्थात् अतीव अनुपम सुन्दर।

निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्—सम्पूर्ण रूप से तीनों लोकों के उपमानों को जीतने वाला अर्थात् उपमा रहित।

विशेषार्थ —निःशेष—सम्पूर्ण रूप से, निर्जित—जीत लिए हैं, जिसने जगत्त्रितय—तीनों लोकों के उपमान—वही हुआ निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्। वह वस्तु जिसके साथ उपमेय की तुलना की जावे उसे उपमान कहते हैं। यथा चन्द्र कमल दर्पण आदि।

ते—तुम्हारा।

वक्त्रम्—मुख, आनन।

क्व—क्या, कहाँ ?

विशेष—यहाँ यह अव्यय दो वस्तुओं के बीच का अन्तर बतलाने के लिए प्रयुक्त किया गया है।

कलङ्कमलिनम्—काले-काले धब्बे से मलीन।

विशेषार्थ —कलङ्क—दाग या धब्बा, उससे मलिन—मैला, वही हुआ कलङ्कमलिन। यह पद बिम्ब का विशेषण होने से प्रथमा के एक वचन में आया है। कलङ्क यद्यपि कालिमा को कहते हैं, तथापि विशेष रूप में उसका प्रयोग चन्द्रमा के विद्यमान काले धब्बे के लिए किया जाता है।

निशाकरस्य—चन्द्रमा का।

विशेषार्थ —निशा—रात्रि, उसका आकर—भण्डार, वही हुआ निशाकर अर्थात् चन्द्रमा। निशाकरोतीति निशाकर तस्य निशाकरस्य।

बिम्ब—मण्डल, बिम्ब।

क्व—कहाँ, क्या ?

आचार्यश्री कहते हैं कि कहां तो कालिमा के कारण मैला चन्द्रमा और कहां आपका अनुपम मुख मण्डल—यही नहीं कि चन्द्रमा कलङ्की है परन्तु दिन में यही चन्द्रमा ऐसा निस्तेज हो जाता है जैसे कि जीर्ण पलाश का पत्र फीका पड़ जाता है। परन्तु जिनेश्वर देव का मुख तो अहोरात्रि तेजस्वी और कान्तिमान रहता है। कवि ने यहाँ विशेष रूप से श्लोक में वक्त्र शब्द का ही उपयोग क्यों किया? मुख आनन वदन आस्य आदि पर्याय वाची शब्दों का क्यों नहीं? स्पष्ट है कि 'वक्त्र' शब्द बोलने वाले उपादान के लिए प्रयुक्त होता है। तीर्थङ्कर केवली अवस्था में अपनी दिव्यध्वनि खिराते हैं अतः श्लोक में वक्त्र शब्द का ही उपयोग किया गया है।

Where is Thy face attracts the eyes of gods, men, and divine serpents, and which has thoroughly surpassed all the standards of comparison in all the three worlds. That spotted moon-disc which by the day time becomes pale and lustreless like the white, dry leaf, stands no comparison ! 13

How can there be drawn a comparison between your mouth and the moon ? The later is stained with dark spots and looks pale as well in the day like the Palash leaves, while your mouth, which focuses the eyes of men, gods and Nagas, surpass all (the objects of) comparison in this threefold world 13

मूल श्लोक (आधि-व्याधि नाशक)

सम्पूर्ण - मण्डल - शशाङ्क - कलाकलाप—
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर! नाथमेकं
कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

लोक व्यापी गुणों की स्वच्छन्दता
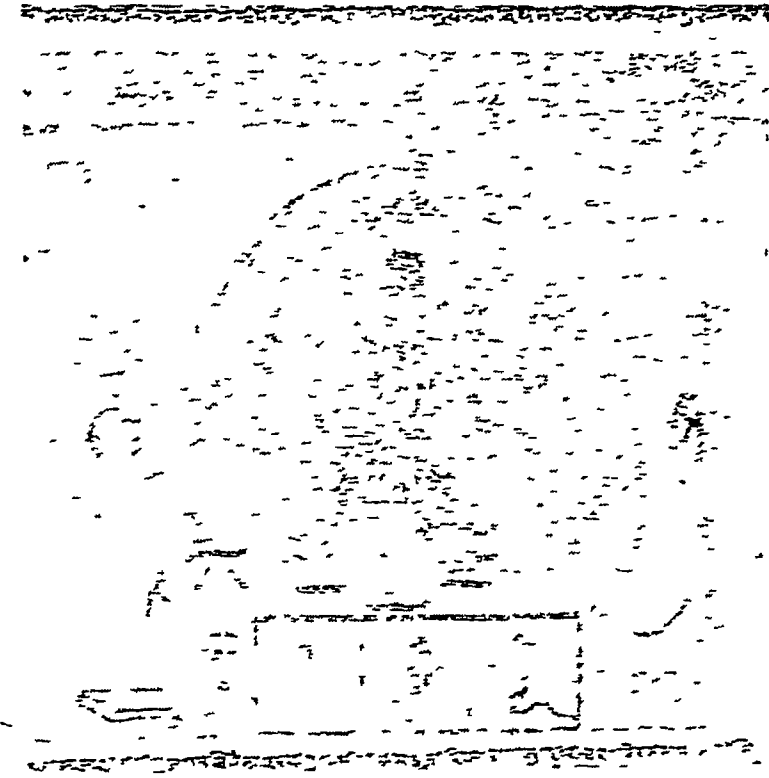
तव गुण पूर्ण शशाङ्क कान्तिमय कला कलाओं में बढ़के।
तीन लोक में व्याप रहे हैं जो कि स्वच्छता में चढ़के॥
विचरें चाहे जहाँ कि जिनको जगन्नाथ का एकाधार।
कौन माई का जाया रखता उन्हें रोकने का अधिकार॥१४॥

अन्वयः

त्रिजगदीश्वर ! सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलापशुभ्रा तव गुणा त्रिभुवनम् लङ्घयन्ति ये एकम् नाथम् सश्रिता यथेष्टम् सचरत तान् क निवारयति ?

शब्दार्थ.

त्रिजगदीश्वर !—तीनो लोको के स्वामी ।

विशेषार्थ —त्रिजगत्—तीनो जगत का समूह, उसके ईश्वर—नाथ, वही हुए त्रिजगदीश्वर—यह पद सबोधन विभक्ति मे प्रयुक्त हुआ है ।

सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलापशुभ्रा —पूर्णमासी के चन्द्र-मण्डल की कलाओ के सदृश समुज्ज्वल ।

विशेषार्थ —सम्पूर्ण—पूर्णरूप से ऐसा मण्डल—गोलाकार उससे युक्त शशाङ्क—चन्द्रमा, वही हुआ सम्पूर्णमण्डलशशाङ्क, उसकी कला—शश उसका कलाप—समूह वही हुआ सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप । उसके समान ही शुभ्र—धवल, उज्ज्वल, वही हुआ सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलापशुभ्र । यह पद आगे आने वाले गुणा शब्द का विशेषण होने से प्रथमा के बहु वचन मे आया है ।

तव गुणा —आप के गुण ।

विशेष—यहाँ गुण शब्द से क्षमा, समता, वैराग्य आदि अनन्त सद्गुणो को ग्रहण करना चाहिए ।

त्रिभुवनम्—तीनों लोको को ।

लङ्घयन्ति—उलघन करते हैं अर्थात् त्रिभुवन मे व्याप्त है ।

ये—जो ।

एकम्—एक अर्थात् अद्वितीय ।

नाथम्—त्रिभुवन के स्वामी को ।

विशेष—यहा नाथ शब्द से अद्वितीय सामर्थ्य वाले स्वामी को समझना चाहिये ।

सश्रिता —आश्रय करके रहने वाले ।

यथेष्टम्—स्वेच्छानुसार अर्थात् अपनी इच्छा के अनुसार ।

सचरत —सम्पूर्ण लोक मे विचरण करने से ।

तान्—उनको ।

क —कौन (पुरुष) ।

निवारयति— निवारण कर सकता है अर्थात् रोक सकता है ? कोई भी नही ।

भावार्थ

हे त्रिलोकी नाथ !

आपकी उज्ज्वल गुणावली पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल की कलाओ सदृश धवल है। आपके अनन्त गुण तीनो लोको मे व्याप्त हो रहे हैं। कारण स्पष्ट है कि आप के उन गुणो ने जब तीन लोक के नाथ का एकमेव सहारा ले लिया हो तब उन्हे सर्वत्र स्वेच्छा पूर्वक विचरण करने से भला कौन रोक सकता है ? अर्थात् कोई भी नही। वस्तुत आपके अनत गुण तीनो लोको मे व्याप्त होकर आप की ही प्रभावना कर रहे है।

विवेचन

हे जगदीश्वर !

अरिहत देव की सच्ची भक्ति शरीराश्रित नही होती, बल्कि आत्माश्रित होती है। तदनुसार श्री मानतुगाचार्य जी, इस छद मे जिनेश्वर देव के ज्ञानादिक अनत गुणो का कीर्तन करते हुए यह प्रकट करते हैं कि तीनो लोक आपके ही गुणो से सम्पूर्णतया व्याप्त हैं अर्थात् आपका गुण-सौरभ तीनो लोको मे अपनी सुरभित महक छोड रहा है। आगे वे उन गुणो के लोकाकाश भर व्याप्त होने का सहेतुक कारण निरूपित करते हैं—

जैसे कोई महान् सम्राट् के सम्बन्धी जन या बन्धु बान्धव उसके बल पर वे रोक टोक मन माने रूप से चाहे जहा घूमने के लिए स्वतत्र हैं और उन्हे रोकने का साहस कोई नही करता। आचार्य श्री कहते हैं कि हे नाथ ! आपके अनन्त गुण केवल आप तक ही सीमित नही हैं, बल्कि वे तो तीनो लोको मे विपुलता से व्याप्त हो रहे है। जिस प्रकार चन्द्रमा की शुभ्र कलाए दोज से लेकर पूर्णमासी पर्यन्त क्रमश विकसित होती रहती है उसी प्रकार आपके उज्ज्वल धवल गुण पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान पूर्ण रूप से विकसित हो चुके है। जिस प्रकार से चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से लोक का कोना-कोना व्याप्त हो जाता है उसी भाति आपके निर्मल गुणो से त्रैलोक्य व्याप्त हो गया है। उनकी इस व्याप्ति का कारण स्पष्ट है, कि उन गुणो ने अन्य किसी देव का सहारा नही लिया, बल्कि आपकी वीतरागता को ही एकमात्र अपना नाथ स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि श्री जिनेश्वर देव के गुणो की चर्चा तीनो कालो तथा तीनो लोको मे होती ही रहती है। उस चर्चा को अथवा उनके द्वारा प्रणीत तत्त्वो को रोकने का साहस अथवा खडन करने का दुस्साहस आज तक किसी को भी नही हुआ।

The virtues, which are bright like the collection of digits of full-moon, bestride the three worlds. Who can resist them while moving at will, having taken resort to that supreme Lord Who is the sole overlord of all the three worlds. 14

O Lord of the three worlds ! your merits, as shining and white as the silvery rays of the full-moon, extend over all the three worlds, for who can prevent them from moving (in the world) at will, being supported by the singular and matchless patron like you ? 14

× × ×

थकी छली अमर ललनायें, प्रभु के मन में तनिक विकार।
कर न सकी आश्चर्य कौनसा, रह जाती हैं मन की मार॥
गिरि गिर जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु शिखर।
हिल सकता है रंचमात्र भी, पाकर झंझावात प्रखर॥१५॥

अन्वय

(भगवन् !) यदि ते मन त्रिदशाङ्गनाभि मनाक् अपि विकारमार्गं न नीतम् अत्र किम् चित्रम् चलिताचलेन कल्पान्तकालमरुता किम् मन्दराद्रिशिखरम् कदाचित् चलितम् ? (अपितु न चलितम्)

शब्दार्थ.

(भगवन् !)—(हे प्रभो !)

यदि—अगर।

ते—तुम्हारा।

मन —मन।

त्रिदशाङ्गनाभि —देवाङ्गनाओ के द्वारा अर्थात् देवलोक की अप्सराओ द्वारा।

विशेषार्थ —त्रिदश—देव, उनकी अङ्गना—वधू, वही हुआ देवाङ्गना उनके द्वारा वही हुआ त्रिदशाङ्गनाभि । यह पद तृतीयान्त वहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है।

मनाक् अपि—जरा भी, थोडा भी।

विकारमार्गम्—बुरे भाव की ओर, विकार मार्ग की ओर अर्थात् वैभाविक परिणति की ओर।

न नीत—खीचकर नही लाया गया।

अत्र किम् चित्रम्—तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ?

चलिताचलेन—पहाडो को चलायमान कर देने वाली।

विशेषार्थ —चलित—कम्पित—विचलित, अचल—पहाड वही हुआ चलिताचल उसके द्वारा यह पद तृतीया के एकवचन मे आया है।

कल्पान्तकालमरुता—प्रलय काल की पवन द्वारा।

विशेषार्थ —कल्पान्तकाल—प्रलयकाल, उसकी जो मरुत—आधी वही हुआ कल्पान्तकाल मरुत उसके द्वारा।

किम्—क्या ?

मन्दराद्रिशिखरम्—सुमेरु पर्वत की चोटी।

विशेषार्थ —मन्दर—अद्रि=मन्दराद्रि, मन्दर—सुमेरु, आद्रि—पर्वत उसकी शिखर वही हुआ मन्दराद्रि शिखर उसको।

कदाचित्—कभी भी।

चलितम्—चलायमान की गई है।

(अपितु न चलितम्—अर्थात् कभी नहीं।

भावार्थ

हे तपोधन !

आपकी शुक्ल ध्यान मण्डित तेजोमय मूर्ति को डिगाने में स्वर्ग की लावण्यमयी अनुपम अप्सरायें भी सफल नहीं हो सकी अर्थात् आपके ध्यान को भंग नहीं कर सकीं और न आपकी स्वाभाविक परिणति को वैभाविक परिणति की ओर रंच मात्र भी खींच सकीं। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। क्योंकि कल्पान्तकाल अर्थात् प्रलयकाल की तेज आँधी छोटे-मोटे पर्वतों को भले ही कम्पायमान कर दे परन्तु क्या सुमेरु जैसे विशालकाय पर्वत की चोटी को भी हिलाने की शक्ति उसमें है ? अर्थात् कभी नहीं।

विवेचन

मुनि श्री मानतुंग जी जिनेश्वर देव के अतिशय रूप-सौन्दर्य एवं अनन्त गुणों का यशोगान करने के उपरान्त उनकी यथाख्यात चारित्र निष्ठा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि

हे चारित्र चूड़ामणि !

आपने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र की उस पूर्णता को प्राप्त कर लिया है जिसमें कि मोह ममता राग-द्वेष काषायिक और नो काषायिक आदि विकारी भावों का लेश मात्र भी अंश नहीं रहा। अर्थात् आपने अपने पूर्ण शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति करली है और इस प्रकार से पर वस्तुओं का कुटिल प्रभाव आप पर किंचित मात्र भी नहीं होता, आपका अन्तर बाह्य परम वीतराग और निर्विकार है। आप ऐसे योगी और शुक्ल ध्यानी हैं कि जिन्हें विचलित करने में कोई भी समर्थ नहीं है। यह तो सभी जानते हैं कि विषय वासना ने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की है। महान सुभट और शूरवीर भी काम के वशीभूत होते देखे गये हैं। परन्तु आप एक ऐसे अद्वितीय महावीर हैं, जिन्होंने कि उस काम रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त की है जिसने तीनों लोकों को पराजित कर दिया था। तथाकथित ईश्वर नामधारी देवों और महादेवों के नाम भी इस प्रसंग में लिए जा सकते हैं क्योंकि जिन्होंने अपनी तपस्या द्वारा इन्द्रासनों को भी कम्पायमान कर दिया परन्तु एक कामवासना के वशीभूत होकर उन्होंने भी रंभा मेनका और तिलोत्तमा के आगे अपने घुटने टेक दिये। यही नहीं बल्कि अब भी उनके देवत्व का अस्तित्व सपत्नीक रूप में ही पूजनीय माना जाता है यह विडम्बना नहीं तो और क्या है ? इसका एक ही कारण समझ में आता है कि उन्होंने मूल में ही महामोह पर विजय

प्राप्त नही की, इसीलिए वे राग मिश्रित वासना के गुलाम रह कर अप्सराओ पर मोहित होते रहे परन्तु हे वीतराग देव ! आपने तो अपने पुरुषार्थ से प्रारम्भ मे ही दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय नाम के कर्मों के सम्राट् का क्षय कर दिया। जिनका क्षय होने से घातिया कर्म की ४७ प्रकृतिया भी धराशायी हो गई।

इस छद मे उत्प्रेक्षालकार द्वारा स्तुति कर्ता भगवान का चारित्र गान करते हुए कहते है कि इसमे कोई बडे आश्चर्य की बात नही कि यदि तरह प्रकार की देवाङ्गनाएँ, अप्सराएँ, परिएँ अपने लावण्य, उन्माद और विविध हाव-भाव द्वारा आपको रिझाने मे समर्थ नही हुई। अपने विकारी भावो द्वारा आपके निर्विकार स्वभाव पर कुछ भी कुप्रभाव न डाल सकी क्योंकि आपका मन तो ऐसा अचल सुमेरु पर्वत है जिसको कि कम्पायमान करने मे सामान्य हवा तो क्या बल्कि प्रलयकाल की तेज आधी भी समर्थ नही है। आप अन्य देवी देवताओं की भाँति छोटे मोटे पहाड तो है नही कि जिनको मामूली हवा भी डगमगा देती है—

वस्तुत आप तो सुमेरु की तरह धीर वीर गभीर अचल परिषह और दुस्सह परिषह विजेता है।

No wonder that Your mind was not in the least perturbed even by the celestial damsels Is the peak of Mandaramountain ever shaken by the mountain-shaking winds of Doomsday ? 15

It is no wonder if the celestial nymphs could not rouse, even in the least the carnal passions in your heart Can the peak of Sumeru mountain be possibly moved by the tempest of deluge, which had already shaken the other mountains ? 15.

अन्वयः

(नाथ !) त्वम् निर्धूमवर्ति अपवर्जिततैलपूर कृत्स्नम् इद जगत्त्रय प्रकटीकरोषि चलिताचलानाम् मरुताम् जातु गम्यो न (अथ च) जगत्प्रकाश (अतएव) अपर. दीप असि।

शब्दार्थ.

(नाथ !—हे स्वामिन् !)

त्वम्—आप।

निर्धूमवर्ति —धुआ और वर्तिका (बाती) से रहित।

विशेषार्थ —निर्—निर्गत अर्थात् निकल गया है जिसमे से धूम—धुवा और वर्ति—बाती वही हुआ निर्धूमवर्ति अर्थात् धुवा तथा बाती से रहित।

अपवर्जिततैलपूर —क्रमालव तेल से रहित।

विशेषार्थ —अपवर्जित—त्याग कर दिया है जिसने तैल—तेल उसका पूर—पूर्णता, समूह वही हुआ अपवर्जित तैलपूर।

कृत्स्न—समस्त।

इद- यह।

जगत्त्रयम्—तीनो लोको को।

प्रकटीकरोषि—प्रगट कर रहे हो, आलोकित कर रहे हो।

चलिताचलानाम्—पहाडो को डांवाडोल करने वाली।

विशेषार्थ —चलित—चलायमान करती है अर्थात् डगमग कर देती है जो अचल—पहाड को वही हुआ चलिताचल उनके यह पद मरुताम् का विशेषण होने से षष्ठी बहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है।

मरुताम्—हवाओ के (षष्ठी बहुवचन)

जातु—कदाचित्, कभी भी।

न गम्य —प्रभावित होने योग्य नही हो, अर्थात् प्रवेश पाने के योग्य नही हो।

अथच—और (अध्याहार से ग्रहीत)।

जगत्प्रकाश —विश्व भर मे प्रकाश पहुचाते हो।

अतएव—(इसलिए) (अध्याहार से ग्रहीत)

अपर•—अपूर्व।

दीप —दीपक।

असि—हो।

भावार्थ

हे परमज्योति !

आप ऐसे कैवल्यज्ञान रूपी अपूर्व दीपक हो जिसमें से कर्म-कालिमा का धुवा निकल चुका है, जो बाती के निमित्त बिना निरपेक्ष रूप से प्रज्ज्वलित है। जिसका राग रूपी स्नेह (तैल) पूर्णतया समाप्त हो गया है और जिसे पर्वतो को भी हिला देने वाली पर निमित्तक हवाएँ बुझाने मे समर्थ नही है। इस प्रकार आप तीनो लोको के स्वपर प्रकाशक अभूतपूर्व नमस्करणीय चिन्मय दीपक हो न कि अन्य देवी देवताओ के समान मृण्मय दीपक हो जिसे कि सामान्य हवा के झोके भी बुझा देते है।

विवेचन

प्राय सभी भाषा के कवियो ने दीपक, कमल, दर्पण, सूर्य, चन्द्रमा आदि उपमानो को अपने सरस काव्य के अलकार बनाकर प्रस्तुत किये है परन्तु भक्त कवि आचार्य मानतुग जी ने उपरोक्त उपमानो को भी अपने अनुपमेय आराध्य देव की उपासना मे निरर्थक ठहराया है। उदाहरण के लिए दीपक से यदि जिनेन्द्र देव की उपमा दी जाती है तो वह भी सदोष प्रतीत होती है क्योकि एक तो दीपक मृण्मय अर्थात् मिट्टी का बना हुआ होता है दूसरे वह बिना वर्तिका (बाती) के प्रज्ज्वलित होने मे असमर्थ है। तीसरे जब तक वह उसमे तैल है तब तक उसका जीवन है। चौथे हवा के सामान्य झोको से उसकी जीवन ज्योति कम्पित होती रहती है और कभी कभी तो उसकी गिनती की श्वासे उन्ही झोको के द्वारा लूट ली जाती हैं। दीपक न केवल स्नेह (तैल) का ही भक्षण करता है। अपितु अन्धकार को भी अपना ग्रास बनाता है, यही कारण है कि वह जो कुछ भक्षण करता है उसी को उत्पन्न करता है। कहा भी है —

दीपो भक्षयते ध्वान्त, कज्जल च प्रसूयते।

वस्तुत उसका धुवाँ कलक युक्त होता है। इतने अधिक दोषो से सहित होते हुए भला जिनेन्द्रदेव का उपमान वह कैसे ठहर सकता है क्योकि जिनेन्द्र देव तो चिन्मय हैं। अर्थात् चैतन्य स्वरूप सर्वज्ञ हैं। स्नेह अर्थात् राग से रहित परम वीतराग है। उनके ज्ञान ध्यान और तप से कर्मेन्धन जल कर भस्म बन गया और जिसके भस्म हो चुकने का प्रमाण कर्म कलक रूपी धुवें के रूप मे व्यक्त हो रहा है। दीपक को यद्यपि स्वपर प्रकाशक कहा जाता है तथापि दीपक तले अधेरा होने से उसकी यह विशेषता भी खडित हो जाती है।

मूल श्लोक (सर्व रोग निरोधक)

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि - सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर - निरुद्ध - महाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र! लोके ॥१७॥

सूर्य से भी अधिक तेजस्विता
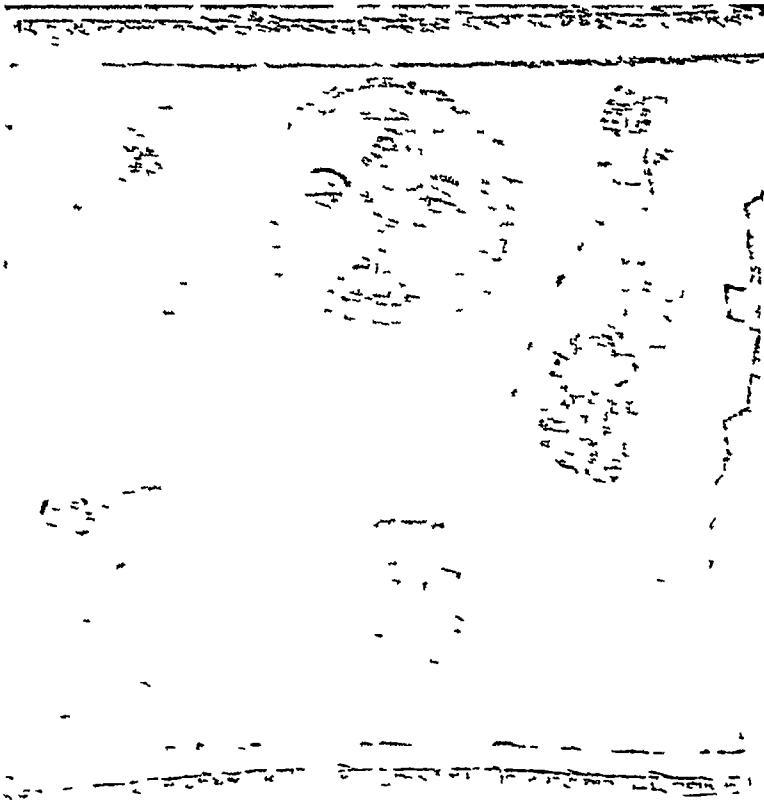
अन्वयः

मुनीन्द्र ! (त्वम्) कदाचित् अस्तम् न उपयासि न राहुगम्य असि सहसा जगन्ति युगपत् स्पष्टीकरोषि न अम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभाव (अत·) लोके सूर्यातिशायिमहिमा असि ।

शब्दार्थ

मुनीन्द्र !—हे मुनीश्वर !

(त्वम्)—(तुम)

कदाचित्—कभी भी।

अस्तम्—अदृश्य अवस्था को ।

न—नही ।

उपयासि—प्राप्त होते हो ।

न—न ।

राहुगम्य—राहु ग्रह के द्वारा ग्रसने योग्य । (राहु नव-ग्रहो मे एक ग्रह है, जो सूर्य तथा चन्द्रमा के ऊपर सक्रमण काल मे अपनी छाया डालता है तव उनका ग्रहण हुआ माना जाता है।)

असि—हो।

सहसा—शीघ्रता से, सहजता से।

जगन्ति—तीनो लोको को। जगत शब्द का बहु वचन जगन्ति है। 'जगन्ति भुवनानि' ।

युगपत्—एक साथ, एक समय मे।

स्पष्टीकरोषि—स्पष्ट करते हो, प्रकाशित करते हो, व्यक्त करते हो।

न—न ।

अम्भोधरोदर निरुद्धमहाप्रभाव.—वादलो के उदर मे जिसका महा प्रताप अवरुद्ध हो सका है।

(अत)—(इसलिए) (अध्याहार से ग्रहीत) ।

लोके—इस लोक में, इस ससार मे ।

सूर्यातिशायी महिमा—सूर्य से भी अधिक महिमा को—महत्व को धारण करने वाले।

विशेषार्थ —सूर्य—दिनकर से भी अतिशायी—विशेष है जिसकी महिमा अर्थात् महत्व, वही हुआ सूर्यातिशायी महिमा।

असि—हो।

रहित है। इसलिए हे मुनिनाथ ! आपकी महिमा तथाकथित सूर्यदेव से भी अधिक बढ़-चढ़कर है, अतएव सूर्य से आपकी तुलना नहीं की जा सकती।

O Great Sage, Thou knowest on sitıng, nor art Thou eclipsed by Rahu Thou dost illumine suddenly all the worlds at one and the same time The water-carrying clouds too can never bedim Thy great glory Hence in respect of effulgence Thou art greater than the sun in this world 17

× × ×

As you neither set nor you are affected by Rahu and nor your brilliance is even hidded by the thick and dense clouds and as you simultaneously enlighten the whole sphere you are, O best of the sage ! superior in pre-eminence, to the sun 17

× × ×

मल श्लोक (शत्रु-सैन्य स्तम्भक)

नित्योदय दलित - मोह - महान्धकार,
गम्य न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प-कान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व - शशाङ्क - विम्वम् ॥१८॥

चन्द्र से अधिक सौम्यता
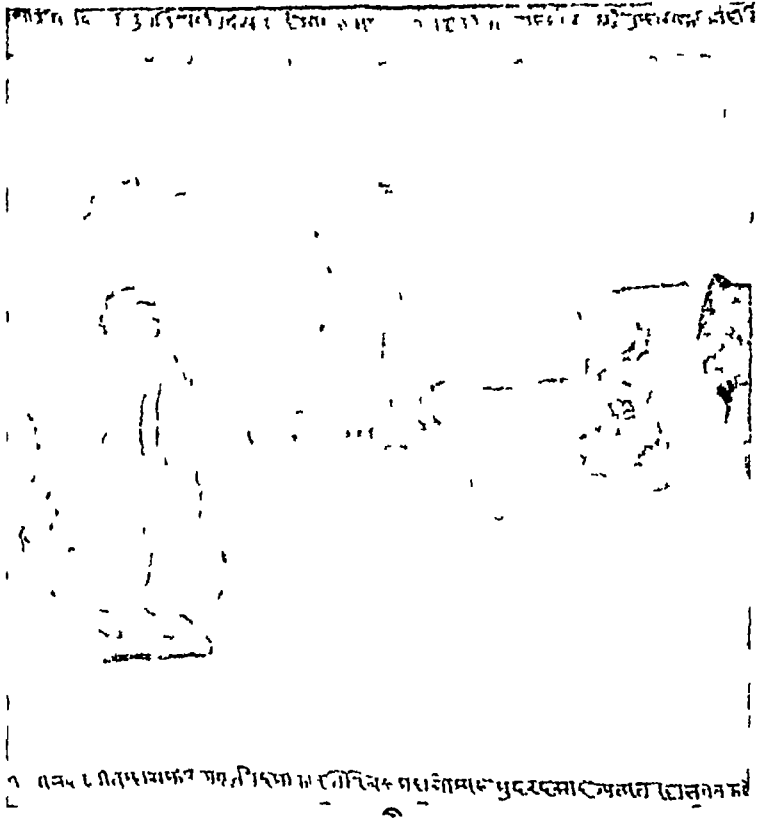
मोह महातम दलने वाला, सदा उदय रहने वाला ।
राहु न बादल से दबता पर, सदा स्वच्छ रहने वाला ॥
विश्व प्रकाशक मुख सरोज तव, अधिक कान्ति मय शात स्वरूप ।
है अपूर्व जग का शशि मडल, जगत शिरोमणि शिव का भूप ॥१८॥

अन्वय.

(भगवन्) तव मुखाब्जम् नित्योदयम् दलितमोहमहान्धकारम् अनल्प-कान्ति न राहुवदनस्य गम्यम् वारिदानाम् गम्यम् जगत् विद्योतयत् अपूर्व-शशांकबिम्बम् (इव) विभ्राजते ।

शब्दार्थ·

(भगवन्)—(हे जिनेन्द्रदेव) ।

तव—आपका ।

मुखाब्जम्—मुख-कमल—मुख-मण्डल ।

विशेषार्थ :—मुख—मुँह ही है अब्ज—कमल, वही हुआ मुखाब्ज अर्थात् मुख-कमल—मुखारविन्द ।

नित्योदयम्—सदा उदय रहने वाला—रात दिन उदय रहने वाला ।

विशेषार्थ :—नित्य—अहर्निशि—रात-दिन जो उदय—उदित रहता है, वही हुआ नित्योदय ।

दलितमोहमहान्धकारम्—मोहरूपी महान्धकार को नाश करने वाला ।

विशेषार्थ :—दलित—नाश कर दिया है जिसने मोह—अज्ञान रूपी महा—महान् अन्धकार—अंधेरा जिसने वही हुआ दलितमोहमहान्धकार ।

अनल्पकान्ति—अधिक कान्तिवान—अत्यन्त दीप्तिवान ।

विशेषार्थ :—अनल्प—अधिक—अत्यन्त है कान्ति—दीप्ति, चमक, आभा जिसकी वही हुआ अनल्पकान्ति ।

न राहुवदनस्य गम्यम्—राहु-ग्रह के मुख मे जो प्रवेश नही करता ।

विशेषार्थ :—न—नही, राहु—राहु नामक ग्रह का वदन—मुख वही हुआ राहुवदन । गम्य—प्रवेश करने योग्य—आक्रमण के योग्य वही हुआ राहुवदनस्य गम्य ।

न वारिदानाम् गम्यम्—बादलो के द्वारा जो पराभव को प्राप्त नही होता ।

विशेषार्थ :—न—नही वारिद-मेघ (यह पद षष्ठी बहुवचन मे आया है) इसलिए हुआ वारिदानाम् गम्य—प्रवेश करने योग्य सो वही हुआ न वारिदानाम् गम्यम्—

जगत्—विश्व को—ससार को ।

विद्योतयत्—विशेष रूप से प्रकाशित करता हुआ—

विशेषार्थ :—द्योतयत्—प्रकाशित करता हुआ—विद्योतयत्—विशेष रूप से प्रकाशित करता हुआ ।

भी किन्तु आपका ओजमय मुखमण्डल रूपी चन्द्र न तो उदय ही होता है और न अस्त ही। अर्थात् नित्य ही—निरन्तर ही उदीयमान रहता है। वास्तव मे श्री अरिहतदेव का ज्ञान नित्योदय रूप ही है, जो कि मोह के अन्धकार को दूर करता है। लौकिक चन्द्रमा सामान्य अन्धकार का नाश करता है किन्तु आपका मुख-चन्द्र मिथ्यात्व रूपी महान्धकार को विनष्ट करता है। चन्द्रमा की कान्ति तो शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के पश्चात् क्रमश क्षीण होती रहती है परन्तु आपका मुख रूपी पूर्णचन्द्र सदैव ही अनल्पकान्ति वाला ही रहता है। चन्द्रग्रहण के समय वह राहुग्रह के द्वारा दवोच लिया जाता है किन्तु आपका अलौकिक मुखचन्द्र दुष्कृत्य रूपी राहु से कभी भी नही ग्रसा जाता। लौकिक चन्द्रमा की ज्योत्स्ना वादलो से पराभूत हो जाती है किन्तु आपके गुणो की शुभ्र ज्योत्स्ना को किसी भी प्रकार का आवरण रोक नहीं पाता। लौकिक चन्द्रमा तो अपना प्रकाश सीमित क्षेत्र में प्रशासित करता है जव कि आपके ज्ञानालोक से तो तीनो ही लोक प्रकाशित होते हैं।

Thy lotus-like countenance,—which rises enternally, destorys to the great darkpess of ignorance, is accessible neither the mouth of Rahu nor to the clouds, possesses great of luminosity,—is the universe-illuminating peerless moon 18

× × ×

O God! your lotus like mouth of immense luster, which always remain risen, has destroyed the great derkness of delusion, do not enter the mouth of Rahu i e, is unaffected by Rahu, is not hidden by clouds and gives light to the whole world, shines like the singular and pairless moon 18

× × ×

मूल श्लोक (उच्चाटनादि रोधक)

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा?
युष्मन्मुखेन्दु - दलितेषु तमस्सु नाथ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१९॥

प्रभु के सन्मुख सूर्य-चन्द्र की निष्प्रभता

नाथ आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश।
तब दिन मे रवि और रात्रि मे, चन्द्र-बिम्ब का विफल प्रयास॥
धान्य-खेत जब धरती तल के, पके हुए हों अति अभिराम।
शोर मचाते जल को लादे, हुये घनो से तब क्या काम? ॥१९॥

अन्वयः

नाथ ! तमस्सु युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु शर्वरीषु शशिना किम् वा अह्नि विवस्वता किम् निष्पन्नशालिवनशालिनिजीवलोके जलभारनम्रैः जलधरैः कियत् कार्यम् ?

शब्दार्थ

नाथ ! —हे स्वामिन् !

तमस्सु युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु—आपके मुख रूपी चन्द्रमा के द्वारा हर तरह के प्रगाढ अन्धकारो को नाश किये जाने पर।

विशेषार्थ —तमस्—अन्धकार। सती सप्तमी के अनुसार हुआ तमस्सु। युष्मत्—आपके। मुख+इन्द्र—मुखेन्दु-मुखरूपी चन्द्रमा (के द्वारा) दलित—नष्ट किया हुआ—सती सप्तमी के अनुसार हुआ दलितेषु अर्थात् नष्ट किये जाने पर।

शर्वरीषु—रात्रि मे। (सप्तमी वहु वचन)

शशिना किम्—चन्द्रमा से क्या प्रयोजन ?

वा—अथवा।

अह्नि—दिन मे—दिवस मे।

विवस्वता किम्—सूर्य से क्या प्रयोजन ? (विवस्वात्—अर्थात् सूर्य। विवस्वत् शब्द का तृतीया एक वचन का रूप विवस्वता है।)

निष्पन्नशालिवनशालिनि—परिपक्व धान के वनो से सुशोभित हो जाने पर।

विशेषार्थ — निष्पन्न—परिपक्व - शालिवन—धान्य क्षेत्र (धान के खेत) वही हुआ निष्पन्नशालिवन। शालिन्—शोभाशाली। शालिन् सती सप्तमी शालिनि अर्थात् शोभाशाली होने पर।

जीवलोके—भूलोक मे—पृथ्वी मे।

जलभारनम्रैः —पानी के भार से नीचे की ओर झुके हुए।

विषेषार्थ —जल—पानी, उसका भार वही हुआ जलभार, उसके कारण नम्र—नीचे की ओर झुके हुए, वही हुआ जलभारनम्र। उनके द्वारा।—जलभारनम्रैः।

जलधरैः —वादलों के द्वारा।

विशेषार्थ —उपरोक्त जलभारनम्रैः तथा जलधरैः मे विशेष्य विशेषण सम्वन्ध के कारण तृतीया के वहु वचन मे प्रयुक्त हुआ है।

कियत् कार्यम्—कितना सा काम निकलता है ? अर्थात् कुछ भी नही।

When Thy lotus-like face, O Lord, has destroyed the darkness, what's the use of the sun by the day and moon by the night ? What's the use of clouds heavy with the weight of water, after the ripening of the paddy-fields in the world 19

× × ×

The deakness being destroyed by your moon-like face the moon is useless by the night and the sun by the day, Similarly, what is the use of clouds, hanging down by the weight of water after the ripeness of rice fields in the country ? 19

अन्वय

कृतावकाशम् ज्ञानम् यथा त्वयि विभाति तथा हरिहरादिषु नायकेषु न एवम्। स्फुरन्मणिषु तेज यथा महत्त्व याति किरणाकुले अपि काचशकले तु न एवम्।

शब्दार्थ.

[2]कृतावकाशम्—अनन्त पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला।

विशेषार्थ —कृत—किया गया है, अवकाश—प्रकाश, जिसके द्वारा वही हुआ कृतावकाश अर्थात् प्रकाश करने वाला।

ज्ञानम्—केवल ज्ञान।

यथा—जिस प्रकार।

त्वयि—आप मे।

विभाति—शोभायमान है।

तथा वैसा (उस प्रमाण से)।

हरिहरादिषु—हरिहरादिक अर्थात्ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि मे।

विशेषार्थ —हरि—विष्णु, हर—शकर अर्थात् महादेव, वही हुआ हरिहर, वह है जिनके आदि मे वही हुआ हरिहरादि। यह पद सप्तमी के बहु वचन मे आया है। यहाँ आदि शब्द से ब्रह्मा, बुद्ध आदि समझना चाहिए।

नायकेषु—नायको मे, लौकिक देवताओ मे।

विशेषार्थ :—नयतीति नेता, अर्थात् नायक। वैसे तो देश का नेतृत्व करने से नेता को ही नायक कहा जाता है। परन्तु उपरोक्त नायकों मे देवत्व का आरोपण होने से वे लौकिक देव ही यहाँ नायक के रूप मे ग्रहण किये गए हैं।

न एवम्—वैसा है ही नही, अर्थात् सर्वथा ही नही।

स्फुरन्मणिषु—झिलमिलाती मणियो मे (महान् रत्नो मे)।

विशेषार्थ —स्फुरत्—प्रकाशवत, जगमगाता हुआ ऐसा जो मणि वही हुआ स्फुरन्मणि, उसके विषय मे अर्थात् महान् रत्नो मे (सप्तमी बहु वचन मे प्रयुक्त)।

तेज —दीप्ति, कान्ति, चमक-दमक।

यथा महत्त्व याति—जैसा महत्त्व प्राप्त करते हैं।

---

१ "काचोद्भवेषु न तथैव विकासकत्वम्" ऐसा भी पाठ है।

२ अनन्तपर्यादिके वस्तुनि कृतो विहितोऽवकाश प्रकाशो येन तत्।

किरणाकुले अपि—रश्मि राशि से व्याप्त होने पर भी।

काच शकले—काँच के टुकडो मे—काँच के हिस्सो मे।

विशेषार्थ —काँच का शकल—टुकडा वही हुआ काँच शकल उसमे अर्थात् काच शकले सप्तमी एक वचन मे प्रयुक्त हुआ है।

तु—तो

न एवम्—प्राप्त ही नही करता।

भावार्थ

हे तेजोपुज !

स्वपर प्रकाशक अखण्ड क्षायिक ज्ञान की निर्मल ज्योति जिस प्रकार आप मे सुशोभित होती है, वैसी ब्रह्मा विष्णु महेश आदि लौकिक देवो मे नही है। सच ही तो है—कि महारत्नो मे जैसा तेज होता है, वैसा काच के टुकडो मे कदापि नही होता अर्थात्—काच का टुकडा सूर्य की तेज किरणो को ग्रहण करने पर भी वैसी चकाचौंध उत्पन्न नही करता जैसी कि सामान्य रूप से रखे हुए मणि मुक्तादिक करते हैं।

विवेचन

प्रकृति मे प्रतिष्ठित वैदिक देवताओ मे पूजनीयता के अभाव की सतर्क विवेचना करने के उपरान्त स्तुतिकार अब लोक मे प्रसिद्ध पौराणिक पुरुषो मे देवत्व का अभाव सिद्ध करते हुए कहते हैं—कि—

हे वीतराग आप्त ! आप न केवल रूप सौन्दर्य मे ही अद्वितीय हैं, अपितु ज्ञान प्रधान गुण सौन्दर्य मे भी एकमेव हैं अद्वितीय हैं। कहाँ आपका अनन्त ज्ञान और कहा अन्यान्य तथाकथित सरागी देवो का सीमित सकुचित ज्ञान ! हे सर्वज्ञ ! आपने अनेकातात्मक वस्तु स्वरूप को जैसा देखा है, वैसा ही प्ररूपित किया है। आपके वचन परस्पर विरोध रहित हैं और मिथ्यामार्ग का उन्मूलन करने वाले हैं। जब कि अल्पज्ञ और छद्मस्थ देवो के वचन परस्पर विरोधी और अपूर्णता के सूचक हैं। आपमे स्थान पाकर ज्ञान सामान्य अपने शुद्ध रूप मे जिस शोभा को प्राप्त होता है, वैसा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि लौकिक देवताओ मे नही। क्योंकि मिथ्या दर्शन के कारण उनका ज्ञान भी मिथ्याज्ञान की कोटि मे आता है। जिस प्रकार चमकती-जगमगाती हुई वैडूर्य पद्मराग इन्द्रनील आदि मणि मुक्ताओं मे स्वभाव से ही चाकचिक्य (चकाचौंध)

उत्पन्न करने वाला तेज विद्यमान रहता है वैसा तेज या चमक-दमक सूर्य की किरणो को समेट लेने वाले काच के टुकडो मे नही पाया जाता।

यहा सरागी देवताओ की तुलना काच के टुकडो से तथा वीतराग परम हितोपदेशी जिनेश्वर देव की तुलना मणि मुक्ताओ से दी गई है, और स्वपर प्रकाशक कैवल्यज्ञान के आगे समस्त क्षायोपशमिक और क्षायिक ज्ञानो का अवमूल्यन सिद्ध किया गया है।

Knowledge abiding in the Lords like Hari and Hara does not shine so brilliantly as it does in You, Effulgence, in a piece of glass, though filled with rays, the rays never attains that glory, which it does in sparkling gems 20.

× × ×

The other gods such as Hari and Har, possess no such supreme knowledge as you have in you with its all illumining quality; for the (rear) luster, which shines in the glittering jewels with its full splendour, can not be reflected in equal degree, by the glass pieces, even abounding in the rays of light 20

मूल श्लोक (सर्व सौख्य सौभाग्य साधक)

मन्ये वर हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदय त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्य
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

निन्दा स्तुति अलकार

हरिहरादि देवो का ही मैं, मानू उत्तम अवलोकन।
क्योकि उन्हे देखने भर से, तुमसे तोषित होता मन॥
है परन्तु क्या तुम्हे देखने, से हे स्वामिन् मुझको लाभ।
जन्म जन्म मे भी न लुभा पाते, कोई, यह मम अभिताप ॥२१॥

हरिहरादिक देवो का देखना अच्छा है, क्योकि वे रागद्वेप एव विपय कषायो से ओतप्रोत हैं। उनके अवलोकन से चित्त सन्तुष्ट नही होता, मन को शान्ति नही मिलती, तव आपके दर्शन को मन स्वभावत लालायित होता है, क्योकि आप वीतराग सर्वज्ञ तथा हितोपदेशी हैं। आपके दर्शन से चित्त इतना अधिक सन्तुष्ट होता है, कि वह मृत्यु के उपरान्त जन्म जन्मान्तरो मे भी दूसरे तथाकथित लौकिक देवो का दर्शन नही करना चाहता। यहाँ व्याजोक्ति अलकार है।

विवेचन

यह एक सामान्य नियम है, कि जव तक मूल वस्तु के समानान्तर कोई कृत्रिम वस्तु सापेक्ष रूप से उसकी तुलना मे नही रखी जाती तव तक मूल वस्तु का सही मूल्याकन नही हो सकता। कांच के टुकडे की कीमत तभी तक है, जव तक कि उसके सामने मणि मुक्तादिक नही आ जाते। यदि प्रकृति मे अकेला दिन ही होता, रात्रि न होती अथवा केवल प्रकाश ही होता, अन्धकार न होता तो दिन अथवा प्रकाश दोनो ही अपने विपक्षियो के अभाव मे उतने मूल्यवान नही माने जाते जितने कि उनके सद्भाव मे। जव तक परस्पर विरुद्ध दो वस्तुएँ सापेक्ष रूप से तुलना मे नही आती तव तक निरपेक्ष और मौलिक वस्तु का यथार्थ मूल्याकन नही किया जा सकता। असल की कीमत भी नकल की उपस्थिति से होती है।

यहाँ २०वें तथा २१वें श्लोक मे आचार्यश्री सरागी एव वीतरागी देवो की तुलना करते हुए उनका मूल्याकन कर रहे हैं। व्याजोक्ति अलकार और विरोधाभास की भाषा मे हैं कि —

हे पुराण पुरुष! यह तो अच्छा ही हुआ कि मैंने मूढता के क्षणो मे नारायण रुद्रादिक तथाकथित लौकिक देवों का भी अवलोकन कर लिया, अगर उन्हे न देखता तो उनकी ओर से अरुचि कैसे होती? वस्तुत उनमे वह आकर्पण नही था कि वे मेरे लोचन मन को एकटक एकाग्र करके अपने मे रोके रहते, उनको देखने मात्र से मेरा हृदय चचल हो उठा और टिक गया केवल आपकी सौम्य शान्त मुद्रा पर! तो इस प्रकार उनके देखने से यह लाभ ही हुआ कि आपका महत्त्व उनकी सापेक्षता मे अपने आप वढ गया।

हे अद्वितीय सौन्दर्य सिन्धो! आपका मूल्य इन तथाकथित द्वितीयो ने अपने आप सिद्ध कर दिया—यह इनके दर्शनो से लाभ हुआ, जव कि आपके अवलोकन से यह हानि हुई कि एक तो हमारे भवो की हानि हो गई, दूसरे

हमारे चचल दृग और मन आप पर ऐसे एकाग्र होकर टिके कि जन्म-जन्मान्तरो तक भी अन्य देवो की ओर देखने का नाम नही लेते। तात्पर्य यह कि हास्य लास्य रजित अस्त्र वस्त्र सज्जित देवो ने हमारे दृग, मन को आकर्षित करके इतना चचल किया कि वे एक स्थान पर स्थिरता से टिक भी न सके जब कि आपकी वीतराग मुद्रा ने दृग, मन को इतना स्थिरैकाग्र किया कि दूसरे देवो को देखने का नाम भी नही लेते।

Assuredly great I feel, is the sight of Hari, Hara and other gods, but seeing them the heart finds satisfaction only in you What happens on seeing You on Earth None else, even through all the future lives, shall be able to attract my mind 21.

It is better that I have seen Hari and Har firot as by doing so my heart finds its satisfaction on seeing you, what goocl is it li Look at you first because after seeing you no olter god can captivate my heart wen in the life to come? 21

× × ×

अन्वयः

(भगवन्) स्त्रीणाम् शतानि शतश पुत्रान् जनयन्ति अन्या जननी त्वदुपमम् सुतम् न प्रसूतसर्वा दिश भानि दधति प्राची एव दिग् स्फुरदशु-जालम् सहस्ररश्मि जनयति।

शब्दार्थ

स्त्रीणाम् शतानि—स्त्रियो के सैकडे अर्थात् करोडो स्त्रियां।

विशेषार्थ —'बहुवचनात् कोटिकोटय' यहाँ बहु वचन का प्रयोग होने से कोटि-कोटि अर्थात् करोडो की सख्या समझना चाहिए।

शतश —सैकडो।

विशेषार्थ —शतश बहु शतानि अर्थात् सैकडो। भक्तामर स्तोत्र की कनककुशल सूरि रचित टीका मे 'शतवारान् इति शतश' अर्थात् सैकडो वार ऐसा भी अर्थ व्यक्त किया गया है।

पुत्रान्—पुत्रों को।

जनयन्ति—जन्म देती है, पैदा करती है। (किन्तु फिर भी)

अन्या—दूसरी अर्थात् आपकी माता के अतिरिक्त और कोई। भगवान ऋषभदेव की माता का नाम मरुदेवी था। उसे छोड कर अन्य दूसरी कोई स्त्री।

जननी—माता।

विशेष —जन्म देने वाली वह जननी अर्थात् माता।

त्वदुपमम्—आपके समान।

विशेषार्थ —त्वत्—आपके, उपम—तुल्य, वही हुआ त्वदुपम।

सुतम्—पुत्र को।

न प्रसूता—नही जन सकी, नही उत्पन्न कर सकी।

सर्वा —सभी।

दिश —दिशाएँ।

भानि—नक्षत्रो को, ताराओ को।

दधति—धारण करती हैं (किन्तु)।

प्राची एव दिग्—पूर्व दिशा ही, केवल पूर्व दिशा ही।

स्फुरदशुजालम्—प्रकाशमान किरणो के समूह वाले।

विशेषार्थ —स्फुरत्—प्रकाशमान, ऐसी अशु—किरणें। उनका जाल—समूह, वही हुआ स्फुरदशुजाल। आगे आने वाले सहस्ररश्मि शब्द का

परन्तु उनकी टिमटिमाहट ससार के अन्धकार को रंचमात्र भी दूर नहीं कर पाती क्योंकि वे स्वय निस्तेज हैं। सख्या मे अधिक होने से उनका तेज बढ नही जाता, परन्तु इसके विपरीत सूर्य सख्या मे एक है तथापि उसकी लालिमा मात्र से ससार का अंधेरा दूर हो जाता है और उसके आलोक मे भूमण्डल पर सर्वत्र चैतन्य बिखर पडता है।

स्तुतिकार आचार्यश्री कहते हैं कि धन्य हैं आप जैसे महापुरुष को जिसने कि अपनी माता की कुक्षि से जन्म लेकर न केवल भूमण्डल को कृतार्थ किया परन्तु आप जैसे लाल को पाकर माता भी धन्य हो उठी। वह माता आप से भी अधिक धन्य है जिसने आप जैसे त्रिलोकीनाथ को जन्म देकर स्वय को ही कृतार्थ नही किया बल्कि तीनों लोक भी जिससे कृतकृत्य हो गये। आगमोक्त कथन है कि तीर्थङ्कर के माता-पिता नियम से अल्प ससारी होते हैं।

आज के युग मे मानव समाज की सन्तानोत्पत्ति की सख्या कीडे-मकोटो जैसो हो गई है तो भी उससे न तो विश्व का ही कल्याण हो रहा है और न स्वय का। करोडो माताएँ करोडो पुत्रों को उत्पन्न करती रहती हैं परन्तु इतनी बडी सख्या होने पर भी उनकी शक्ति की तुलना आपके अतुल बल से नही की जा सकती। यही कारण है कि न तो आप जैसे पुत्र ही इस वसुन्धरा पर दिखाई देते हैं और न आप जैसे को जन्म देने वाली माताएँ ही दिखाई देती हैं।

इस छद मे परस्पर आधार आधेय सम्बन्ध द्वारा तीर्थङ्कर आदिनाथ भगवान तथा उनकी पूजनीया माता मरुदेवी का गुणगान स्तुतिकार द्वारा व्यक्त किया गया है और उनकी विलक्षणताओ द्वारा पारस्परिक धन्यता प्रकट की गई है। विलक्षणताओ से तात्पर्य यहाँ तीर्थङ्कर सम्बन्धी जन्म के दश अतिशयो से समझना चाहिए।

Though all the directions do possess stars, yet it is only the eastern direction which gives birth to the thousandrayed (sun), whose pencils of rays shine forth brilliantly So do hundreds of mothers gives birth to hundreds of sons, but there is no othe mother who gave birth to a son like You 22

× × ×

Hundreds women give birth to sons by hundreds, but no woman can give birth to a son like you for all (the eight) directions may hold stars but it is the east only that can produce the sun, profusely abounding in illumining rays. 22

मूल श्लोक (प्रेतबाधा निवारक)

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३॥

आप ही मृत्युञ्जय शिवशंकर है

[illegible]

तुमको परम पुरुष मुनि मानें, विमल वर्ण रवि तमहारी।
तुम्हे प्राप्त कर मृत्युजय के, बन जाते जन अधिकारी॥
तुम्हे छोड कर अन्य न कोई, शिवपुर पथ बतलाता है।
किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर, भव-भव मे भटकाता है॥२३॥

---

१ 'पवित्र" भी पाठ है।

अन्वयः

मुनीन्द्र ! मुनय त्वाम् आदित्यवर्णम् अमलम् तमस परस्तात् परमम् पुमासम् आमनन्ति त्वाम् एव सम्यक् उपलभ्य मृत्युम् जयन्ति शिवपदस्य अन्य· शिव पन्था न (अस्ति) ।

शब्दार्थ·

मुनीन्द्र !—हे मुनियो के नाथ ! हे मुनिनायक !

मुनय —मुनि लोग, ज्ञानी पुरुप ।

'मुनयो ज्ञानिन'

त्वाम्—तुमको ।

आदित्यवर्णम्—सूर्य के समान देदीप्यमान, सूर्य के समान तेजवत ।

विशेपार्थ —आदित्य—सूर्य, उसके सदृश है वर्ण—काति जिसकी वही हुआ आदित्यवर्ण ।

अमलम्—दोप रहित, निर्मल, स्वच्छ ।

विशेपार्थ —मल—दोप, उससे रहित वही हुआ अमल अर्थात् निर्मल-राग-द्वेप रहित ।

तमस परस्तात्—तमोगुण अथवा अज्ञानान्धकार से परे ।

विशेष—परस्तात् परतो वर्तमानम् ।

परमम् पुमासम्—परम पुरुप, उत्कृष्ट पुरुप, लोकोत्तर पुरुप ।

विशेष—यहाँ परम विशेषण वाह्य और अन्तरग पुमान् की अपेक्षा से है । वाह्य पुमान् औदारिक शरीरों को कहते है और अन्तरग पुमान् कर्म सहित जीव को कहते हैं । इसलिए परम पुमान् मे कर्म रहित सिद्ध आत्मा ही समझना चाहिए ।

आमनन्ति—मानते हैं, कहते हैं ।

त्वाम् एव—(और) तुमको ही ।

सम्यक्—भलीभांति, भक्तिपूर्वक, अन्तरग की शुद्धिपूर्वक ।

उपलभ्य—प्राप्त करके ।

मृत्युम्—मरण को, मृत्यु को ।

जयन्ति—जीतते हैं ।

(यत्)—क्योंकि (अध्याहार से ग्रहीत) ।

शिवपदस्य—मोक्ष पद का, निर्वाण पद का, मुक्ति पद क

"सूर्य कोटि समप्रभ" विशेषण का प्रयोग किया है। यद्यपि आपके साथ सूर्य की उपमा मे बिन्दु और सिन्धु का अन्तर है, तो भी अन्धकार की सदृशता के कारण सूर्य को उपमान मानना अनिवार्य है। भले ही सूर्य लौकिक अन्धकार का नाश करता हो परन्तु आप तो, अज्ञान और मिथ्यात्व रूपी अन्धकार के नाश करने वाले अलौकिक मार्तण्ड है।

हे जिनेश्वर देव आप अमल हैं। अमल की व्याख्या करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि आत्मा को मलीन करने वाली मोह-राग-द्वेष आदि कर्म कलको की प्रचुरता ही है। परन्तु आपने तो उस कलक कालिमा को सर्वथा दूर करके अपने मे स्वाभाविक निर्मलता प्रकट कर ली है अतएव आप निर्मल हैं, अमल हैं अथवा विमल हैं।

वैदिक ऋषियों ने परमात्मा को मृत्युञ्जय नाम से भी सम्बोधित किया है। उस सम्बोधन का वास्तविक अर्थ प्रकट करते हुए मुनि मानतुगजी कहते हैं कि आपने जन्म, जरा और मरण का उन्मूलन कर दिया है अर्थात् निर्वाण प्राप्त करने के पश्चात् आप 'पुनरपि जन्म पुनरपि मरण' के भव भ्रमण से सर्वथा मुक्त हो गए हैं। अतएव आप स्वय तो मृत्युञ्जय हैं ही परन्तु जिसके उपयोग मे आपका शुद्ध स्वरूप समा गया है—ऐसे भक्त भी आपकी सम्यक् उपासना करके मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् भव-भ्रमण के चक्र से सदा-सदा के लिए विलग हो जाते हैं।

लौकिक जन आपको शिव-शकर अथवा कैलाशपति के नाम से भी पुकारते हैं। इन पर्यायवाची शब्दो के वाच्यार्थ वास्तव मे आप ही हैं क्योकि शिव कल्याण को कहते हैं और पन्था मार्ग को कहते है। इस प्रकार से जिसने प्रशस्त, निरुपद्रव और कल्याणकारी मार्ग का दिग्दर्शन कराया हो वह शिव नही तो और क्या है ? वास्तव मे इस मार्ग द्वारा जिस पद अथवा मजिल की प्राप्ति होती है उस पद को शिवपद कहा जाता है और ऐसा शिवपद अर्थात् निराकुल अव्याबाध सुख का एकमात्र स्थान निर्वाण ही है जिसे आपने प्राप्त कर लिया है और आपके द्वारा प्रतिपादित पथ पर जो पथिक चलते हैं वे भी शिवपद की प्राप्ति करते है। इसलिए आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी शिव नामक महादेव नही हो सकते।

The great sages consider You to be the Supreme Beeing, Who possesses the effulgence of the sun, is free from blemishes, and is beyond darkness Having perfectly realized You, men even conquer death O Sage of sages ! there is no other a auspicious path (except You) leading to Supreme Blessedness. 23

O best of the sages ! The saints look upon you as the Supreme soul, the sun for (destroying) darkness and the one free from impueities They overcome death after having duly obtained you and, hence, there is no other course of Salvation more auspicious than you 23

× × ×

मूल श्लोक (शिरोरोग नाशक)

त्वामव्ययं - विभुमचिन्त्य - मसंख्यमाद्य,
ब्रह्माण - मीश्वर-मनन्त मनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वर विदित - योग - मनेक - मेकं,
ज्ञानस्वरूपममल प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

विविध नाम संबोधित प्रभु
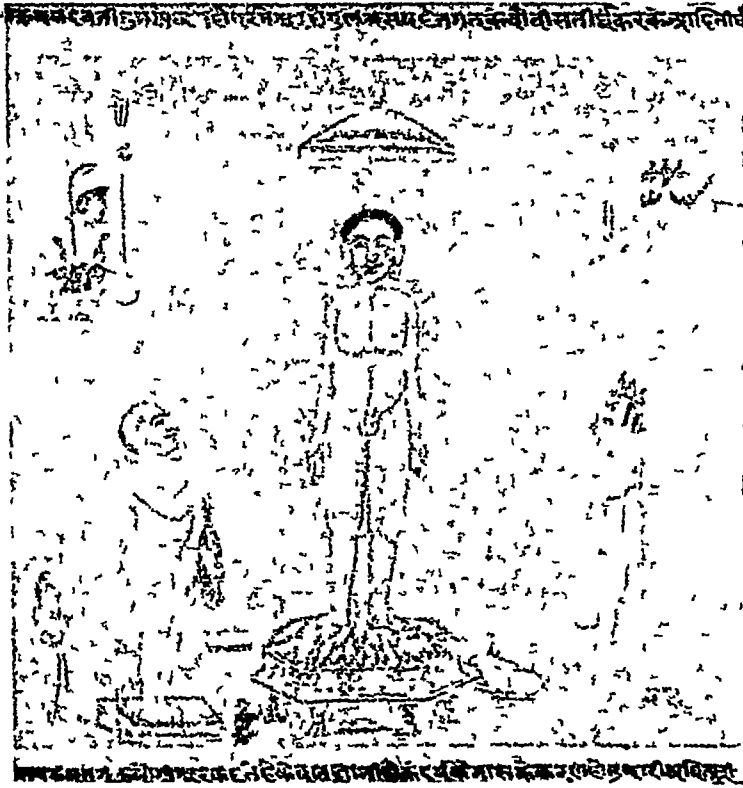
तुम्हे आद्य अक्षय, अनत प्रभु, एकानेक तथा योगीश ।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर विदित योग मुनिनाथ मुनीश ॥
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज जगन्नाथ जगपति जगदीश ।
इत्यादिक नामो कर माने सन्त निरन्तर विभो निधीश ॥२४॥

गुणातीत, चतुर्विंशति तीर्थङ्करों मे आद्य स्मरणीय, ब्रह्मा, ईश्वर, अनन्त, अनगकेतु, योगीश्वर, योगवेत्ता अनेक, एक ज्ञानस्वरूप और अमल आदि विविध सार्थक नामों से सम्बोधित करते है !

विवेचन

स्तुतिकार श्री मानतुगाचार्य द्वारा स्तोत्र रचना का प्रवाह भक्ति की प्रधानता से प्रारम्भ होता हुआ अब क्रमश तत्त्वज्ञान की धारा की ओर उन्मुख हो रहा है। विविध तर्कों और प्रमाणो के ऊहापोह द्वारा वे षड् दर्शनों की मान्यता एव मत मतान्तरो की एकान्तवादिता का खडन, अनेकान्त द्वारा करते हुए श्री जिनेश्वर देव के नामो की यथार्थ व्याख्या प्रसिद्ध करते है।

प्रस्तुत श्लोक मे उन्होंने पन्द्रह अभिधानो मे ही यावत् प्रचलित दर्शन और धर्मों के वाच्यार्थ परमात्म तत्त्व को, गागर मे सागर की भांति भर दिया है। इन पन्द्रह विशेषणो की यदि विशद व्याख्या की जाए तो भगवान के १००८ नामो का समावेश भी एक-एक विशेषण मे हो सकता है। यहाँ पर आचार्यश्री द्वारा वर्णित कुछ सम्बोधनो की व्याख्या न्याय दर्शन एव प्रचलित लौकिक धर्मों की मान्यतानुसार प्रस्तुत की जा रही है। आचार्यश्री कहते हैं कि—

हे अक्षय पद विभूषित जिनेश्वर देव ! आप अपने आत्म स्वरूप से कभी भी च्युत नही होते। आप मे व्यय, अपव्यय की क्रिया नही होती अर्थात् आपने आत्मा का जो विकास किया है वह जैसे का तैसा ही रहता है। द्रव्यार्थिक नय से जीव का स्वरूप शाश्वत, नित्य, अव्यय एव अक्षय ही है। इसीलिए आपको सन्त पुरुष अव्यय नाम से स्मरण करते है।

हे परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मन् ! आप समवशरण और अष्ट प्रातिहार्यादिक बाह्य विभूतियो से समृद्ध हैं तथा अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी से सुशोभित हैं। "विभाति परमैश्वर्येण शोभत इति विभु । अथवा आप समस्त कर्मों के उन्मूलन करने मे पूर्ण समर्थ हैं। इसलिए आप विभु नाम को सार्थक करते हैं। "विभवति कर्मोन्मूलेन समर्थो भवतीति विभु" ।

हे विकल्पातीत ! आप बुद्धि अथवा विचारगम्यता से परे है। अर्थात् जब तक सकल्प-विकल्पो का जाल आत्म पटल पर रहता है तब तक आपकी उपलब्धि नही होती परन्तु वीतराग निर्विकल्प समाधि द्वारा आत्मानुभूति के क्षणो में ही आप अनुभव गोचर होते हैं। इसलिए आपको अचिन्त्य कहना सार्थक ही है।

हे अनन्तगुण सम्पन्न विभो ! गुण और काल की सख्या से आपकी गणना नही हो सकती। वस्तुत आप असख्यात् गुणो से सम्पन्न हैं अथवा आप सख्यातीत अर्थात् असख्य हृदयो मे विराजमान रहने के कारण असख्य नाम को सार्थक करते है। इसीलिए सन्तो द्वारा आप **असख्य** नाम से भी स्मरणीय हैं।

हे आदीश्वर देव ! आप वर्तमान कर्मभूमि के आदिम तीर्थङ्कर हैं। पच परमेष्ठियो मे आद्य अरहत है, मोक्ष मार्ग के आद्य प्रणेता है, असि, मसि, कृपि आदि षट् कर्मों के आद्य प्रवर्त्तक हैं तथा धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करने वाले तीर्थङ्करो मे आप सर्वप्रथम तीर्थङ्कर हैं इसलिए भी मुनिवृन्द आपको **आद्य** नाम से स्मरण करते है।

हे परमब्रह्म परमेश्वर ! लौकिक ब्रह्मा के रूप मे प्रचलित यथार्थ ब्रह्मा तो आप ही है क्योकि यद्यपि आप सृष्टि की रचना नही करते तो भी कर्मभूमि की सृष्टि आपके माध्यम से ही प्रारम्भ हुई है। अस्तु आप यथार्थ ब्रह्मा हैं। ब्रह्म अर्थात् आत्मानन्द मे निमग्न रहने के कारण भी **सच्चे ब्रह्मा** है।

वृहति अनन्तानन्देन वर्धत इति ब्रह्मा"

हे जगदीश्वर ! आप पूर्णतया कृत्कृत्य है अर्थात् आपको सर्व निर्वृत्ति एव प्रवृत्ति रूप कोई कर्म करना शेप नही रहा अत आप कृत्कृत्य हैं, कृतार्थ है, स्वय सिद्ध हैं अथवा आप तीनो लोको से पूज्य हैं। ज्ञानादि अनन्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं अतएव **ईश्वर** नाम का सम्बोधन आपके लिए उपयुक्त ही है।

हे अनन्त गुणमय ! आप अनन्त चतुष्टय के धारी है और आपके गुणो का अन्त नही है। जिस प्रकार समस्त सरिताओ का जल समुद्र मे समाविष्ट रहता है उसी प्रकार आपके अनन्त गुणात्मक आत्म द्रव्य मे सभी गुण-पर्यायें समाविष्ट है अथवा आप अन्त अर्थात् मृत्यु से रहित हैं और अनन्त बल का साहचर्य प्राप्त हो गया है, इसलिए आप ही अनन्त हैं। **अनन्त** नाम के योग्य हैं।

हे कामारि विजेता ! आपने कामदेव पर विजय प्राप्त कर जिन-शासन का ध्वज लोक भर मे फहराया है। आप अनग अर्थात् कामदेव का नाश करने वाले केतु के समान हैं, अथवा जैसे केतु (धूमकेतु) का उदय ससार के नाश का साधन बनता है वैसे ही आप कामदेव के नाश का कारण बने, इससे आपका **अनङ्गकेतु** नाम सार्थक है।

हे यतिनायक ! आप सयोग केवली अवस्था मे अरहत पद पर विराजमान हैं। योगी मुनीश्वर भी आपको त्रिकाल नमन करते हैं, आपकी सेवा करते हैं।

अथवा आप निर्वाण साधक योग की साधना करने वाले साधु पुरुषो अर्थात् योगियो के स्वामी हैं इसलिए वास्तविक योगीश्वर अर्थात् ध्यानियो के ध्येय तो आप ही हैं।

हे योगेश्वर ! आपकी आत्मा परमात्म स्वरूप से युक्त हो गई हैं। आपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के त्रियोग की सिद्धि कर ली है। अष्टाङ्ग योग को अच्छी तरह जाना है। "विदित योग ज्ञाताष्टाङ्गयोग मार्ग" तथा आपने पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपातीत आदि ध्यान योगो का स्वरूप स्वय जाना है और अन्य ध्यानियो को भी बतलाया है अथवा मुक्ति मार्ग मे लगाने वाला जो धर्म-व्यापार है वह भी योग है। ऐसे धर्म-व्यापार को आप भलीभाँति जानते है और उसी को उपदेशित किया है। अत वास्तविक योगवेत्ता आप ही है।

हे अनेकान्त मूर्ते ! आपने अनेकान्तात्मक वस्तु स्वरूप को यथावत् जाना व देखा है तथा तथावत् निरूपित किया है अथवा गुण और पर्याय की अनेकता की अपेक्षा से आप अनेक रूप हैं। एक हजार आठ नामो से सम्बोधित होने के कारण भी आप अनेक कहे जाते हैं।

हे एकमेव शरण्यभूत ! योगीजनो द्वारा आप एक भी कहे जाते हैं। उसका अर्थ यही है कि जीव द्रव्य की अपेक्षा आप केवल एक ही हैं। दूसरे द्रव्यो से आपका किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नही है अथवा अनन्त गुणो की अखण्डता और अभेदता ही आपकी एकता है। आप सदृश तीनो लोको मे दूसरा कोई नही है इसलिए भी आप एक सिद्ध होते हैं।

हे सर्वज्ञ देव ! आप केवलज्ञान स्वरूप मात्र ज्ञान चेतना ही है। अनन्त ज्ञान के धनी होने के कारण भी आप ज्ञानस्वरूप कहलाते हैं। यद्यपि आप निश्चय से अपने स्वरूप को ही जानते है तथापि पर पदार्थ आपके निर्मल ज्ञान रूपी दर्पण मे झलकने के कारण आपको व्यवहार से पर का ज्ञाता भी कहते हैं। आप मे विशुद्ध ज्ञान का ही परिणमन निरन्तर हो रहा है इसलिए वास्तव मे आप ही एकमेव ज्ञानस्वरूप हैं।

हे विमल मूर्ते ! आप द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म रूपी मलो से सर्वथा मुक्त हैं। पर द्रव्य जनित सयोग सम्बन्धो से सर्वथा अस्पृष्ट होने से आप परम विशुद्ध हैं अत आपको अमल कहना युक्तियुक्त ही है।

इस भाँति किन्ही भी पर्यायवाची शब्दो द्वारा आपका स्मरण करें किन्तु उन सब के मूल तत्त्व मे आप ही एकमात्र ध्येय ह अथवा ध्यान के विषय हैं। व्यवहार से आपका ध्यान करने वाला जीव निश्चय से अपने स्वरूप का ही ध्यान करता है इसलिए जो स्वरूप आपका है वही स्वरूप भक्त का भी हो जाता है।

The righteous consider You to be immutable omnipotent, incomprehensible unumbered the first Brahma, the supreme Lord Siva, endless the enemy of Ananga (Cupid), lord of yogis, the knower of yoga, many, one, of the the nature of knowledge, and stainless 24

× × ×

The sages regard you as the simperishable store of superhuman qualities incomprehensible, innumerable, the first and principle Tirthankar the supreme and highes soul Lord of Gods infinite, the destroyer of cupid, the chief among yogees, conversant with yoga (mutual abstraction), many (with reference to your attributes & properties), one (as regards to sustanse), endowed wiuh Supreme knowledge, and one free from impurities 24

मूल श्लोक (दृष्टिदोष निरोधक)

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्—
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्त त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

लौकिक देवों के नामों की जिनेन्द्र देव में सिद्धि
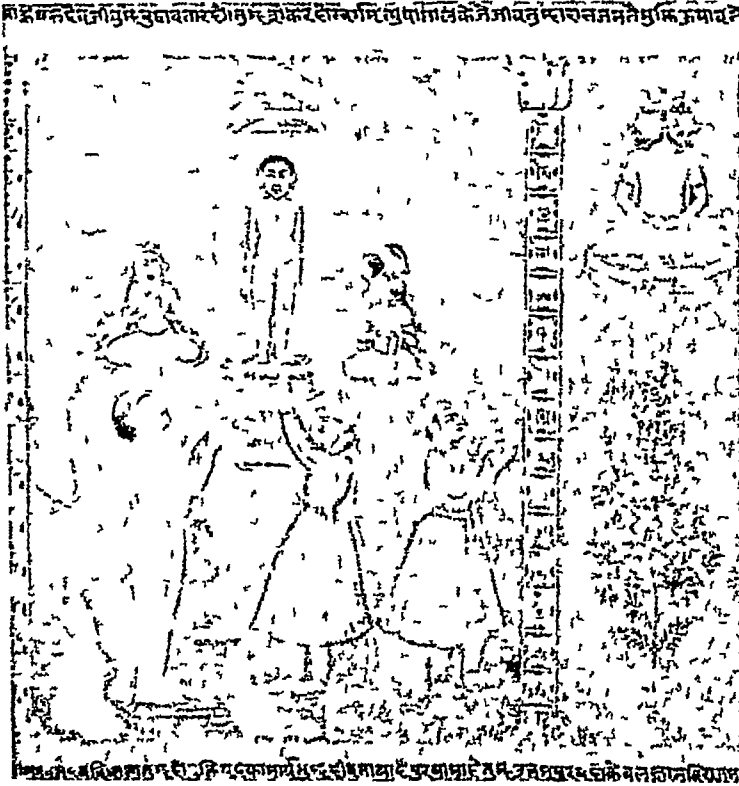
ज्ञान पूज्य है; अमर आपका, इसीलिये कहलाते बुद्ध।
भुवनत्रय के सुख-सवर्द्धक, अत तुम्हीं शकर हो शुद्ध॥
मोक्ष-मार्ग के आद्य प्रवर्त्तक, अत विधाता कहें गणेश।
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखिलेश? ॥२५॥

अन्वय.

विबुधार्चित ! बुद्धिबोधात् त्वम् एव बुद्ध भुवनत्रयशङ्करत्वात् त्वम् शङ्कर असि धीर ! शिवमार्गविधे विधानात् धाता असि त्वम् एव व्यक्तम् पुरुषोत्तम असि।

शब्दार्थ

विबुधार्चित !—देवो, गणधरो, विद्वद्वरो द्वारा पूजित् हे भगवन्।

विशेषार्थ —विबुध—देव अथवा विशिष्ट ज्ञानी गणधरादिक, उनके द्वारा **अर्चित**—पूजित, वही हुए **विबुधार्चित**। यद्यपि यह पद सम्बोधन मे है तथापि अनेक व्याख्याकार **विबुधार्चित बुद्धिबोधात्** को एक ही पद मानकर उसकी व्याख्या करते है।

बुद्धिबोधात्—ज्ञान के विकास से, ज्ञान के प्रकाश से।

विशेषार्थ —बुद्धि—ज्ञानशक्ति, उसका **बोध**—विकास, वही हुआ **बुद्धिबोध**। उस कारण से (पचमी एक वचन मे प्रयुक्त)।

त्वम् एव बुद्ध—तुम ही बुद्ध।

विशेषार्थ —बुद्ध—ज्ञानी अथवा व्यक्ति विशेष बुद्धदेव।

(असि)—(हो)।

भुवनत्रयशङ्करत्वात्—तीनो लोको के सुखकारी होने से।

विशेषार्थ —भुवनानाम् त्रय भुवनत्रय अर्थात् तीन भुवनो का समूह वही हुआ **भुवनत्रय**, उसका **शकरत्व**—कल्याणकारित्व वही हुआ **भुवनत्रयशकरत्व** अर्थात् कल्याणकारित्व वही हुआ भुवनत्रयशकर स० **सुख करोतीति शङ्कर तस्य भाव शङ्करत्व** अर्थात् कल्याणपना, उससे वही हुआ **भुवनत्रयशङ्करत्वात्**।

त्वम् शङ्कर (असि)—तुम ही शङ्कर (हो), कल्याणकारी हो।

धीर—हे धैर्य धारण करने वाले प्रभो !

शिवमार्ग विधे—मोक्ष मार्ग की विधि के।

विशेषार्थ —शिवस्य मार्ग शिवमार्ग अर्थात् मुक्तिमार्ग उसकी **विधि**—उपाय अथवा धर्माचार वही हुआ **शिवमार्ग विधि**। यह पद षष्ठी के एक वचन मे होने से **शिवमार्ग विधे**।

विधानात्—विधान करने से अर्थात् प्रतिपादन करने से (पचमी एक वचन)।

विशेषार्थ —विधान—निर्माण, व्यवस्था, रचना, सृजन।

धाता असि—विधाता हो, सृष्टिकर्ता हो, ब्रह्मा हो।

त्वम् एव—तुम ही।

व्यक्तम्—प्रकट रूप से।

पुरुषोत्तम—पुरुषोत्तम—नारायण, विष्णु।

असि—हो।

विशेषार्थ—पुरुषेषु उत्तम: पुरुषोत्तम—पुरुषो मे सर्वश्रेष्ठ वही हुआ पुरुषोत्तम।

भावार्थ

हे देवाधिदेव ! वास्तव मे बुद्धदेव तो आप ही है, क्योकि गणधर और देवेन्द्रो ने आपके केवलज्ञान-बोधि की पूजा की है। वास्तविक शकर तो आप ही हैं, क्योकि तीनो लोको के जीवों के "श" अर्थात् सुख के करने वाले हो। आप ही उदात्त गम्भीर और धीर व्यक्तित्व से परिपूर्ण हो। आप ही सृष्टिकर्त्ता, ब्रह्मा अथवा विधाता हो क्योकि मोक्षमार्ग (रत्नत्रय रूपविधि) का निष्पादन आपके ही द्वारा हुआ है। हे भगवान् ! आपने अपनी पर्याय मे सर्वोत्कृष्ट पुरुषत्व व्यक्त कर लिया है इसलिए आप ही पुरुषोत्तम अर्थात्-विष्णु नारायण हो।

विवेचन

लौकिक देवताओ मे ब्रह्मा विष्णु महेश और बुद्ध ही सबसे अधिक विख्यात हैं, परन्तु उनके उपासक जिस रूप मे उनकी उपासना करते है उस रूप मे उनमे देवत्व के एक भी लक्षण दृष्टिगोचर नही होते। इस श्लोक मे स्तुतिकर्ता जहाँ पर मतो का खण्डन कर रहे हैं वहा समन्वयात्मक अनेकान्त द्वारा उपरोक्त नामो से पुकारे जाने वाले देवो की सार्थक व्याख्या करते हुए कहते हैं कि—

बौद्ध लोग जिस क्षणिकवादी बुद्धदेव को बुद्ध मानते हैं—वह वास्तविक बुद्ध नही हैं। वास्तविक बुद्ध तो आप हैं क्योकि आपके केवल ज्ञानरूपी बुद्धि की पूजा देवेन्द्रों तथा गणधरो द्वारा की गई है। शैव लोग जिस शकर की उपासना करते है वे तो पृथ्वी का सहार करने वाले प्रलयङ्कारी शकर हैं। किंतु आप तो "श" अर्थात् सुख को करने वाले है इसलिए शकर शब्द के वाच्यार्थ तो केवल आप ही हैं। कैलाश से मोक्ष प्राप्त करने के कारण वास्तविक कैलाशपति शकर तो आप ही हैं। देवो मे प्रथम होने के कारण यथार्थ महादेव तो आप ही हैं। जिस ब्रह्मा को उनके अनुयायी भक्त सृष्टिकर्त्ता के

रूप में जानते हैं वे ब्रह्मा आप ही हैं। परन्तु वे सृष्टिकर्त्ता का अर्थ ही विपरीत समझते हैं। वस्तुत आपने कर्मभूमि के आदि में जहा जीवन-यापन की विधि और प्रवृत्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया था वहा मोक्ष मार्ग अथवा निर्वृत्ति मार्ग का भी निष्पादन किया था। इस अर्थ मे तो आप सृष्टिकर्त्ता ठहरते हैं किन्तु आप किसी द्रव्य के बनाने-बिगाडने वाले नहीं हैं। आप तो केवल उनके ज्ञाता दृष्टा हैं। वस्तु का स्वरूप जैसा आपने देखा जाना अनुभव किया उनका वैसा ही विधान विधिपूर्वक आपके द्वारा सम्पादित हुआ है इसलिए वास्तविक सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा और विधाता आप ही ठहरते हैं, क्योकि आप ही परब्रह्म पद मे स्थित हैं।

वैष्णव लोग जिन विष्णु-नारायण-कृष्ण आदि लौकिक देवो की उपासना देवरूप मे करते हैं उसके सच्चे प्रतीक तो केवल आप ही हैं क्योकि नारायण आदिक पद तो निदान बन्ध आदि के विपाक हैं, जबकि तीर्थङ्कर नामकर्म का परम पुण्य पद तद्भव मोक्षगामी होने का एकमात्र कारण है।

हे विभो ! आपने अपना सर्वोत्कृष्ट पुरुषत्व अपनी पर्याय मे व्यक्त कर लिया है इसलिए यथार्थ पुरुषोत्तम तो आप ही हैं। आप ही सर्वश्रेष्ठ मानव हैं।

ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता, विष्णु पालनकर्त्ता और महेश सहारकर्त्ता के रूप मे जाने जाते हैं परन्तु इस प्रतीकात्मक भाषा को तत्त्वज्ञान पूर्वक समझ कर तीनो बातें निम्न प्रकार से आप मे ही घटित करते हैं क्योकि हे जिनेश्वर देव ! आप उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप हैं। ससार पर्याय का आपने व्यय अर्थात् नाश कर दिया है इसलिए आप सहारकर्त्ता महेश सिद्ध हुए। सिद्ध पर्याय की आपने अभिव्यक्ति (उत्पत्ति) की है, इसलिए आप ही उत्पादकर्त्ता ब्रह्मा सिद्ध होते हैं। आपका जीव द्रव्य अन्वय रूप से प्रत्येक पर्यायो मे वही का वही शाश्वत और धारावाह था इसलिए आप पालनकर्त्ता विष्णु भी सिद्ध होते हैं। त्रय गुणात्मक एकरूपता होने से अथवा रत्नत्रय के अधिपति होने से आप ही दत्तात्रय ठहरते हैं। इस प्रकार से स्तुतिकार ने तथाकथित देवो का खडन करते हुए भी उनके प्रतीकात्मक अर्थों का रहस्य खोला है और उनके बहाने उनके नाम पर सच्चे वीतराग देव को ही स्मरण किया है।

As Thou possessest that knowledge which is adored by gods, Thou indeed art Buddha, as Thou dost good to all the three worlds Thou art Shankar, as Thou prescribest the process leading to the parth of Salvation, Thou art Vidhata; and Thou, O Wise Lord, doubtless art Purushottama. 25

You are good Budha as the other gods and leaned persons (Ganadhar) have worshipped and praised your knowledge, being the source of the prosperity of all living beings you are the only God Shiva, O resolute one ! as you laid down rules, serving as a guide to road of salvation you are the creator and what more O God ! you being the best among the persons, are the only Naraın 25.

मूल श्लोक (अर्द्ध शिर पीड़ा विनाशक)

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति - हराय नाथ !
तुभ्यं नम: क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगत: परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥

जिनेश्वर देव को निर्णयात्मक नमन
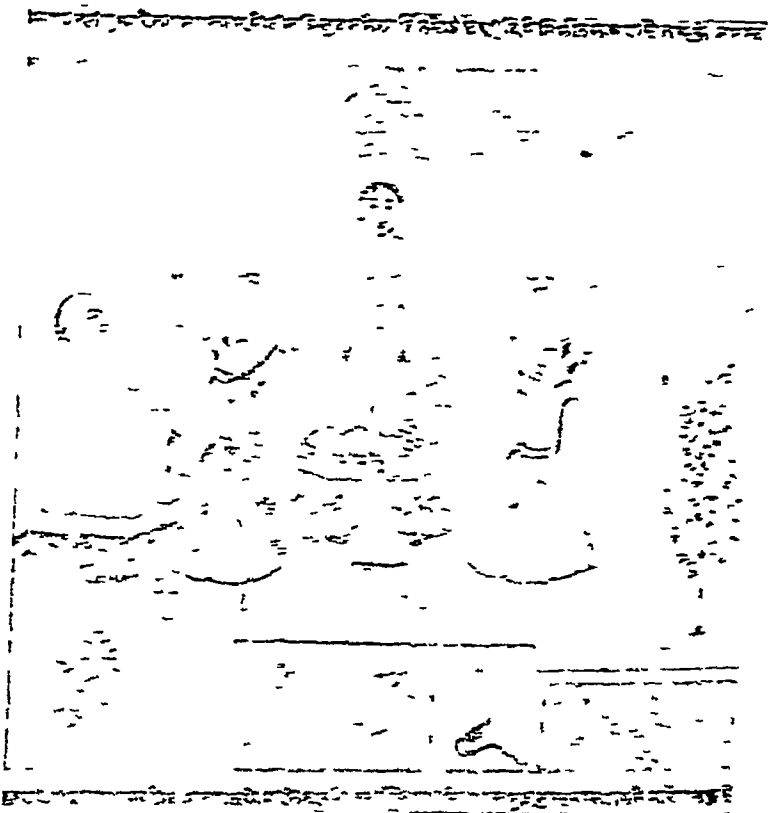
तीन लोक के दु:ख हरण करने वाले हे तुम्हें नमन।
भूमंडल के निर्मल भूषण आदि जिनेश्वर ! तुम्हें नमन ॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन।
भव-सागर के शोषक पोषक, भव्य जनों के तुम्हें नमन ॥२६॥

अन्वयः

नाथ ! त्रिभुवनार्तिहराय तुभ्यम् नम क्षितितलामलभूषणाय तुभ्यम् नम त्रिजगत परमेश्वराय तुभ्यम् नम जिन ! भवोदधिशोषणाय तुभ्यम् नमः

शब्दार्थ

नाथ !—हे नाथ ।

त्रिभुवनार्तिहराय—तीनो लोको की पीडा-व्यथा-वेदना-कष्ट को हरण करने वाले ।

विशेषार्थ —त्रि—तीन ऐसे भुवन—जगत का समुदाय, वही हुआ त्रिभुवन, उसकी आर्ति—पीडा को हर—हरण करने वाले, यही हुए त्रिभुवनार्तिहर "त्रयाणाम् भुवनानाम् समाहार, त्रिभुवन" यह पद नम के योग मे चतुर्थी के एक वचन मे आया है ।

तुभ्यम्—तुम्हे-तुमको ।

नम —नमस्कार हो, (नम-नमस्कारोऽस्तु) अव्यय पद ।

क्षितितलामल भूषणाय—पृथ्वी तल के निर्मल-उज्ज्वल अलकार रूप ।

विशेषार्थ —क्षिति—पृथ्वी, तल-रसातल (पाताल), अमल—(अमर)-स्वर्गलोक वही हुआ क्षितितलामल । उनके भूषण—अलकार (मडन) वही हुआ क्षितितलामलभूषण, यह पद भी नम के योग मे चतुर्थी के एक वचन मे आया है ।

तुभ्यम्—तुम्हारे लिए ।

नम —नमस्कार हो ।

त्रिजगत —तीन जगत के (षष्ठी एक वचन) ।

परमेश्वराय—परम पद मे स्थित अरहत प्रभु ।

विशेषार्थ —परम—श्रेष्ठ ऐसा ईश्वर—नाथ वही हुआ परमेश्वर । यह पद भी नम के योग मे चतुर्थी के एक वचन मे आया है ।

तुभ्यम्—तुम्हारे लिए ।

नम —नमस्कार हो ।

जिन—जिनेश्वर ।

विशेषार्थ —'जयतीति जिन' अर्थात् जिन्होने मिथ्यात्व मोह, राग, द्वेष इन्द्रिय आदि पर विजय प्राप्त करली है, वे ही जिन कहलाते है ।

भवोदधिशोषणाय—भवरूपी समुद्र का शोषण करने वाले ।

विशेषार्थ —भव—ससार उसका उदधि—समुद्र वही हुआ भवोदधि—

अथवा आधि—मानसिक पीड़ा, व्याधि शारीरिक सताप, उपाधि-कर्मजन्य वेदना और जन्म-मरण, मोह-राग-द्वेष आदि विभावो को भी सासारिक कष्टों मे ही गिनाया जाता है ?

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि जब वीतराग देव पर के किंचित् मात्र भी कर्ता-हर्ता-धर्ता नही हैं तब कैसे वे पर की पीडाओ को हरण करने वाले सिद्ध होते हैं।

शुद्ध निश्चयनय इसका स्पष्ट उत्तर देता है कि जब वीतराग सन्मुख भक्तजीव अपने दासोऽहं और सोऽहं के सोपानो को पार करके अपने मे मात्र आत्मोऽहं या सिद्धोऽहं की अनुभूति प्रकट करता है तब परमात्मा और आत्मा अभेद हो जाते हैं। उस अभेदता मे स्वाभाविक आत्मशुद्धि होती है। उस आत्मशुद्धि मे सासारिक सताप, पाप और दु खों-कष्टो-पीडाओ-व्यथाओ-वेदनाओ का नाम निशान नही रहता।

'क्षितितलामल भूषण' सबोधन द्वारा वे जिनेश्वर देव को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि जब आप ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक के प्राणियो मे शिरोमणि हैं अर्थात् त्रैलोक्य मडन है तब अवनीतल के श‍ृङ्गार तो स्वयमेव सिद्ध हुए। इस प्रकार आप रत्नत्रय की सुरभित माला, अनन्त चतुष्टय के मणि मुकुट, नव केवल लब्धियो के अलकारो से सुशोभित हो रहे हैं।

आप तीनो जगत के सर्वोत्कृष्ट नाथ होने से तथा समवशरणादिक विभूतियो से सयुक्त होने से परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर है अतएव आपको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हू।

हे जिनेश्वर! आपने मोह-राग-द्वेष-कषाय और इन्द्रियादिको पर विजय प्राप्त की है अत आप नमस्करणीय है।

अन्त के चतुर्थ पद में जिन भवोदधि शोषक के रूप मे भगवान की स्तुति करते हुए आचार्य श्री कहते ह कि अगस्त्य ऋषि ने समुद्र के सम्पूर्ण जल को पी डाला था—यह एक जनश्रुति है परन्तु आपने तो उस जनश्रुति को प्रत्यक्ष करके ही दिखला दिया अर्थात् ससार रूपी समुद्र का शोषण आपने प्रतापवत ज्ञान-मार्तण्ड से कर लिया। हे प्रभो! आपके लिए तो ससार नि शेष हो ही गया परन्तु आपके भक्तो को भी यह ससार "ससार वारिधिरय चुलुक प्रमाण" हो गया। अर्थात् समुद्र चुल्लू भर पानी के समान अल्प रह गया। इस भाँति उपरोक्त विशेषणो से युक्त अरहत देव बारम्बार नमस्कार करने के योग्य है।

O God Jinendra ! O Lord ! you are the destroyer of the miseries of all the three worlds, therefore I bow down to you I offer my salute to you who is like a pure matchless ornament, you are the Lord of all the teree worlds you can dry up the ocean of the world 26

× × ×

O Lord ! Bow to you who are the destroyer of the pains and sufferings of this threefold world, bow to you, the pure and genuine ornament on the face of the earth, bow to you the paramount lord of (this) creation and O Jina ! Bow to you, the desi of the ocean (of this worldly existence) 26

× × ×

मूल श्लोक (शत्रून्मूलक)

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्त - विविधाश्रय - जात - गर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

दोषों से वंचित रहने का कारण

गुण समूह एकत्रित होकर, तुझ मे यदि पा चुके प्रवेश।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हो, अन्य आश्रय उन्हें जिनेश ॥
देव कहे जाने वालो से, आश्रित होकर गर्वित दोष।
तेरी ओर न झाँक सके वे, स्वप्न मात्र मे हे गुण-कोष ॥२७॥

अन्वयः

मुनीश ! यदि नाम निरवकाशतया अशेषै गुणै संश्रित अत्र क विस्मय उपात्तविविधाश्रयजातगर्वै दोषै कदाचित् अपि स्वप्नान्तरे अपि न ईक्षित असि (अत्रापि को विस्मय ?) ।

शब्दार्थ

मुनीश—हे मुनीश्वर !

विशेषार्थ—मुनीनाम् ईश्वर मुनीश्वर (सबोधन मे प्रयुक्त)

यदि नाम—हमे ऐसा लगता है कि ।

विशेषार्थ—यदि से अङ्गीकार और नाम से आमन्त्रण (सबोधन) का कोमल भाव व्यक्त होता है। ये दोनो पद साथ मे आने से 'अस्माभिरङ्गीकृतोऽयमर्थ' (भक्तामर टीका) हमे ऐसा लगता है कि यही अर्थ प्रतिध्वनित होता है ।

निरवकाशतया—सघनता से—ठसाठस-अन्यत्र आश्रय न पा सकने के कारण अथवा दूसरे स्थान पर आश्रय न मिलने के कारण ।

विशेषार्थ—निरवकाश—जिसमे अवकाश अथवा गुजायश न हो। [निरवकाश का जो भाव] वह निरवकाशता अर्थात् अवकाश हीनता का भाव—स्थान हीनता का भाव। तात्पर्य यह कि—अन्य स्थान मे आश्रय न मिलने के कारण उसकी तृतीया एक वचन सो हुआ **निरवकाशतया** ।

अशेषै.—गुणै—समग्र गुणो से, (तृतीयान्त बहु वचन)

विशेषार्थ—**अशेष**—जिसमे शेष नही—कुछ भी बाकी नही, वह **अशेष**—समग्र ऐसे **गुणै**—गुणो से ।

त्व सश्रित—आप भले प्रकार आश्रय प्राप्त किये गये हो ।

अत्र को विस्मय—इसमे क्या आश्चर्य है ?

उपात्तविविधाश्रयजातगर्वै—अनेक स्थानो पर आश्रय प्राप्त करने से जिनको गर्व (घमड) हो रहा है ऐसे वे ।

विशेषार्थ—**उपात्त**—प्राप्त-ग्रहीत किया है **विविध**—अनेक प्रकार का **आश्रय**—स्थान जिसने वही हुआ **उपात्तविविधाश्रय** उनके द्वारा **जात**—जन्म लिया है—उत्पन्न हुआ है जिनको **गर्व**—अभिमान-घमड सो हुआ **उपात्त विविधाश्रयजातगर्व** उनसे यह पद **दोषै** का विशेषण होने से तृतीया के बहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है ।

दोषै—दोषो से—अवगुणो से (तृतीया बहु वचन)

कदाचित् अपि—कोई भी समय—किसी भी समय ।

स्वप्नान्तरे अपि—स्वप्न प्रति स्वप्नावस्थाओ मे भी । (स्वप्न के भीतर जो स्वप्न आते हैं उन्हे प्रति स्वप्न कहते हैं) ।

न ईक्षित असि—नही देखे गये हो ।

(अत्रापि को विस्मय)—(तो इसमे कौन-सा आश्चर्य है ?) अध्याहार से लिया गया ।

भावार्थ

हे मुनिनाथ !

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भूमण्डल के सम्पूर्ण गुणो ने सघनता से तथा भले प्रकार से जो आपका आश्रय ग्रहण किया है उसका कारण यही है कि उन्हें अन्य आश्रय-स्थल ही प्राप्त नही हुआ । इसलिए इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं कि आप मे गुण ही गुण विद्यमान हैं, दोष या अवगुण एक भी नहीं ।

इसके विपरीत दोषो को—अवगुणों को इस बात का घमड है—अभिमान है कि न सही एक व्यक्ति का आश्रय ! हमे तो विविध देवो के आश्रय-स्थल अनायास ही प्राप्त हैं अतएव उन दोषो ने आश्रय पाने के लिए आपकी ओर भूल कर भी, स्वप्नो मे भी, कभी भी देखने की इच्छा नही की । फल स्वरूप अन्य देवो मे गुण-दोष विद्यमान रहे परन्तु आप केवल गुणो के ही भडार रहे ।

विवेचन

भक्तामर के सत्ताईसवें श्लोक मे वीतराग अरहत तीर्थङ्कर भगवान की निर्दोषिता एव निर्मलता निरूपित करने के लिए तथा अनन्त गुणो का सद्भाव सिद्ध करने के लिए आचार्यश्री ने एक सुन्दर रूपक प्रस्तुत किया है —

इस छद मे जहा भगवान के गुणो का यशोगान अथवा कीर्तन किया गया है वहा अन्य सरागी-सदोषी देवो का दोषावलोकन भी युगपत् हुआ है । इस प्रकार सच्चे और झूठे देवो के अन्तर को तुलनात्मक ढग से सकारण प्रस्तुत किया गया है । वे कहते है कि—

हे गुण रत्नाकर ! आप मे जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख वीर्य आदि अनन्त गुणों का सद्भाव है तथा मोह-राग-द्वेष-विषय-कषाय आदि वैभाविक दोषो का अत्यन्ताभाव है उसका एक मात्र कारण मेरी समझ मे अच्छी तरह से

आ गया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तीनों लोको मे जितने भी सद्गुण विद्यमान हैं वे आश्रय पाने के लिए ठौर-ठौर भटके परन्तु इस दोषी-विकारी संसार मे भला गुणो को कौन ठिकाना देता, आश्रय देता ? मिथ्यात्व से भरे हुए संसार मे भला सम्यक्त्वादिक गुणो को कभी आश्रय मिला भी है ? अर्थात् नही। इस भाँति समग्र गुणो को केवल एक ही आश्रय मिला जिसके कि स्थल मात्र आप ही थे। इसीलिए वे ठसाठस, सघन रूप से आपके आत्म प्रदेशो मे एकमेक हो गए। सामान्य और विशेष गुणो ने आपकी आत्मा के साथ तादात्म्य सबध स्थापित कर लिया। इसके विपरीत जितने भी दोष अथवा अवगुण तीनो लोको मे विद्यमान हैं उन्हे इस बात का अभिमान है कि हमको अनेको सरागी देव आश्रय दे रहे हैं। एक वीतराग देव ने आश्रय न दिया तो इसमे आश्चर्य क्या है ? तात्पर्य यह कि समग्र गुण अशरण होकर आपकी शरण मे आये तथा समग्र दोष अनेको ठिकाने पाकर विविध वेष-धारी, विविध नामधारी तथाकथित देवो मे समा गये। यहाँ यह स्मरणीय है कि अरहत प्रभु अठारह दोषो से रहित होते हैं जब कि अन्यान्य देव विविध दोषो से युक्त होते हैं।

बहुधा जीव का उपचेतन मन सुषुप्तावस्था मे अपराध कर बैठता है चाहे वह कितना ही बडा सन्त महन्त हो परन्तु जिनेन्द्रदेव का चैतन्य इतना जागृत होता है कि वे एक भी क्षण दोषो को प्राप्त नही होते अर्थात् स्वप्न मे भी दोष उनकी ओर नहीं झाकते, नही देखते।

No wonder that, after finding space nowhere, You have, O Great Sage !, been resorted to by all the excellenes, and in dreams even Thou art never looked at by blemishes, which, having obtained many resorts have become inflated with pride 27

× × ×

Oh ! best among the sages ! It is no strange if all of the merits have taken shelter in you in densely clustered numbers and if the faults being puffed up with pride at having obtained the patronages of other Gods, did not cast a glance even in dream 27

× × ×

मूल श्लोक (सर्व मनोरथ प्रपूरक)

उच्चैर - शोकतरु - सश्रित - मुन्मयूख—
माभाति रूपममल भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त - तमो - वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर पार्श्ववर्ति ॥२८॥

अशोक प्रातिहार्य
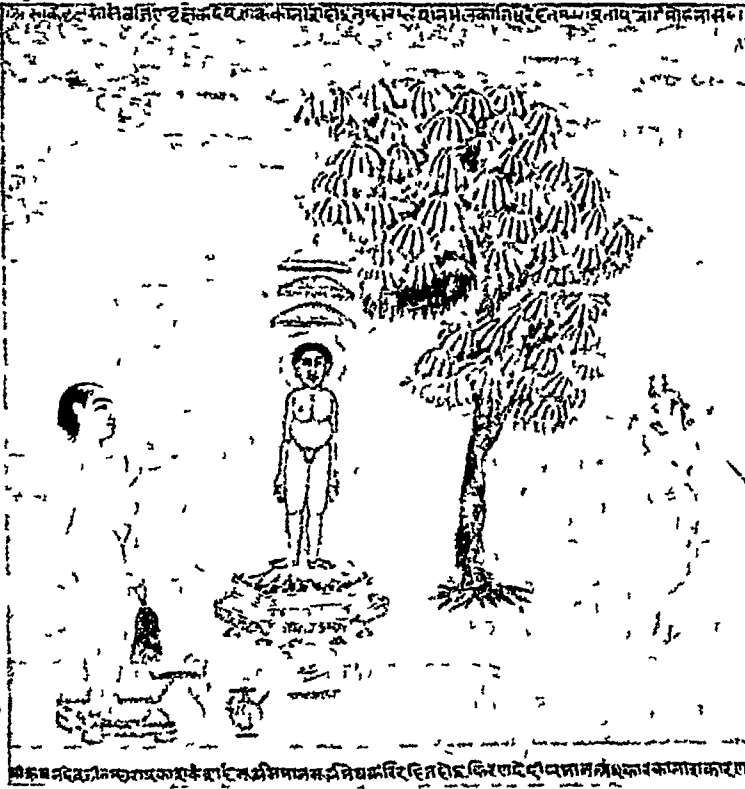
उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला ।
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर छवि वाला ॥
वितरण किरण निकर तमहारक, दिनकर घन के अधिक समीप ।
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीराजन करता ले दीप ॥२८॥

अन्वय.

उच्चैः अशोकतरुसंश्रितम् उन्मयूखम् भवतः अमलम् रूपम् स्पष्टोल्लसत्किरणम् अस्ततमोवितानम् पयोधर पार्श्ववर्ति रवेः बिम्बम् इव नितान्तम् आभाति ।

शब्दार्थ

उच्चैः—अत्युन्नत-अतिशय ऊँचे-खूब ऊँचे ।

अशोकतरुसंश्रितम्—अशोक वृक्ष के आश्रय में विराजमान-विद्यमान ।

विशेषार्थ :—न विद्यते शोको यस्मिन् पार्श्वस्थिते इत्यशोकः अर्थात् जिसके पास में ठहरने से शोक नहीं रहता, वह अशोक है और ऐसा तरु—वृक्ष वही हुआ अशोकतरु उसने संश्रितम्-आश्रय लिए हुए स्थित अर्थात् विराजमान वही हुआ अशोकतरुसंश्रितम् ।

उन्मयूखम्—ऊपर की ओर देदीप्यमान किरणों को बिखेरने वाला ऐसा ।

विशेषार्थ :—(१) उत्-उल्लसिता मयूखाः-किरणा यस्य यस्माद् वा तद् उन्मयूखं अर्थात् उल्लसित हैं किरणें जिसकी अथवा जिसमें । वह हुआ उन्मयूख (२) ऊर्ध्वं मयूखाः यस्य तत् उन्मयूख अर्थात् ऊपर की ओर हैं किरणें जिसकी वही हुआ उन्मयूखं ।

भवतः—आपका ।

अमलम्-रूपम्—निर्मल रूप, विमलरूप, उज्ज्वल रूप ।

विशेषार्थ :—निर्गता मलाः यस्मात् तत् निर्मल अर्थात् निकल गया है मल जिसमें से वही हुआ निर्मल अर्थात् अठारह दोषों से रहित अथवा द्रव्य कर्म और भाव कर्म कलंकों से मुक्त ऐसा ।

स्पष्टोल्लसत् किरणम्—स्पष्ट रूप से ऊपर की ओर चमकती-दमकती हुई दीप्तिमान किरणों वाला ।

विशेषार्थ :—स्पष्टा प्रकटा उल्लसन्त्य उदञ्चन्त किरणा यस्य यस्मात् वा तद् अर्थात् स्पष्ट रूप से ऊपर की ओर फैल रही हैं किरणें जिसकी या जिसमें से वही हुआ स्पष्टोल्लसत्किरण । यह पद बिम्ब का विशेषण होने से प्रथमा के एक वचन में प्रयुक्त हुआ है ।

अस्ततमोवितानम्—नष्ट कर दिया है समस्त अन्धकार के जाल को जिसने ऐसे ।

विशेषार्थ :—अस्त-नष्ट किया गया है जिसके द्वारा तम—अन्धकार उसका

वितान-जाल, समूह, मडप वही हुआ अस्ततमोवितान। यह पद भी उपरोक्त पद का विशेषण होने से प्रथमा के एक वचन मे प्रयुक्त हुआ है।

पयोधर पार्श्ववर्ति—सघन बादलों के समीप रहने वाले।

विशेषार्थ—पयोधरतीति पयोधर—जलधर' अर्थात् बादल तस्य पार्श्वे वर्तते इति पयोधर पार्श्ववर्ति। अर्थात् उसके पास मे विद्यमान।

रवे बिम्बम्—सूर्य का बिम्ब। (बिम्ब प्रथमा का एक वचन)।

इव—(के) समान (के) सदृश।

नितान्तम्—अत्यधिकता से।

आभाति—शोभित होता है।

भावार्थ

हे विगतशोक रूपाधिपते!

जिस भाँति सूर्य का प्रतिबिम्ब अपनी किरणो को स्पष्ट रूप से ऊपर फेंकता हुआ श्यामल सघन बादलो के बीच में शोभायमान होता है, उसी भाँति आपकी पावन दिव्य-देह भी अपनी दैदीप्यमान रश्मियों को ऊपर की ओर बिखेरती हुई हरित अशोक वृक्ष के नीचे शोभा को प्राप्त हो रही है।

इस श्लोक मे अशोक वृक्ष तल स्थित तीर्थङ्कर भगवत के प्रथम प्रातिहार्य का वर्णन आलकारिक शैली मे किया गया है।

विवेचन

भक्ति मे तल्लीन मुनिवर्य्य मानतुग जी श्रीजिनेश्वरदेव के आत्मीक स्वाभाविक गुणो का वर्णन निश्चय नय से करने के पश्चात् पुन उनके बाह्य रूप-सौन्दर्य की स्तुति अलकारिक शैली मे कर रहे हैं। इस श्लोक से प्रारभ करके क्रमश आठ श्लोको में तीर्थङ्कर सबधी अष्ट प्रातिहार्यों का वर्णन किया जाएगा।

प्रातिहार्य किसे कहते है? इन्द्र प्रतिहार जिनका निर्माता है। अथवा विशेष महिमा-बोधक चिह्न को प्रातिहार्य कहते हैं। अर्हंत के समवशरण मे ऐसे महिमा बोधक चिह्न आठ होते हैं। समवशरण की रचना के साथ एक पार्थिव उत्तुग-उन्नत-ललाम-श्यामल-हरित एव पीत वर्ण वाले देवोपनीत अशोक वृक्ष का निर्माण भी किया जाता है। जिसके तल भाग मे स्थित मणि-मय सिंहासन पर श्री जिनेन्द्रदेव शोभासीन होते है। इस वृक्ष का नाम अशोक क्यों पड़ा? क्या यह कोई वृक्ष विशेष का नाम है? उत्तर स्वरूप कहा जा

सकता है कि जिसके समीप स्थित होने से शोक-सताप दूर हो जाता है उसे ही अशोक वृक्ष कहते हैं। यहा प्रश्न यह उठता है कि शोक सताप को दूर करने का श्रेय तो इस भाँति एक पार्थिव जड वस्तु को मिल गया, परन्तु यह बात नही। क्योकि जिस वृक्ष के नीचे स्वय त्रिलोकीनाथ अर्हत देव विराजमान हो वह वृक्ष तो क्या परन्तु समस्त पार्श्ववर्ती जीव भी शोक रहित हो जाते हैं। जब मुनियो की उपस्थिति से उद्यान के शुष्क लता-कुँज हरे-भरे होकर बे-मौसम भी फलो से लद जाते हैं, तब त्रैलोक्यनाथ तीर्थकर अरहत देव के सानिध्य से वृक्षादिक स्थावर भी यदि शोक सताप दूर करने मे समर्थ हो जावें तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नही।

यह उन्नत अशोक वृक्ष तीर्थङ्कर-विशेषो की अवगाहना के अनुपात से बारह गुणा ऊँचा होता है। इसीलिए आचार्य ने श्लोक मे उच्चै शब्द का प्रयोग किया है।

समवशरण (प्रवचन सभा) मे अशोक वृक्ष के तले विराजमान अलौकिक श्री-शोभा सम्पन्न जिनेश्वरदेव अपने स्वर्णिम शरीर से, दैदीप्यमान किरणो को ऊपर की ओर बिखेरते हुए किस प्रकार शोभायमान हैं ? उसके रूपक की उत्प्रेक्षा करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि जिस प्रकार से सघन मेघ मण्डल के मध्य अन्धकार को नष्ट करने वाला सहस्र रश्मियो से चमकता हुआ सूर्य का बिम्ब शोभायमान होता है उसी प्रकार से आपकी दिव्य देह भी कीर्तिरश्मियो को ऊपर की ओर फेकती हुई, अशोक वृक्ष के पार्श्व मे शोभित हो रही है।

यहाँ मेघ मडल की उपमा अशोक वृक्ष से तथा अरहतप्रभु की उपमा तेजस्वी मार्तण्ड से की गई है।

Thy shining form the rays of which go upwards, and which is really very much lustrous and dispels the expanse of darkness, looks excellently beautiful under the Ashoka-tree the orb of the sun by the side of clouds 28

× × ×

While sitting under the tall Ashoka tree, your white body giving out rays of light, appears like the rise of the sun which, being in close proximity of the clouds and despeling the great expance of dark, shines with brilliant rays of immense radiance 28

× × ×

मूलश्लोक (नेत्रपीडा विनाशक)

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद् - विलसदंशुलतावितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥

सिंहासन-प्रातिहार्य
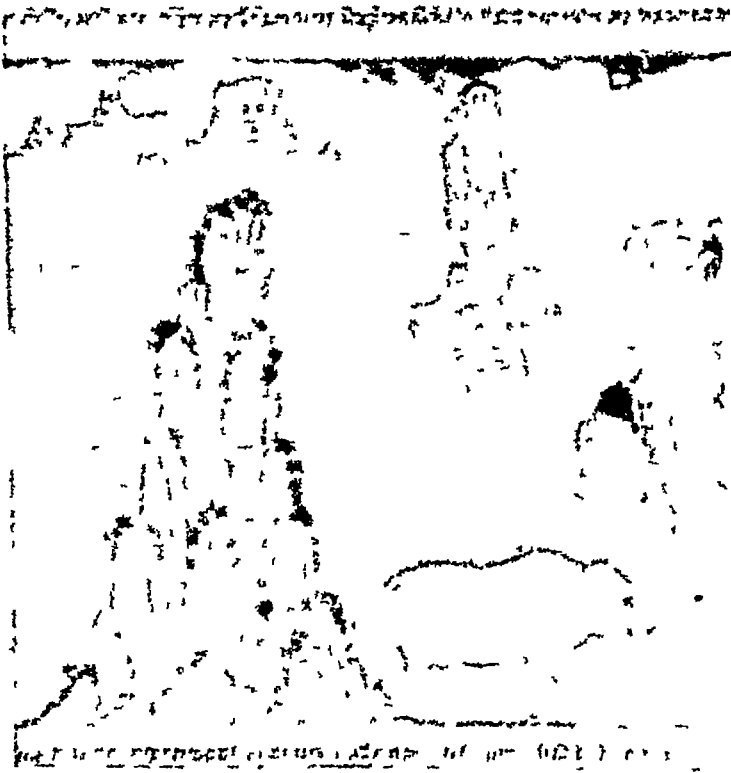
मणि-मुक्ता किरणों से चित्रित, अद्भुत शोभित सिंहासन।
कान्तिमान् कंचन-सा दिखता, जिस पर तव कमनीय वदन॥
उदयाचल के तुङ्ग शिखर से, मानो सहस्र रश्मि वाला।
किरण-जाल फैला कर निकला, हो करने को उजियाला ॥२९॥

अन्वय.

मणिमयूखशिखाविचित्रे सिंहासने कनकावदातम् तव वपु तुङ्गोदयाद्रि गिरसि वियद्विलसदंशुलतावितानम् सहस्ररश्मे विम्वम् इव विभ्राजते।

शब्दार्थ

मणिमयूखशिखाविचित्रे—मणियो की किरणो के अग्रभाग से विविध रग वाले—चित्र विचित्र।

विशेषार्थ —मणि—रत्न, उनकी मयूख—किरण, उसकी शिखा—उसका अग्रभाग, उससे विचित्र—चित्र विचित्र-विविध रग का, वही हुआ मणिमयूखशिखा-विचित्र। यह पद सिंहानने का विशेषण होने से सप्तमी के एक वचन मे आया है

सिंहासने—सिंह पीठासन पर—सिंहासन पर।

कनकावदातम्—स्वर्ण जैसा सुन्दर—सोने के समान मनोज्ञ—अथवा सो॰ के समान स्वच्छ और धवल-हेम गौर।

विशेषार्थ —कनक—स्वर्ण, उसके समान अवदात—सुन्दर, मनोज मनभावन वह हुआ कनकावदात। यह पद वपु का विशेषण होने से प्रथमा के एक वचन मे आया है।

तव वपु —तुम्हारा शरीर—आपकी दिव्य देह।

तुङ्गोदयाद्रिशिरसि—उन्नत उदयाचल के शिखर पर।

विशेषार्थ —तुङ्ग—उन्नत-उच्च, ऐसा उदयाद्रि—उदयाचल उसका शिरस शिखर, वह हुआ तुङ्गोदयाद्रिशिरस्—यह पद सप्तमी के एक वचन मे है।

वियद्विलसदंशुलतावितानम्—जिसकी किरणो का वल्लरि-विस्तार आकाश मे शोभायमान हो रहा है—ऐसे

विशेषार्थ —वियत्—आकाश, उसमे विलसत्—शोभायमान हो रहा है जिनके अंशु-किरणो का लता वितान—वल्लरि-विस्तार, वही हुआ वियदविलस दंशुलतावितान।

सहस्ररश्मे —सूर्य के-दिनकर के।

विम्वम् इव —बिम्ब के समान-मंडल के समान।

विभ्राजते—सुशोभित हो रहा है—अतिशय शोभित होता है।

भावार्थ

हे सिंहपीठ-आसीन-प्रभो !

गगन-चुम्बी उदयाचल पर्वत की चोटी पर उगता हुआ सूर्य अपनी हर

हजार किरण रूपी लताओं का मण्डप-चदोवा बनाता हुआ जिस प्रकार अत्यन्त शोभायमान होता है, उसी प्रकार आपकी कचन-काया भी उन रत्नजटित सिंहासन पर अत्यधिक शालीनता से दीप्तिवन्त हो रही है जो जडे हुए मणियो की किरणो के अग्रभाग से विविध रगो से चित्र-विचित्र है।

इस श्लोक मे दूसरे सिंहासन नाम के प्रातिहार्य का वर्णन है।

विवेचन

मुनिवर मानतुग जी के भाव-पटल पर मानो चतुर्थ कालीन समवशरण का साक्षात् दृश्य प्रतिबिम्बित हो रहा है। तभी तो वे भाव-विभोर होकर कहीं तो अरहतदेव के अलौकिक गुण-गौरव का यशोगान करते है और कहीं उनके अनुपम रूप-सौन्दर्य का विविध लौकिक उपमानो के माध्यम से। वे उनकी अलौकिकता का माप करने का प्रयास अलंकारिक काव्यशैली मे कर रहे है।

समवशरण मे अन्तरीक्ष कमलासन पर विराजमान तीर्थङ्कर देव अष्ट प्रातिहार्यों से युक्त होते है। अन्तश्चक्षुओं द्वारा देखे गए उसी मनभावन दृश्य को स्तुतिकार वाणी के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते है कि हे आदीश्वर देव! आपकी स्वर्णिम कचन काया उस दिव्य सिंहासन पर कितनी देदीप्यमान हो रही है जो जडे हुए मणिमुक्ताओ की चमचमाती किरणो से दमक रहा है।

इसी विषय को एक सुन्दर उत्प्रेक्षा रूपक द्वारा और भी अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि मानो गगनचुम्बी उदयाचल पर्वत पर हजार-हजार किरणो वाले प्रभाकर के तेजस्वी बिम्ब का उदय हो रहा हो। अर्थात्-यदि सिंहासन उदयाचल पर्वत है तो आप की दिव्य-देह तेजस्वी मार्तण्ड।

सिंहासन का वास्तविक अर्थ उत्कृष्ट आसन है। सिंहाकृति से युक्त अथवा सिंह वाहन वाले आसन से यहा कोई तात्पर्य नहीं है। वस्तुत अरहतदेव धर्म-सभा की गधकुटी मे उत्कृष्ट पुण्यासन पर विराजमान होते हुए भी उससे अन्तरीक्ष (निर्लिप्त) रहते हैं। यद्यपि निश्चय से तो वे अपनी आत्मा के परमपद मे ही प्रतिष्ठित है अत परमेष्ठी अरहत कहलाते हैं तथापि व्यवहार मे उनकी परम-पद-प्रतिष्ठा का सकेत बाह्य विभूतियो से मिलता है। जिसका एक प्रतीक सिंहासन भी है। तो क्या रत्नजटित चित्र-विचित्र सिंहासन पर आसीन होने से ही आप इतने शोभाशाली दिख रहे है? नहीं, प्रत्युत यह देदीप्यमान सिंहासन ही आपकी कचन काया के विराजमान होने से और भी

अधिक दीप्तिवत हो गया है। अर्थात् हे जितेन्द्रदेव ! उत्कृष्ट आसन पर विराजमान होने से आपकी शोभा नही प्रत्युत आपको पाकर सिंहासन भी उत्कृष्ट आसन वन गया है। आप के परम पद पर प्रतिष्ठित होने से ही हे परमेष्ठिन् ! सिंहासन को भी प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है।

Thy gold-lustred body shines verily on the throne like the disc of the sun on the summit which is varigated with the mass of germs, of the high Rising mountain, the rays of which (disc), spreading in the firmament like a creeper, look (exceedingly) graceful 29

× × ×

The gold-like brilliant body of yours, while seated on the throne, diversified by the gleaming rays of jewels, resemble the sun whose conopy-like radient rays in the sky shine on the high peak of the estern mountain 29

× × ×

मूल-श्लोक (शत्रु-स्तम्भक)

कुन्दावदात - चलचामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क - शुचिनिर्झर - वारिधार—
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

चँवर-प्रातिहार्य

ढुरते सुन्दर चँवर विमल अति, नवल कुंद के पुष्प समान।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल सी आभावान॥
कनकाचल के तुङ्ग शृंग से, झर झर झरता है निर्झर।
चन्द्र-प्रभा सम उछल रही हो, मानों उसके ही तट पर॥३०॥

अन्वयः

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभम्—कुन्द नामक सुमन के समान अत्यन्त धवल-ढुरते हुए चांवरो के कारण वृद्धिगत हुई है सुन्दर-मन भावन शोभा जिसकी—ऐसा ।

विशेषार्थ—**कुन्द**—मचकुन्द पुष्प या मोगरा, उसके समान **अवदात**—नितान्त धवल-उज्ज्वल, और **चल**—चलायमान-ढुरते हुए (व्यजन सदृश) ऐसे **चामर**—चँवर, उससे चारु—सुन्दर, ऐसा **शोभ**—शोभा वाला वही हुआ **कुन्दावदातचलचामरचारुशोभ** (प्रथमान्त एक वचन)

कलधौतकान्तम्—स्वर्ण के समान कान्ति वाला ।

विशेषार्थ—**कलधौत**—स्वर्ण, उसके समान **कान्त**—कान्ति वाला, वही हुआ **कलधौतकान्त** (प्रथमान्त एक वचन)

तव वपु—आपका शरीर ।

उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधारम्—उदीयमान चन्द्रमा के समान धवल-उज्वल-श्वेत-शुभ्र जलप्रपात की धारा जहा गिर रही है ऐसे ।

विशेषार्थ—**उद्यत**—उदय होता हुआ **शशाङ्क**—चन्द्रमा, उसके समान **शुचि**—शुभ्र-श्वेत, ऐसा **निर्झर**—झरना अथवा जलप्रपात का वारि—जल उसकी धार-धारा के समान वही हुआ **उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार**

सुरगिरे—सुमेरु पर्वत के ।

शातकौम्भम्—स्वर्णमयी-स्वर्णिम् ।

विशेषार्थ—**शातकुम्भ**—स्वर्ण, उससे हुआ है निर्माण जिसका वही हुआ **शातकौम्भ** ।

उच्चैस्तटम्—उन्नत तटो के समान ।

विभ्राजते—शोभा देता है ।

भावार्थ

हे शुभ्रकान्त चामराधिपते !

समवशरण मे यक्षेन्द्रो द्वारा जब एक साथ चौंसठ चँवर व्यजन के समान आपके ऊपर आजू-बाजू से ढोरे जाते हैं तब उनकी श्वेत-शुभ्र-धवल-उज्ज्वल कान्ति से आपके सौम्य-सुन्दर शरीर की शोभा और भी अधिक बढ जाती है। स्वर्णिम् कान्तिवाली आपकी दिव्यदेह, उन कुद पुष्प के समान धवल और चलायमान-ढुरते हुए—ऊपर उठते और नीचे गिरते हुए, चँवरो के बीच मे वैसी ही मुन्दर प्रतीत होती है जैसे कि कनकाचल (सुमेरु) पवत के उन्नत

तट पर गिरता हुआ जल-प्रपात ! उस जल-प्रपात की धवल-धारा उदीयमान चन्द्रमा की कान्ति के ही समान शुभ्र है।

इस रूपक अलकार मे स्वर्णिम सुमेरु सदृश तो तीर्थंङ्कर प्रभु की दिव्य देह है और जलप्रपात के प्रतीक स्वरूप दोलायमान शुभ्र चँवर हैं।

विवेचन

निश्चय से एक तो तीर्थङ्कर प्रभु जन्मजात ही अतुल वल एव सौन्दर्य के धनी होते हैं। फिर तप और उत्कृष्ट ध्यान के फल स्वरूप उनकी हेमाभ देह तप्त स्वर्ण के सदृश अत्यन्त कान्तिमान् होकर दमकती है। वे तपोपुज प्रभु कैवल्यज्ञान से मडित होने के कारण समवशरण (धर्म-सभा) मे अत्यधिक सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। अशोक वृक्ष के तले सिहासनस्थ श्री जिनेन्द्रदेव के ऊपर दोनो वाजुओ से यक्षगण प्रतिहारी वनकर चौंसठ चँवर ऊपर नीचे निरन्तर ढुरा रहे है। जैसे कि एक सामान्य नृपति के सेवक लौकिक व्यजनो से उनकी सेवा करते हैं। उन चँवरो का वर्ण (रग) मचकुन्द-मोगरा पुष्प के समान अत्यन्त धवल और शुभ्र है !

भक्त हृदय के भाव-पटल पर समवशरण का अद्वितीय अलौकिक सुहावना दृश्य चित्रित है। उस अनुपम सौन्दर्य की उपमा वे प्रकृति मे विखरे हुए नैसर्गिक सुन्दरता मे कर रहे है—

जव एक उन्नत उत्तुग पवत से गिरती हुई जल-प्रपात की दुग्ध धवल धारा चन्द्र-ज्योत्स्ना सी सुन्दर प्रतीत होती है और उसका प्राकृतिक सौन्दर्य शुष्क हृदय को भी रस प्लावित कर देता है तव स्वर्णिम सुमेरु पर्वत से निगत निर्झर वस्तुत कितना रमणीय और नयनाभिराम प्रतीत नही होता होगा ?

जव नैसर्गिक-प्राकृतिक सौन्दर्य मन को इतना मोहित करने वाला होता है तव आध्यात्मिक सौन्दर्य के एकाधिपति की परमौदारिक दिव्यदेह जो कि स्वर्णिम सुमेरु पर्वत के समान अचल और दैदीप्यमान है और जिस पर जल-प्रपाल के समान चौंसठ चमर निरन्तर ऊपर नीचे ढोरे जा रहे हैं उसकी शोभा का तो फिर कहना ही क्या है ?

निरन्तर ऊँचे-नीचे ढुरते हुए चँवर मानो विश्व को यह वतला रहे है कि जो भगवान के पावन चरणो मे आकर गिरेंगे वे नियम से ऊपर उठेंगे ही अर्थात् उनका उद्धार अवश्यभावी है।

मूल श्लोक (राज्य सम्मान दायक)

छत्रत्रय तव विभाति शशाङ्ककान्त—
मुच्चै स्थित स्थगितभानुकरप्रतापम्[1] ।
मुक्ताफल - प्रकर - जाल - विवृद्ध-शोभ,
प्रख्यापयत् त्रिजगत परमेश्वरत्वम् ।।३१।।

छत्रत्रय-प्रातिहार्य

चन्द्र-प्रभा सम झल्लरियों से, मणि-मुक्ता मय अति कमनीय ।
दीप्तिमान् शोभित होते हैं, सिर पर छत्रत्रय भवदीय ।।
ऊपर रह कर सूर्य-रश्मि का, रोक रहे हैं प्रखर-प्रताप ।
मानो वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप ।।३१।।

---

१ "प्रभावम्" भी पाठ है ।

अन्वय

शशाङ्ककान्तम् मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभम् तव उच्चैः स्थितम् स्थगितभानुकरप्रतापम् छत्रत्रयम् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् प्रख्यापयत् विभाति।

शब्दार्थ

भावार्थ

हे छत्रत्रयाधिपते !

आपके शीर्ष पर तीन छत्र क्रमश एक के ऊपर एक, छोटे-बडे लटके हुए शोभा दे रहे हैं। इनकी कान्ति चन्द्रमा के समान सुन्दर है। छत्रत्रयो के चारों ओर जो मणिमुक्तामय झालरें बुनी हुई हैं उनसे उनकी शोभा और भी अधिक बढ गई है। वे तीनो छत्र सूर्य की प्रखर किरणो से उत्पन्न आतप को रोकते हुए मानो इस तथ्य की प्रसिद्धि कर रहे है कि आप तीनो लोको के परमेश्वर (छत्रपति सम्राट् प्रभु) हैं।

इस श्लोक मे चौथे छत्र प्रतिहार्य का वर्णन है।

विवेचन

लोक मे सामान्य सम्राट् की प्रभुता को वतलाने के लिए प्राय छत्र का उपयोग किया जाता है। यद्यपि छत्र धूप अथवा वर्षा को रोकने के लिए उनके शीर्ष पर नही लगाये जाते तथापि उनके द्वारा सम्राट् अथवा छत्रपतियो का वैभव या ऐश्वर्य अवश्य ही प्रकट होता है।

अष्ट प्रातिहार्यों मे छत्रत्रय का स्थान शास्त्रो मे चौथा निरूपित किया गया है। समवशरण मे विराजमान अरहतदेव के शीर्ष के ऊपर मणिमुक्ताओं की झालरो से जडे हुए क्रमश एक के ऊपर एक, ऐसे तीन छत्र शोभायमान होते हैं जो चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्स्ना से भी अधिक सुन्दर एव शीतल हैं तथा जिन्होंने मार्तण्ड के प्रखर तेज को भी अपनी कान्ति से रोक रखा है। यहाँ पर स्तुतिकार इन तीन छत्रो की अलकारिक उत्प्रेक्षा करते हुए कहते है कि हे जिनेश्वरदेव ! आपके ऊपर जो तीन छत्र स्थित हैं वे यह सूचित करते है कि आप उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक के एकच्छत्र सम्राट् हैं। यहाँ लौकिक ऐश्वर्य से सम्पन्न सामान्य चक्रवर्तियो, सम्राटो तथा इन्द्रादिको से भी अधिक समवशरण स्थित तीर्थङ्करो का वाह्य-वैभव निरूपित किया गया है। वस्तुत नव केवल लब्धियो से युक्त उनका वाह्य-वैभव भी उनकी आन्तरिक रत्नत्रय विभूति की पूर्णता का ही प्रतिफल है।

The three umbrellas charming like the moon, which are held high above Thee, and the beauty of which has been enhanced by the net-work of pearls and which obstructs the heat of the sun's rays, looks very beautiful proclaiming, as it were Thy supreme lordship over all the three worlds 31

Your moonlike silvery three-fold umbrellas which being raised high and greatly beautified by a great number of pearls, keeps off heat of the sunrays Is like an indicative evidence of your paramount supremacy ovar three worlds 31

मूल श्लोक (सम्प्रहणी-सहारक)

गम्भीरतार - रवपूरित - दिग्विभाग—
स्त्रैलोक्यलोक - शुभसङ्गम' - भूतिदक्ष'।
सद्धर्मराजजय - घोषण - घोषक: सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशस: प्रवादी' ॥३२॥

दुन्दुभि-वाद्य प्रातिहार्य
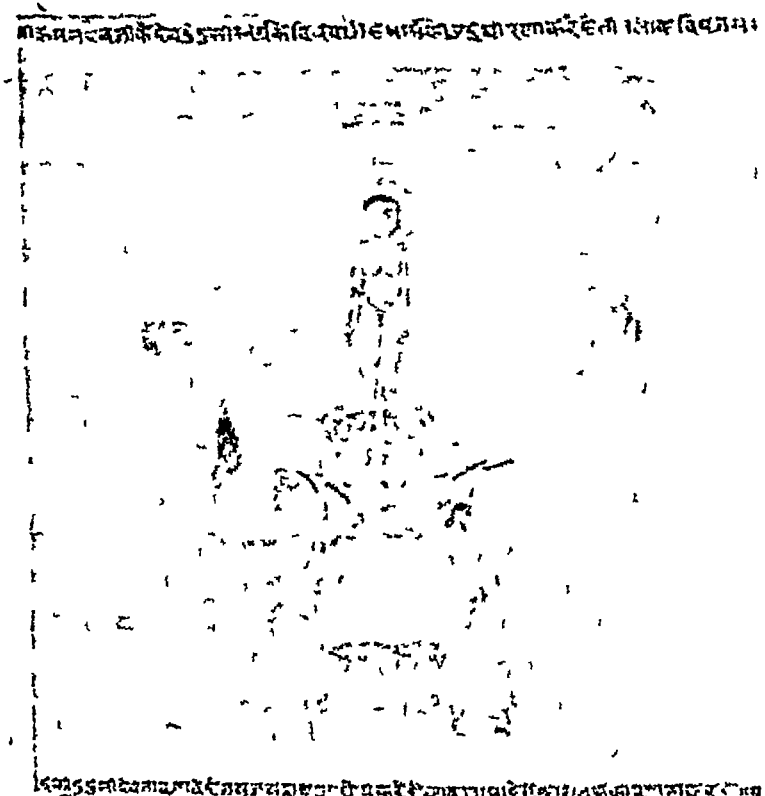
ऊचे स्वर मे करने वाली, सर्व दिशाओ मे गुंजन।
करने वाली तीन लोक के, जन-जन का शुभ-सम्मेलन।
पीट रही है डका "हो-सत् धर्म राज की ही जय-जय।"
इस प्रकार बज रही गगन मे, भेरी तव यश की अक्षय ॥३२॥

---

१ 'मुख'-भी पाठ है। २ 'ध्वजति' भी पाठ है, जिसका अर्थ "बजता है" ऐसा होता है। ३. "प्रवन्दी" भी पाठ है, जिसका अर्थ "वन्दिजन" होता है।

अन्वय

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग त्रैलोक्यलोकशुभसङ्गमभूतिदक्ष सद्धर्मराजजयघोषणघोषक दुन्दुभि ते यशस्त प्रवादी सन् खे ध्वनति ।

शब्दार्थ

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग — गहन-गम्भीर-धीरोदात्त—मधुर ध्वनि ने गुंजायमान कर दिया है दिग्मण्डल जिसने, ऐसा

विशेषार्थ —गम्भीर—गूढ-गहन-गम्भीर, ऐसी तार-रव—धीरोदात्त मधुर ध्वनि (ऊँचे स्वर से स्पष्ट विशद उच्चारण करने वाली आवाज़) उससे पूरित—गुंजित पूर्णतया, गुंजायमान ऐसा दिग्विभाग—दिग्मण्डल, वही हुआ गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग ।

त्रैलोक्यलोकशुभसङ्गमभूतिदक्ष — तीनों लोकों के प्राणियो को सत्समागम (शुभ-सम्मेलन) का वैभव प्राप्त कराने मे समर्थ, ऐसा

विशेषार्थ •— त्रैलोक्य—त्रिभुवन-तीनलोक, उसके, लोक—प्राणियों-निवासियो के, शुभसङ्गम—सत्समागम की भूति—विभूति-वैभव-ऐश्वर्य लुटाने मे, दक्ष —समर्थ-प्रवीण, ऐसा वही हुआ त्रैलोक्यलोकशुभसङ्गमभूतिदक्ष ।

सद्धर्मराजजयघोषणघोषक सन्—समीचीन जैनधर्म एव उसके प्रणेता तीर्थङ्कर देवो का जय-जयकार की उद्घोषणा को प्रकट करता हुआ ।

विशेषार्थ •—सद्धर्म—समीचीन धर्मतीर्थ, उसके, राज—अधिपति (प्रणेता) अर्थात् तीर्थङ्कर, वही हुआ सद्धर्मराज-उसकी जय-जयकार की घोषणा—निनाद को, घोषक —प्रकट करने वाला, सन्—होता हुआ वही हुआ—सद्धर्मराजजयघोषणघोषक सन् । ऐसा

दुन्दुभि —नगाडा-दमामा-धौंसा व भेरी ।

ते—आपके ।

यशस —कीर्ति का—यश का ।

प्रवादी—विषद कथन करने वाला ।

खे—आकाश मे—गगन मे ।

ध्वनति—गुंजार कर रहा है ।

भावार्थ :

हे दुन्दुभिस्वन !

अपने गम्भीर स्पष्ट और मधुर निनाद से जिसने समस्त दिग्मण्डल के

वातावरण को गुजायमान कर दिया है तथा जिसकी ध्वनि को सुनने के लिए तीनो लोकों के प्राणी एकत्र हो रहे है—ऐसा सत्समागम कराने वाला नगाडा आकाश मे उच्च स्वर से वज रहा है। मानो वह इस तथ्य की घोषणा करता हुआ यशोगान कर रहा है कि समीचीन जैनधर्म की जय हो और उसके प्रवर्तक तीर्थङ्कर देवो की जय-जयकार हो।

यह दुन्दुभि नामक पाचवा प्रातिहार्य है।

विवेचन

परमपूज्य गणधराचार्यों ने अपनी साधकतम अवस्था की स्थिरता मे ओकारमय दिव्यध्वनि को, केवलि, श्रुत-केवलि-प्रणीत समीचीन जैनधर्म के तत्व को द्वादशाग श्रुत मे गूंथ कर अद्यतन सुरक्षित रखा है। उसी परम्परा मे कालान्तरवर्ती शुद्धानुभवी भावलिङ्गी सन्तो ने उस वीतराग विज्ञानमयी जैनधर्मामृत के सागर को गागर मे भरकर प्राणिमात्र के कल्याणार्थ प्रस्तुत किया। सद्धर्म-तत्त्व की वाचक विविध परिभाषाएँ, विविध दृष्टिकोणो से रखते हुए भी उन सवका हृदयगत वाच्य तत्त्व मात्र एक शुद्धात्म-परमात्म तत्त्व की प्राप्ति करना ही रहा। वे कहते हैं कि धर्म क्या है ? ससार के जीवो को जो दु ख मे छुडा कर उत्तम सुख मे प्रतिष्ठित करदे उसे ही धर्म कहते हैं।

"ससार दु खत सत्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे।"

—समन्तभद्राचार्य

सक्षिप्त सूत्रो मे धर्म की परिभाषा को वाधते हुए उन्होंने कहा—

"वत्थु सुहावो धम्मो," "दसण मूलो धम्मो," "चारित्त खलु धम्मो," "अहिसा परमो धर्मः," "रत्नत्रय ही धर्म है," "दशलक्षण ही धर्म है" आदि को ही समीचीन सद्धर्म की सज्ञा दी है। स्याद्वाद चिन्हाकित अनेकान्तमयी जैनधर्म मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता को ही मुक्ति का अथवा सपूर्णतया निराकुल सुख का एकमात्र मार्ग उन्होने निरूपित किया है। इस भाँति अन्यान्य असत् धर्मों से विलक्षण केवल सद्धर्म की विजय 'दुन्दुभि' तीनो लोको मे अनादिकाल से आज तक वजती रही है। सद्धर्म-तीर्थ के उद्घोषक-प्रवर्तक धर्मराज तीर्थंकर भगवन्तो का जयघोष, यशोगान तीनो लोको मे आज तक गूंज रहा है।

दुन्दुभि प्रातिहार्य के वर्णन मे मुनिवर्य मानतुंगजी उत्प्रेक्षा करते हुए कहते हैं कि हे समवशरण मे विराजमान धर्मराज ! हे धर्म सभानायक ! निरन्तर उदात्त और मधुर स्वर से वजने वाला यह दमामा, (नगाडा) यह भेरी,

यह विजय दुन्दुभि मानो इस बात की घोषणा स्पष्ट रूप से कर रही है कि—
"हे ससार के प्राणियो ! यदि तुम्हे निराकुल सच्चे सुख और आत्मकल्याण की इच्छा है तो यहा आओ ! शाश्वत् जैनधर्म और तीर्थंश्वरो की शरण मे आओ। उनका गुणगान करो, जय-जयकार करो, उनके चरणचिन्हो पर गमन करो।"
वस्तुत इस ढिंढोरे को सुनकर ऐसा कौन सा अभागा प्राणी होगा जो तीर्थंकरों की शरण मे 'समवशरण मे-धर्मसभा' मे न पहुचेगा ?

नगाडे की आवाज अपेक्षाकृत अधिक उदात्त और उद्घोषक मानी गई है। वह सोते हुए प्राणी को तुरन्त ही जगाने मे समर्थ है। ससारी जीव अनादि काल से विषय-कषायो से मूर्छित होकर मिथ्यात्व की कालरात्रि मे, मोह-निद्रा मे निमग्न है। आत्म-कल्याण का यह ढोल उनके कर्णपटलो पर मानो निरन्तर बज रहा है और वे चैतन्य एव स्वरूप-जाग्रत होकर अपना आत्म-कल्याण करते हुए समीचीन, सच्चे जैनधर्म और तीर्थंकरो की जय-जयकार कर रहे हैं—यशोगान कर रहे है।

There sounds in the sky the celectial daum, which fills the directions with its deep and loud note, and which is capable of bestowing glory and prosperity on all the deings of the three worlds, and which proclaims the victory sound of the lord of supreme righteousness, proclaiming Thy fame 32

× × ×

Filling all quarters with deep and loud sound the noise of drums, which is clever in offering good fortune and happiness of good society, makes generally and publicly known your fame and speaking aloud the shouts of Jain, goes over in the sky 32

× × ×

अन्वयः

गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता उद्धा दिव्या मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिः ते वचसां तति वा दिवः पतति ।

शब्दार्थः

हे नाथ—हे भगवन् !

गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता—सुगन्धित जल की बूंदों से युक्त एवं मन्द-मन्द समीर के झोंकों के साथ गिरने वाली ।

विशेषार्थ :—गन्ध—सुगन्धित-सुरभित (विशेषण) उदबिन्दु—जलबिन्दु जलकण से युक्त मिश्रित शुभ—सुखकर-सुगलीक, मद—धीमी-धीमी, मरुत—पवन, समीर, हवा उस सहित, प्रपाता—गिरने वाली ऐसी । वही हुआ गन्धोद बिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपात ।

उद्धा—ऊर्ध्वमुखी—ऊपर को मुख है जिसका ऐसी उत्कृष्ट ।

नोट—भगवान के समवशरण में जो पुष्पवर्षा होती है, उन फूलों के मुख ऊपर को और डण्ठल नीचे को रहते हैं इसलिए उन्हें 'उद्धा' अर्थात् ऊर्ध्वमुखी कहा गया है ।

दिव्या—मनोहर, सुन्दर, मनभावनी, देवलोकोत्पन्न पारमार्थिकी ।

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजातसन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिः—मदार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात तथा सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के फूलों की वर्षा

दिवः—आकाश से, गगन से, नभ से ।

पतति—गिरती है ।

वा—अथवा ।

ते—आपके ।

वचसां—वचनों की ।

तति—पंक्ति हो ।

पतति—फैलती है (अध्याहार से लिया गया) ।

भावार्थ

ऊर्ध्वमुखी होते हैं जो समवशरण की पावन भूमि मे मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात तथा सन्तानक नाम के कल्पवृक्षो से निरन्तर झडते रहते हैं !

यह पुष्पवृष्टि नामक छटवां प्रातिहार्य है ।

विवेचन

अनन्त चतुष्टय के धनी चौंतीस अतिशयो से युक्त केवलि श्री अरहत परमेष्ठी कमलासन पर अन्तरीक्ष विराजमान हैं। समवशरण की धर्म-सभा मे उनकी निरक्षरी दिव्यध्वनि खिर रही है। वातावरण, वीतरागता-शान्ति एव परमानन्द से व्याप्त है। त्रिलोकीनाथ तीर्थङ्कर प्रभु के इस सत्य-शिव-सुन्दर साम्राज्य मे सर्वत्र अहिंसा का अनुशासन है। चारो ओर सौ-सौ योजन तक सुकाल वर्त रहा है। देवो द्वारा दशो दिशाएँ निर्मल स्वच्छ कर दी गई है। विविध फल-फूलो एव धन-धान्यादि से लदी हुई सदा बहार पड् ऋतुएँ सुस्वादु और सुरभित होकर महक उठी हैं। पृथ्वी और आकाश दर्पण की नाईं निर्मल हैं। शीतल-मद-सुगध समीर भीनी-भीनी वह रही है। गन्धोदक की बूंदें मानो अमृत वर्षा कर रही हैं। सच्चिदानन्द प्रभु की यह अन्तरग-बहिरग विभूति तीनो लोको के जीवो के आकर्षण का एकमात्र केन्द्रबिन्दु बनी हुई है। भाव-विभोर स्तुतिकार मुनिवर्य श्री मानतुग जी ऐसे मागलिक पुनीत वातावरण मे पुष्पवृष्टि के प्रातिहार्य की भी समायोजना करते हुए कहते है कि कितना अलौकिक और धन्य होगा वह दृश्य जब चतुर्मुख दृश्यमान् सर्वज्ञदेव के न केवल श्रीमुख से अपितु सर्वांग प्रदेशो से निरक्षरी दिव्य-ध्वनि खिर रही हो और उसी के समानान्तर आकाश से कल्पवृक्षो के पुष्पो की वर्षा निरन्तर हो रही हो। जब लौकिक पुष्पों मे ही इतनी महक होती है तब नन्दनवन के कल्पवृक्षों से झडने वाले दिव्य सुमनो की सुगन्धि का तो क्या कहना ? और फिर जब गन्धोदक से धुली हुई शीतल-मद-सुगन्ध समीर के झोंको से वे मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानकादि वृक्षो के प्रसून अपनी दिव्य महक बिखरते हुए पृथ्वी पर गिरते होंगे तब उस सुरभित वातावरण का क्या कहना ? यतिवर्य्य दिव्य ध्वनि और पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य का सामजस्य स्थापित करते हुए उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे नाथ ! ये फूल नहीं झड रहे हैं बल्कि दिव्यध्वनि ही मानो पक्तिबद्ध होकर झड रही हैं। मधुरभाषी को लोक मे कहा भी जाता है कि आपके मुख से मानो फूल ही झड रहे हैं।

इस श्लोक मे 'उध्दा' शब्द का प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है क्योकि हमे ज्ञात है कि समवशरण मे जो फूल बरसते हैं उनके मुख ऊपर (उर्ध्वमुखी)

तथा डठल नीचे (अधोमुखी) रहते हैं। वे मानो यह सिद्ध करते हैं कि आपके समवशरण मे आया हुआ पतित से पतित भी एक दिन ऊर्ध्वगामी वनता है। अर्थात् अपना उद्धार अवश्य करता है। देखिए ! आचार्यश्री का सुन्दरतम भाव पक्ष एव कला पक्ष कि वे पौद्गलिक कर्णगोचर दिव्यध्वनि को पुष्पो के माध्यम से चक्षुगोचर वनाकर दर्शको और श्रोता भक्तो के दृग-श्रोतृ मन और चेतन को एक साथ आनन्दित कर रहे हैं।

Like Thy divine utterances falls from the sky the shower of celestial flowers such as the Mandara, Nameru, Parijat and Santanaka accompanied by gentle breeze that is made charming with scented water drops 33.

The shower of flowers of the trees, such as Mandar, Sundar, Nameru, Superijat, and Santanak, falling down from the sky with the gentle wind, laden with the auspicious drops of scented water, is, as it were, the, continuous flow of your divine and excellent words 33

मूल-श्लोक (गर्भ-संरक्षक)

शुम्भत्प्रभा[1]-वलय भूरि[2] - विभा विभोस्ते,
लोकत्रये[3] द्युतिमता द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर निरन्तर भूरि संख्या—
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्[4] ॥३४॥

प्रभा-मण्डल प्रातिहार्य

तीन लोक की सुन्दरता यदि, मूर्तिमान् बन कर आवे।
तन-भा-मडल की छवि लख कर, तव सन्मुख शरमा जावे॥
कोटि सूर्य के ही प्रताप सम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप।
जिनके द्वारा चन्द्र सुशीतल, होता निष्प्रभ अपने आप॥३४॥

१—"चञ्चत्प्रभा" भी पाठ है। २—"भूति" भी पाठ है। ३—"लोकत्तये" भी पाठ है। ४—"सोम भौम्याम् भी पाठ है।

अन्वय.

प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसख्या ते विभो शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा लोकत्रयद्युतिमता द्युतिम् आक्षिपन्तनी सोमसौम्याम् अपि दीप्त्या निशाम् अपि जयति ।

शब्दार्थ·

प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसख्या—प्रकृष्ट रूप से एक साथ ही पास-पास उदय होने वाले बहुसख्यक सूर्यों के तुल्य ।

विशेषार्थ —प्रोद्यत्—प्रकृष्ट रूप मे उदीयमान, ऐसे दिवाकर—सूर्य, वह हुआ प्रोद्यद्दिवाकर । निरन्तर—अन्तराल रहित-पास पास-सघन-अविरल-एक साथ । भूरिसख्या—विपुल है सख्या जिनकी ऐसे वही हुआ निरन्तर-भूरिसख्या । प्रोद्यत, निरन्तर तथा भूरिसख्या ये तीनो विशेषण दिवाकर विशेष्य के लिए प्रयुक्त हुए है ।

ते विभो —तुम्हारे अर्थात् प्रभु के ।

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा— नितान्त शोभनीक प्रभा-मण्डल (भा—कान्ति उसका मण्डल—गोलाकार वह भामण्डल) की अतिशय जगमगाती हुई ज्योति ।

विशेपार्थ —शुम्भत्—शोभायमान-कल्याणकर, ऐसा प्रभा—आभा, उसका वलय—मण्डल वही हुआ शुम्भत्प्रभावलय अर्थात् शोभनीक भामण्डल । भूरि—विभा—अत्यधिक तेज कान्ति वाली ज्योति ।

लोकत्रयद्युतिमताम्—तीनो लोको के सभी दीप्तिमान पदार्थों की ।

विशेपार्थ —लोकत्रय—तीनो लोक, उसके द्युतिमताम्— दीप्तिमान पदार्थ, वही हुआ लोकत्रय द्युतिमत् उनकी । यह पद षष्ठी के बहु वचन मे प्रयुक्त हुआ है ।

द्युतिम्—द्युति को, कान्ति को, आभा को ।

आक्षिपन्ती—लज्जित करती हुई, तिरस्कृत करती हुई ।

सोमसौम्या अपि—चन्द्रमा सदृश सौम्य-शीतल होने पर भी ।

विशेपार्थ —सोम—चन्द्रमा उसके सदृश सौम्या—शान्त-शीतल अपि—होने पर भी, वही हुआ सोमसौम्या अपि । यह पद विभा का विशेपण होने से स्त्रीलिंग मे प्रयुक्त हुआ है ।

दीप्त्या—अपनी कान्ति से ।

निशाम् अपि—रात्रि को भी ।

जयति—जीतती है ।

भावार्थ·

आपकी दिव्य देह से नि सृत रश्मियो से जो अत्यन्त शोभनीक प्रभा-मण्डल बनता है वही दैदीप्यमान कान्ति का गोलाकार मण्डल भामण्डल कहलाता है। उस भामण्डल की जगमगाती हुई ज्योति असख्य सूर्यों के एक साथ सघनता से उदय होने वाली कान्ति के सदृश है। तीनो लोको मे जितने भी चमकीले दैदीप्यमान पदार्थ है, उन सब की आभा को वह तिरस्कृत करती है—मात देती है तथा चन्द्रमा के समान सौम्य-शान्त-स्निग्ध-शीतल होने पर भी अपनी प्रभा से रात्रि को भी जीतती है।

यह भामण्डल नामक सातवाँ प्रातिहार्य है।

विवेचन

निश्चयत अनन्तगुणो से एव उपचारत छयालीस गुणो से मडित समवशरण स्थित श्री तीर्थंकर प्रभु के प्रभा-मण्डल (भामण्डल) प्रातिहार्य का आलकारिक वर्णन करते हुए भावप्रवण दिगम्बर मत मानतुग जी कहते है। कि —

हे तेजोराशि! आपके भा-मण्डल की प्रभा कोटि-कोटि सूर्यों के समान तेज वाली होने पर भी प्रचण्डता, उष्णता और आताप से रहित है। दूसरी ओर इस एक ज्योतिषी मार्तण्डदेव की प्रचण्डता-उष्णता-आताप और चकाचौंध को पृथ्वी के देहधारी सहन नही कर सकते। असख्य सूर्यों जैसी तेजस्विता और प्रताप रखकर भी आपके प्रभा मण्डल की कान्ति चन्द्र ज्योत्स्ना के समान निर्मल, शीतल और सुखद है। अनुपमेय प्रभु के भा-मण्डल की 'कोटि सूर्य सम प्रभ' से तुलना करते हुए भी स्तोत्रकार ने यहाँ सूर्यदेव का तिरस्कार कर दिया और तत्काल ही उनका ध्यान चन्द्रमा की शीतल, निर्मल और सुखद ज्योत्स्ना की ओर गया, किन्तु दूसरे ही क्षण चन्द्रमा भी उनके अनुपमेय के आगे हत-प्रभ होगया। वे कहते हैं कि आपके भामण्डल की कान्ति चन्द्रमा की भाँति रात्रि को शोभायमान नही करती वल्कि रात्रि को जीतती है। 'आक्षिपन्ती' अर्थात् मिथ्यात्वान्धकार और कालरात्रि पर भी वह विजय पाती है। यहाँ विरोधाभास अलकार की छटा दर्शनीय है।

श्री जिनविम्वो के मुख-कमल की पृष्ठ भूमि मे वहुधा सप्त धातु निर्मित भा-मण्डलो का प्रयोग किया जाता है परन्तु ऐसा कोई भा-मण्डल केवली सर्वज्ञ प्रभु के पृष्ठाग मे होता नही। भा-मण्डल तो वस्तुत उनकी परमौदारिक दिव्य देह से निकलती हुई कैवल्य रश्मियो का ऐसा प्रभावलय—ऐसा अनुपम तेज पुज है, जिसके आगे कोटि-कोटि सूर्य भी हतप्रभ हो जाते हैं। सूक्ष्मतम तैजस-

Oh! Lord Thine luminous halo endowed with Effulgence surpasses lustre of all the luminaries in the world, and though it (Thine halo) is made up of the radiance of many suns rising simultaneously yet it outshines the night dacorated with the gentle lustre of the moon 34

× × ×

O Lord! The excessive light of your shining halo rivaling as it were the blaze of the densely clustered suns and surpassing the laster of the brilliant objects of the three words overcomes (the dark of) the night, even though it is as gentle and mild as the light of the moon. 34

× × ×

मूल-श्लोक (ईति-भीति निवारक)

स्वर्गापवर्ग - गममार्ग - विमार्गणेष्ट.,
सद्धर्म - तत्त्व - कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनि र्भवति ते विशदार्थसर्व—
भाषास्वभाव-परिणाम-गुणै[1] प्रयोज्यः[2] ॥३५॥

दिव्यध्वनि प्रातिहार्य
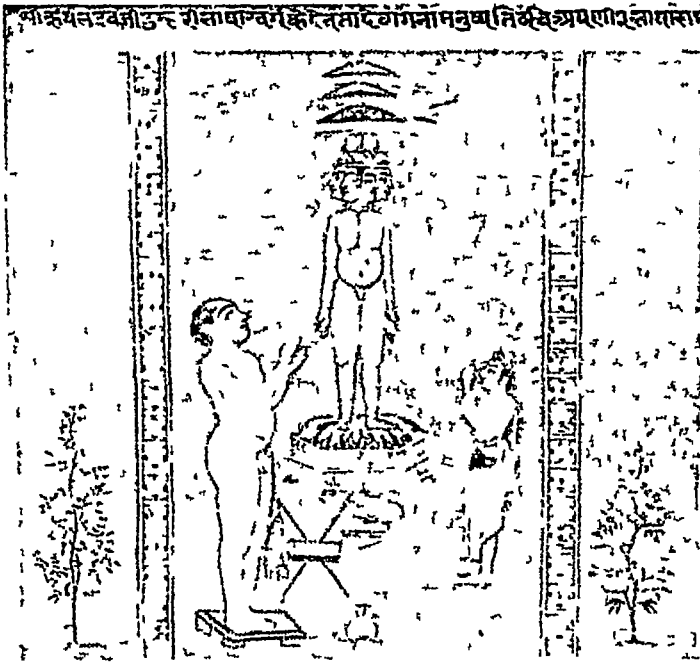
मोक्ष-स्वर्ग के मार्ग प्रदर्शक, प्रभुवर तेरे दिव्य-वचन ।
करा रहे हैं 'सत्य-धर्म' के, अमर-तत्त्व का दिग्दर्शन ॥
सुनकर जग के जीव वस्तुत, कर लेते अपना उद्धार ।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ॥३४॥

१—"गुण" यह भी पाठ है। २—"प्रयोज्या" भी पाठ है।

को समझाने मे पूर्ण समर्थ हैं-सक्षम हैं। आपका सारा उपदेश दूसरो के हित को करने वाला होता है। आपकी अलौकिक दिव्यवाणी का यह महान् अतिशय है कि भिन्न-भिन्न श्रोताओ की भिन्न-भिन्न भाषाओ मे परिणमन करने के स्वाभाविक गुणो से वह युक्त है। याने श्रोताओ के कान तक पहुँच कर वह उसी भाषा रूप परिणमित हो जाती है जिस भाषा का श्रोता जानकर होता है।

विवेचन

परम वीतराग सर्वज्ञ-हितोपदेशी तीर्थंकर भगवतो की ॐकारमयी दिव्य ध्वनि का सातिशय चमत्कार बतलाते हुए आचार्यश्री इस प्रातिहार्य द्वारा धर्म-सभानायक श्री आदीश्वरदेव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि —

हे समवशरणाधिपते ! आपकी निरक्षरी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का परम पथ दिखाने वाली है। लोकोत्तम समीचीन जैनधर्म के तत्त्वार्थो को समझाने मे समर्थ है, सक्षम है। उसमे वह अलौकिक शक्ति है कि भूमिकानुसार श्रोताओ की भाषाओ मे ही तद्रूप परिणत होती जाती है। अर्थात् एक ही भाव विभिन्न बोलियो मे समझा जा सकता है।

वस्तुत जितना भी द्वादशागमय श्रुतज्ञान है वह सब समशरण मे विराजमान केवली भगवान की ओम्कार ध्वनि का ही सार है जो गणधराचार्यो द्वारा सूत्रबद्ध किया जाता है। तीनो लोको के जीवो का कितना कल्याण होता है उनकी इस दिव्य देशना से ?—इसकी कल्पना नही की जा सकती। उसके श्रवण मात्र से मुमुक्षुओ को मुक्ति और लौकिकजनो को स्वर्ग सम्पदादिक पुण्य विभूतियो के द्वार स्वयमेव खुल जाते है।

"जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी"

श्री जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि तो ऐसा कल्पवृक्ष है जिसकी छत्रच्छाया मे कल्पनानुसार मनोवाछित फलो की सद्य प्राप्ति होती है। जिनवाणी एक ऐसा पारस चिन्तामणि रत्न है कि जिसके द्वारा भावानुसार चिन्त्य-पद प्राप्त होता है। जिस प्रकार मेघ गर्जना सुन कर मयूर नृत्य करने लगते हैं उसी भाँति दिव्य ध्वनि की सघन गर्जना से भव्य जीवो के मन-मयूर नाच उठते है। सुर, नर, खग, मुनि आदि सभी के लिए मानो ज्ञानानन्द की अमृत वर्षा होने लगती है।

"भवि भागन वच जोगे वशाय, तुम धुनि सुनि सब विभ्रम नशाय।"

हे नाथ ! आपकी दिव्यध्वनि सुनने से अनादि कालीन मिथ्यात्व, सशय, विमोह, अनध्यवसाय, प्रमाद और असयम का नाश हो जाता है। भले ही वह

आपके वचन योग से खिर रही हो तथापि मैं तो ऐसा मानता हूँ कि भव्य जीवों के सौभाग्योदय से ही वह खिर रही है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि वाणी पौद्गलिक है तो वह चैतन्य भावों के लिए कल्याण में निमित्त कैसे बनती है ? इसका समाधान यह है कि 'शब्द ब्रह्म' चैतन्य का वाचक होने से तथा सच्चिदानंद चैतन्य घन परमात्मा से अभिव्यक्त होने से जीव मात्र के कल्याण में निमित्त है। अतः त्रिकाल वन्दनीय भी है। वह हित-मित-प्रिय-सत्य और स्याद्वादमय वाणी जग जीवों के लिए सत्, शिव और सुन्दर है।

श्री जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि की अपार विलक्षणताएँ हैं। चतुर्मुख तीर्थंकर देव के श्रीमुख से निःसृत होने पर भी वस्तुतः वह सर्वांगमुखी है। निरक्षरी होने पर भी वह अनक्षर नहीं है अपितु अक्षरात्मक और अक्षयात्मक है। उनकी भाषा अर्द्धमागधी होने पर भी लोक की १८ भाषाओं और ७०० लघु भाषाओं में वह आसानी से समझी जाती है। इतर अनिन्द्रिय उत्तर भाव को सभाषी, मूक और बधिर, तिर्यञ्चादिक पशु भी समझ लेते हैं। इस दिव्यध्वनि में यह स्वाभाविक गुण है कि वह एक ही भाव का निरूपण करने पर यावत पात्रों की भूमिकानुसार भाषाओं में समझाकर उनके वांछित प्रयोजन सिद्ध करती है। जिस भाँति वर्षा का जल तो सर्वत्र एक सा ही होता है परन्तु अपने-अपने उपादान की योग्यतानुसार निम्ब (नीम) और ईख (गन्ना) आदि वृक्षों में पहुँच कर उसका परिणमन कटुक और मधुर रूप में होता जाता है।

सयोग केवली भगवतों के वचनयोग होने पर भी ओष्ठादिक के कम्पन पूर्वक दिव्यध्वनि नहीं खिरती। समवशरण में तीर्थंकरश्री की दिव्यध्वनि अहोरात्रि की चार सन्ध्याओं में छह-छह घडियों के अन्तराल में खिरती रहती है। मेघ गर्जनावत वह दिव्यध्वनि एक योजन (चार कोस) तक सुन पडती है। मागध जाति के देव मानो ध्वनि विस्तारक यंत्रों का कार्य करते हैं। इस दिव्य देशना द्वारा सब पदार्थों का व मोक्ष मार्ग की मुख्यता का स्याद्वादात्मक कथन होता है। इस धर्मामृत-वर्षण से अलौकिक और लौकिक सिद्धियों की प्राप्ति जीवों को होती है। कैसी है जिनवाणी ?

मिथ्यातम नाशवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा पर भासवे को, भानु सी बखानी है॥
जहाँ तहाँ तारवे को, पार के उतारवे कों।
सुख विस्तारवे को यही जिनवाणी है॥

Thy divine voice, which is sought by those who wish to tread the path of emancipation leading to Heaven and Salvation and which alone can expound the truth of the supreme religion, is endowed with those natural qualities which transform it (Divya-dhwani) into all the languages capable of clrar meaning 35

Your singular speech, which is indispensable in seeking out the paths to the heaven and salvation, proficient in expounding the philosophy and principles of the Rightfaith and coupled with the clear and exhaustive meaning, is rife with the distinctive features of its comprehensive faculty 35

× × ×

मूल श्लोक (लक्ष्मी-प्रदायक)

उन्निद्रहेमनवपङ्कज - पुञ्जकान्ति,
पर्युल्लसन्नखमयूख - शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

पद-तल स्वर्ण दिव्य कमल रचना

जगमगात नख जिसमे शोभे, जैसे नभ मे चन्द्र-किरण।
विकसित नूतन सरसीरूह सम, हे प्रभु ! तेरे विमल-चरण ॥
रखते जहाँ वही रचते है, स्वर्ण-कमल सुर दिव्य ललाम।
अभिनदन के योग्य चरन तव, भक्ति रहे उनमे अभिराम ॥३६॥

अन्वय.

हे जिनेन्द्र ! उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ति पर्युल्लसन्नखमयूखशिखा-भिरामौ तव पादौ यत्र पदानि धत्त. तत्र विबुधा पद्मानि परिकल्पयन्ति ।

शब्दार्थ

जिनेन्द्र !—हे जिनदेव !

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ति—खिले हुए सुवर्ण (स्वर्ण या सुन्दर वर्ण) सरोज समूह के समान सुन्दर कान्ति को धारण करने वाले ।

विशेषार्थ —उन्निद्र—खूब विकसित, ऐसे हेमनवपङ्कज—सुवर्ण के नवीन कमलों, उनका पुञ्ज—समूह, उसकी कान्ति- प्रभा-आभा-को धारण करने वाले । यही हुआ उन्निद्रहेमनवपङ्कज पुञ्जकान्ति ।

पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ—सब ओर उल्लसित नखों की चमकदार किरणों की अग्रभागीय आभा से मनोहर ।

विशेषार्थ :— पर्युल्लसन्—सब तरफ चमकने वाली, नख—नाखूनों की मयूख शिखा—किरणों की प्रभा से अभिराम—मनोहर, यही हुआ पर्युल्लसन्नख-मयूखशिखाभिराम ।

तव पादौ—आपके दोनों पग, युगल चरण ।

यत्र—जहाँ ।

पदानि—पग, डग, कदम ।

धत्त —रखते जाते हैं ।

तत्र—वहाँ ।

विबुधा —सुर समूह ।

पद्मानि—कमलों को, स्वर्ण सरोजों को ।

परिकल्पयन्ति—रचते जाते हैं, बनाते जाते हैं ।

भावार्थ

हे चरणाम्बुज !

आपके पावन युगल चरण खिले हुए नूतन स्वर्ण सरोजों के समान कान्तिमान है । उनके नखों से चतुर्दिक चमचमाती किरणें बिखर रही हैं । धर्मोपदेश के लिए विहार करते समय आपके द्वारा ज्यों-ज्यों, जहाँ-जहाँ आर्यक्षेत्र की पृथ्वी पर पग रखे जाते हैं त्यों-त्यों, तहाँ-तहाँ देवगण कल्पित स्वर्ण कमलों की रचना करते जाते हैं ।

Goods, O visualize great lotuses, wherever they fell, having the luster of a collection of newly flower golden lotuses and to which charm has been imparted by the luster of the shining nails, are placed. 36

× × ×

O Jinendra ! Gods arrange lotuses at wherever you set your feet which, being beautified by the rays of light, reflected from the sparking nails possesses the luster of a large number of recently blown lotuses of gold 36

× × ×

मूल-श्लोक (दुष्टता प्रतिरोधक)

इत्थ यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृत प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ।।३७।।

अलौकिक विभूति सयुक्त समवशरणस्थ श्री अरहतप्रभु
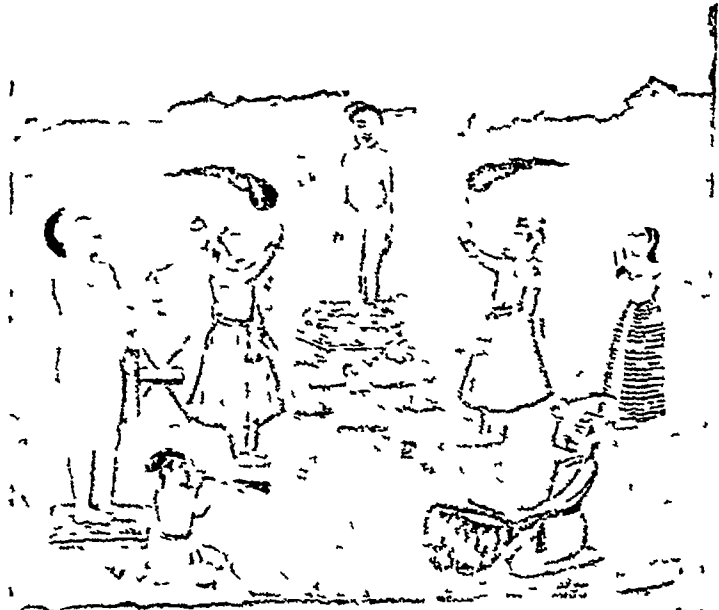
धर्म देशना के विधान मे, था जिनवर का जो ऐश्वर्य।
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवो मे भी दिखता है सौन्दर्य ।।
जो छवि घोर तिमिर के नाशक रवि मे है देखी जाती।
वैसी ही क्या अतुल कान्ति, नक्षत्रो मे लेखी जाती ।।३७।।

अन्वयः

जिनेन्द्र ! इत्थम् तव धर्मोपदेशनविधौ यथा विभूति अभूत् तथा परस्य न, दिनकृत प्रभा यादृक् प्रहतान्धकारा तादृक् विकासिन अपि ग्रहगणस्य कुत ?

शब्दार्थ·

जिनेन्द्र —हे जिनेश्वर !

इत्थम्—इसी प्रकार, इसी तरह से, पूर्वोक्त प्रकार से ।

विशेषार्थ —इससे पूर्व स्तुति का एक प्रकार से वर्णन किया अब स्तुतिकार उसी स्तुति को दूसरी तरह से वर्णन करते हैं। उसका अनुसधान श्लोक मे आये इत्थ शब्द से परिज्ञात होता है ।

तव—तुम्हारी, आपकी ।

धर्मोपदेशनविधौ—"वत्थुसहावोधम्म·" वस्तु का स्वभाव ही धर्म है, उसका उपदेश—देशना, हित की बात बताने, सो वही हुआ धर्मोपदेशन उसकी विधि—विधान, नियम, क्रिया वह हुआ धर्मोपदेशनविधि ।

यथा—जैसी, जिस प्रकार की ।

विभूति —वैभव, समृद्धि, अतिशय रूपी समृद्धि ।

अभूत्—हुई थी ।

तथा—वैसी, उसी प्रकार की ।

परस्य—दूसरो की, दूसरे धर्मप्रवर्तकों को ।

न—नही हुई ।

दिनकृत प्रभा—सूर्य की ज्योति ।

यादृक्—जैसा, जितना ।

प्रहतान्धकारा—अन्धकार को नाश करने वाली ।

विशेषार्थ —प्रहत्—नष्ट किया जाता है, अन्धकार—अधियारा जिसके द्वारा वही हुआ प्रहतान्धकार ।

यह पद प्रभा का विशेषण होने से प्रथमा एक वचन मे आया है ।

तादृक्—वैसी, उतनी ।

विकासिन —उदय प्राप्त करते हुए ।

अपि—भी ।

ग्रहगणस्य—ग्रह समूह की ।

विशेषार्थ —ग्रह—ग्रह उनका गण—समूह वह हुआ ग्रहगण । मगल, बुध,

समागम समारोह ससार मे और कोई नही हो सकता क्योकि समारोह मे वस्तु स्वरूप का भान और ज्ञान उस महामना नेता द्वारा कराया जाता है जिसने अपनी आत्मा मे ज्ञात-दर्शन-सुख-वीर्य नामक स्वाभाविक गुणो का चरम विकास कर लिया है, जिसका मानवत्व शुद्धि, शक्ति और शान्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच कर परमात्मा वन गया है, जो ससारी जीवो को सन्मार्ग का उपदेश देने के लिए, उनकी भूल सुझाने, वन्धन मुक्त करने, ऊपर उठाने, दु ख मेटने के लिए, विहार कर रहा है, लोक हित साधना की जो असाधारण भावना युगो पूर्व चल रही थी और जिसका गहरा सस्कार भवों पूर्व आत्मा में पडा हुआ था, अव वह सम्पूर्ण रुकावटो के हट जाने से अपने आप कार्यरूप परिणत होने लगा है। अस्तु।

ऐसे वे मोक्षमार्ग के अद्वितीय नेता अपने पौरुष से स्वकीय कर्मशैल को चकचूर करके जव स्वय सर्वदर्शी सर्वज्ञ होगये तव कही लोक हितैषी प्रामाणिक वक्ता वनकर विहार को निकले हैं और स्थान-स्थान पर देवो द्वारा अभूतपूर्व समवशरण वनाये जा रहे है। इन समवशरणो के द्वार प्राणिमात्र के लिए खुले है। सर्वोदय तीर्थ के ये साक्षात् प्रतीक हैं। भेदभाव और विषमताओं का तो वहां नाम भी नही है। विश्वमैत्री, अहिंसा, प्रेम और सहअस्तित्व के आनन्दपूर्ण वातावरण का ही एकच्छत्र राज्य है। समवशरण मे प्रवेश करते ही अहि, नकुल जैसे जन्मजात विरोधी जीव भी अपना आपसी वैर विसार कर परस्पर मे आलिंगन करते हैं। सचमुच ही उनकी आत्मा मे अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है।

"अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग"

ऐसा परम प्रभाव समशरण की धर्मसभाओ का वतलाया गया है। यह तो हुआ तीर्थंकर देवों की आध्यात्मिक विभूति का प्रभाव। अव देखिये वाह्य विभूतियो से युक्त समवशरण रचना की एक मनमोहक झलक। इसकी रचना कमल के समान होती है। गधकुटी जहाँ तीर्थंकर विराजते है—कली समान व वाहर रचना कमल-पत्र के समान रहती हैं। भूमि का रग नीलमणि समान होता है। इसे मानागण भी कहते हैं जहाँ इन्द्रादिकदेव दूर से ही नमन करते हैं। मानागण की चार दिशाओ मे चार वीथी होती हैं। उनसे मध्य मे मानस्तम्भ होते हैं। उनपर प्रतिमाएँ होती हैं। सव वहाँ पूजन करते हैं। उस भूमि को "आस्थानागण" कहते हैं। मानस्तम्भो मे आगे चार दिशा मे सरोवर होते हैं। फिर पहला कोट सफेद चादी के समान होता है। इसके चारो ओर खातिका (खाई) होती है। खातिका के चारो तरफ वन होता है। कोट के

चारो दिशाओ मे बृहताकार चार द्वार होते है। इन पर व्यन्तर जाति के देव द्वारपाल की तरह शस्त्र लिए खडे रहते हैं। द्वारो के भीतर जाकर ध्वजापीठ है। चारो दिशाओ मे चार करोड अडसठ लाख छत्तीस हजार कुछ अधिक ध्वजाएँ होती हैं। फिर स्वर्णमयी दूसरा कोट है। इसके द्वारो पर हाथ मे वेत लिए भवनवासी देव खडे रहते हैं। फिर कल्पवृक्षो के वन हैं। वहा मुनि व देवो के बैठने योग्य सभागृह है। फिर तीसरा कोट स्फटिक मणिमयी है। इसके द्वारो पर कल्पवासी देव द्वारपाल वत् खडे रहते हैं। फिर आगे लताग्रह आदि हैं। अनेक स्तूपादि होते हैं। इसी के भीतर मध्य मे तीन पीठ पर श्रीमडप होता है। मध्य मे गधकुटी है उसके चारो तरफ १२ सभाएँ होती हैं, जिनमे क्रम से (१) मुनिगण (२) कल्पवासीदेवी (३) आर्यकाएँ (४) ज्योतिषी देवी (५) व्यन्तरदेवी (६) भवनवासी देवी (७) भवनवासी देव (८) व्यतरदेव (९) ज्योतिषीदेव (१०) कल्पवासी देव (११) मनुष्य (१२) पशुगण बैठते हैं। ये चारो तरफ होती हैं।

क्या इस प्रकार के समवशरण की रचना और दिव्य-देशनारूप वैभव किसी भी तथाकथित देव को नसीव हुआ अर्थात् कभी भी नही ?

The glory, which Thou attained at the time of giving instruction in religious matters, is attained, O Jinendra ! by nobody else How can the lustre of the shining planets and stars be so (bright) as the darkness-destroying effulgence of the sun ? 37

× × ×

Thus no other gods can aspire to resemble you in superhuman excellence which is the distinctive characteristic of your instructive style of expounding Tatvas How can the *light of stars possess the same faculty of destroying darkness as* is owned by the sun 37

× × ×

मूल-श्लोक (हस्तिमद भंजक तथा वैभव वर्द्धक)

श्च्योतन्मदाविल - विलोल - कपोलमूल—
मत्तभ्रमद् भ्रमर- नाद -, विवृद्ध-कोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धत[1] - मापतन्त,
दृष्ट्वा भय भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

हस्ति आतंक से मुक्त भगवद्-भक्त

लोल कपोलो से झरती है, जहां निरन्तर मद की धार ।
होकर अति मद मत्त कि जिस पर, करते हैं भौंरे गुंजार ॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल ।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥३८॥

१ "उत्कटम्" भी पाठ है ।

अन्वय.

(भगवन्) भवदाश्रितानाम् श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ऐरावताभम् आपतन्तम् उद्धतम् इभम् दृष्ट्वा भयम् नो भवति ।

शब्दार्थ.

भवदाश्रितानाम्—आपके शरणागत पुरुषों को ।

विशेषार्थ .—भवत्—आपकी, आश्रित—शरण में आए हुए वही हुआ भवदाश्रित ।

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम्—झरते हुए मदजल (गन्धयुक्त स्राव) से जिनके गण्डस्थल (गण्ड प्रदेश) मलीन कलुषित तथा चंचल हो रहे हैं और उन पर उन्मत्त (विक्षुब्ध) होकर मंडराते हुए काले रंग के भौंरे अपने गुञ्जन से जिनका क्रोध बढ़ा रहे हैं ऐसे ।

विशेषार्थ —श्च्योतत्—चू रहे, झर रहे ऐसे मदगंध युक्त स्राव से आविल—कलुषित दूषित मलिन बना हुआ और विलोल—चंचल ऐसा कपोलमूल—गण्डप्रदेश (गण्डस्थल) कनपटी पर मत्त—उन्मत्त मतवाले, विक्षुब्ध होकर भ्रमद्—मंडरा रहे ऐसे भ्रमरनाद—भौंरों की गूंजन से गुनगुनाहट से विवृद्ध—बढ़ गया है, कोप—क्रोध जिसका ऐसा वही हुआ श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूलमत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोप ।

ऐरावताभम्—ऐरावत हाथी जैसा आकार वाला मोटा अथवा ऐरावत के समान है आभा जिसकी ऐसा ।

विशेषार्थ—ऐरावत—के जैसी आभा जिसकी वही हुआ ऐरावताभ्—यहाँ आभा शब्द सामान्य सूचित करने वाला है । ऐरावत अर्थात् इन्द्र का हाथी जो कद में आकार में बहुत बड़ा विशालकाय होता है ।

आपतन्तम्—सामने आते हुए ।

आपतन्तं आक्रामन्तं

उद्धतम्—उद्दण्ड, उच्छृङ्खल, अवश, अविनीत अशिक्षित दुर्दान्त ।

इभम्—हाथी को ।

दृष्ट्वा—देख कर ।

भयं नो भवति—भय उत्पन्न नहीं होता ।

भावार्थ

हे अभयङ्कर !

साक्षात् ऐरावत के समान भीमकाय कोई विकराल और निरकुश हाथी क्रोध से मतवाला होगया है क्योंकि उसके कपोलो से झरते हुए गन्ध युक्त द्राव पर मडराते हुए भौंरे गुन गुन कर के कोलाहल कर रहे हैं। ऐसा विगडा हुआ उच्छृङ्खल, अवश हाथी भी जब आपके शरणागत के सन्मुख आता है तो वह आस्थावान् भक्त उससे किञ्चित मात्र भी भयभीत नहीं होता।

विवेचन

अभी तक भक्त शिरोमणि मुनिवर्य मानतुग जी ने अपने परमाराध्यदेव श्री आदिनाथ भगवान की स्तुति वन्दना भाव पूर्वक की है। अब इस श्लोक से प्रारम्भ करके अन्तिम श्लोक तक वे उन लौकिक और तात्कालिक सफलताओ का वर्णन करेंगे जो श्री जिनेन्द्रदेव की शरण मे आए हुओ को, उनका कीर्तन करने वाले भक्तो को, नामस्मरण करने वालो को प्राप्त होती है। अर्थात् अभी तक अरहत प्रभु के गुणों की भाव पूजा मुनिश्री के द्वारा की गई। अब उस भाव पूजा के फल पर प्रकाश डाला जा रहा है।

कवि कहते हैं—कि हे देवाधिदेव ! जिसने भी आपका आश्रय ग्रहण कर लिया है उसे किसी भी प्रकार का भय नही रहता ! यहा तक कि क्रोधोन्मत्त विकराल हाथी जिसके कपोलो से मद चू रहा हो और उस पर भौंरे मडरा रहे हो। फल स्वरूप उसका क्रोध भडक रहा हो ऐसा हाथी भी आपके शरणागत भक्त का कुछ भी नहीं विगाड सकता।

हाथी एक भीमकाय्य निरकुश पशु होता है। उसे वश मे करना वस्तुत अत्यन्त कठिन है। इतने पर भी यदि वह क्रोध से मतवाला हो जाता है तो चारो ओर विध्वस का दृश्य उपस्थित हो जाता है। भगवान महावीर स्वामी के बाल्यकाल का एक पौराणिक आख्यान है, कि उन्हे देखकर एक निरकुश क्रोधोन्मत्त विकराल हाथी अपनी पाशविकता छोडकर सौम्य-शान्त वन गया था। इसी भाँति भरत ने भी निरकुश त्रिलोक मडन हाथी को सहज ही मे वश कर लिया था। अस्तु। महावीर और भरत तो पौराणिक पुरुष थे। उनका आध्यात्मिक प्रभाव ही कुछ और होता है कि विश्व भी उनके चरणो मे झुक जाता है। यहा स्तुतिकार कहते हैं कि एक सामान्य भक्त भी आपकी शरण मे आने से निर्भय हो जाता है और मतवाला हाथी उसके सामने सौम्य शात हो जाता है। वैसे तो हमे ज्ञात है कि सम्यक्दृष्टि भक्त को सप्त-भय होते ही नहीं

क्योंकि उनके हृदय में अनन्त शक्तिमान परमात्मा का सान्निध्य भाव विद्यमान है। अतएव उस समय वह स्वयं ही अत्यन्त शक्तिशाली होता है। शान्ति और सौम्यता ही भक्त की शक्ति है और शान्ति ने सदैव ही क्रोध पर विजय प्राप्त की है। इस मनोवैज्ञानिक आधार पर बर्बर पशु यदि अपनी पाशविकता छोड़ दें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। भावकृत की शक्ति सचमुच में अतुलनीय होती है।

Those who have resorted to You are not afraid even at the sight of the Airavata-like infuriated elephant whose anger has been increased by the buzzing sound of the intoxicated bees hovering about its cheeks soiled with the flowing rut and which rushes forward 38

* * *

Your devotees are not terrified even in the least when they see themselves attacked by the unruly and huge (Airavat-like) elephant provoked to anger by the humming of bees : which being excited fly near the frontal globes of the elephant which are dirty and unsteady on account of the dripping down of ichor 38

* * *

अन्वय

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभाग बद्धक्रम हरिणाधिप अपि क्रमगतम् ते क्रमयुगाचलसंश्रितम् न आक्रामति।

शब्दार्थ

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभाग—विदीर्ण किये गये हाथियों के गण्डप्रदेशों से गिरे हुए धवल, उज्ज्वल और रक्त प्लावित गज मुक्ताओं के समूह से सुशोभित कर दिया है भूतल-तल को जिसने ऐसा

विशेषार्थ — भिन्न — भेद किये हुए विदारे हुए, विदीर्ण किये हुए। इभ—हाथी के, कुम्भ—गण्डस्थल (हाथी के सिर के दोनों ओर का ऊपर वाला भाग) जिनमें से, गलत्—निकल रहे गिर रहे, उज्ज्वल—धवल-श्वेत तथा शोणित—रक्त से अक्त—लिप्त सने हुए, ऐसे मुक्ताफल—गजमुक्ता (मदोन्मत्त हाथियों के मस्तकों से मोती उत्पन्न होते हैं जिन्हें गजमुक्ता कहते हैं) उनका प्रकार—समूह उनसे भूषित—सुन्दर, सुशोभित बना दिया है भूमिभाग—पृथ्वी का भाग जिसने ऐसा

बद्धक्रम[1]—अपने पराक्रम को समेट कर आक्रमण करने के लिए—छलांग भरने के लिए कटिबद्ध-सन्नद्ध ऐसा

विशेषार्थ—बद्ध—समेटा हुआ, बांधा हुआ, तैयार किया हुआ क्रम—पराक्रम वही हुआ बद्धक्रम।

हरिणाधिप—सिंह।

विशेषार्थ—हरिण—पशु जिनका अधिप—अधिपति-स्वामी, वह हुआ हरिणाधिप अर्थात् सिंह।

अपि—भी।

क्रमगतम्—छलांग मार चुका हुआ, चंगुल में फँसा हुआ, पंजों के बीच पड़ा हुआ।

विशेषार्थ — क्रम — पैर, पंजे में गत—गया हुआ अर्थात् फँसा हुआ वह हुआ क्रमगत।

ते—तुम्हारे आपके।

क्रमयुगाचलसंश्रितम्—दोनों चरणरूपी पर्वत के आश्रित भक्त पुरुष पर।

विशेषार्थ—क्रम—पद उनकी युग—युगल जोड़ी वह हुआ क्रमयुग वही

1—"बद्धक्रम" का "बंधे हुए हैं पाँव जिनके" यह भी तात्पर्य है।

हुआ अचल—पर्वत, सो हुआ क्रमयुगाचल उनके संश्रितम्—आश्रित, वही हुआ क्रमयुगाचलसंश्रित उस पर।

न आक्रामति—आक्रमण नहीं करता, नहीं सताता।

भावार्थ

विवेचन

भक्त कवि श्री मानतुङ्ग जी स्तुति में पावन क्षणों में जब जब आत्मानुभूति का साक्षात्कार करते हैं तब तब निश्चयनय से स्व केन्द्रित शुद्धोपयोग की नैसर्गिक भूमिका में टिकते हैं किन्तु अस्थिरता के कारण पुनः प्रशस्तराग की व्यावहारिक भूमिका पर जब उतरते हैं तो उन के निर्बंधात्मक शुभ भावों की धारा उनके भावुक हृदय में बहती है। यही कारण है कि भक्तामर-काव्य के इन पद्यों में शरणागत भक्त की लोकोत्तर निर्भयता के साथ ही साथ भौतिक विजयों एवं उपलब्धियों का उल्लेख भी समानान्तर स्तर पर वे करते जा रहे हैं। आचार्य-श्री कहते हैं कि न केवल मतवाले हाथी ही भक्त के वशीभूत हो जाते हैं अपितु दुर्दान्त खूंखार सिंह भी आपके भक्त के ऊपर झपटते-झपटते रुक जाता है। यहां पर कवि रौद्र, भयानक, वीर, शृङ्गार, करुण, बीभत्स, शान्त, वात्सल्य और हास्य रस के साहित्यिक दृश्य रंग भी चित्रपट पर प्रस्तुत करते हैं। देखिये नवरस के प्रतीक पात्र किस प्रकार दृश्य काव्य के मञ्च पर उतारे जा रहे हैं —

(१) मदोन्मत्त भीमकाय विकराल हाथी। —भयानक-रस

(२) चौकड़ी भरता हुआ आक्रमणोद्यत पराक्रमी सिंह। —वीर-रस

(३) अपने तेज नाखून यानि पंजों से उस विकराल उन्मत्त हाथी के गण्डस्थल को विदीर्ण करने वाला सिंह। —रौद्र-रस

(४) मृत प्राय गजराज। —करुण-रस

मूल-श्लोक (सर्वाग्नि-शामक)

कल्पान्तकाल-पवनोद्धत - वन्हिकल्पं,
दावानल ज्वलित मुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्व जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्तनजल शमयत्यशेषम् ॥४०॥

जिनेन्द्र नाम स्मरण से दावाग्नि शमन
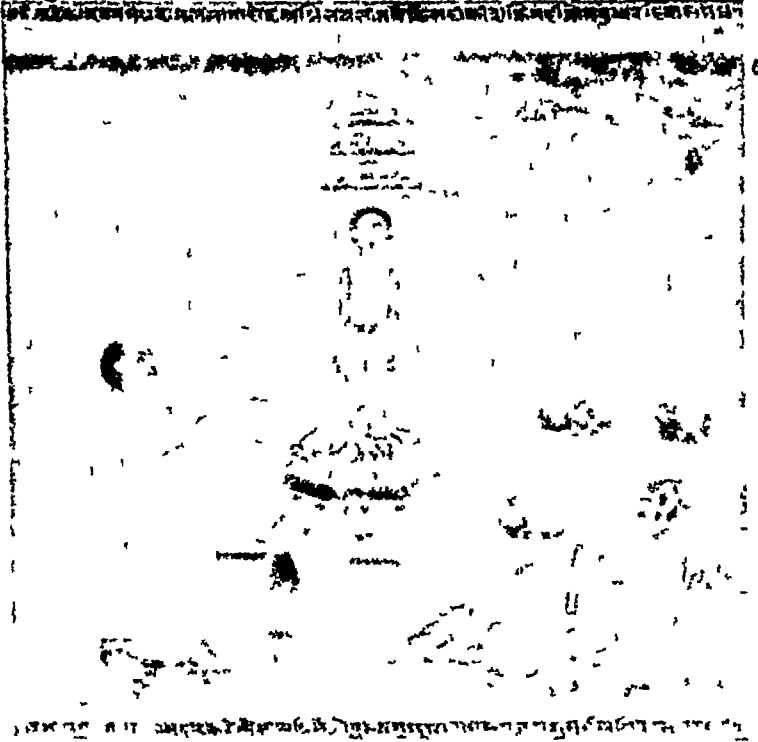
प्रलय काल की पवन उठाकर जिसे बढा देती सब ओर ।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे, अगारो का भी हो जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहे, आती हुई अग्नि भभकार ।
प्रभु के नाम-मंत्र-जल से वह बुझ जाती है उसही बार ॥४०॥

भावार्थ.

हे अग्रजिन !

सामान्य अग्नि की वात तो दूर प्रत्युत जगल मे लगी हुई वह प्रचण्ड आग भी जो कि प्रलय कालीन तीव्र हवा के झकोरो से धधक रही हो। जिसमे मे चारो ओर चिनगारियाँ उड-उड कर फैल रही हो तथा जो समस्त भूमण्डल को निगल कर भस्मसात करती हुई सी प्रतीत होती हो। वह भी आपके पवित्र नाम-स्मरण रूपी जल से सर्वथा वुझ जाती है—शान्त हो जाती है। अर्थात् आपका नाम-स्मरण-जल का कार्य करता है।

विवेचन

यह तो सर्व विदित तथ्य है कि सर्व भक्षी अग्नि ने ससार के किसी भी पदार्थ को भस्मसात करने से कभी छोडा नही। जो भी उसकी लपेट मे आया उसी को उसने अपना ग्रास बनाया। अपनी लपलपाती हुई लपटो की जिह्वा से उसने सभी को आत्मसात् करके स्वाहा कर दिया। सारा ससार भी यदि ईंधन वनकर उसकी क्षुधा को शान्त करना चाहे तो नही कर सकता। ईंधन पाकर तो वह और भी अधिक भभकती है—उत्तेजित होती है। आग की एक कणिका अर्थात् चिनगारी भी कभी इतना विकराल रूप धारण कर लेती है कि गाँव के गाँव स्वाहा हो जाते हैं। उसे वुझाने के लिए कुएँ के कुएँ खाली हो जाते हैं। फिर भी वह वुझती नहीं। रेत, वालू आदि का उपयोग भी उसकी प्रचण्डता का शमन करने के लिए किया जाता है परन्तु वह भी विफल देखा जाता है। आधुनिक अग्नि-शामक कले भी उसे वडी कठिनाई से शान्त कर पाती हैं। यह तो हुई सामान्य अग्नि की वात जिसकी चर्चा आचार्य मानतुग जी यहाँ नही कर रहे हैं। वे तो उस प्रचण्ड दावानल—जगल की आग की ओर सकेत करते हुए हमारा ध्यान केन्द्रित कर रहे है कि जिसे शात करने के लिए समस्त मानवीय पुरुषार्थ हथियार डाल देते है। सरिताओ और समुद्रो का जल भी उसे शान्त करने मे असमर्थ रहता है। एक वार की लगी हुई दावाग्नि से जगल के जगल स्वाहा हो जाते है। उसे वुझाने के लिए तो सिर्फ दैवी कृपा ही चाहिए और वह भी घनघोर मूसलाधार वर्षा !!

यहाँ पर आचार्यश्री आज कल की जगल मे लगी हुई आग की चर्चा नही कर रहे हैं बल्कि वे तो उस प्रचण्ड विकराल दावानल की वात कर रहे हैं जो कि प्रलय काल मे चलने वाली तेज आँधी के झकोरो से भभक-भभक उठती हो। एक ही वार मे अपनी लपटों से समस्त भूमण्डल को निगलने

की इच्छा रखती हो। इतनी भयावह हो कि जिसकी चिनगारियाँ चारों ओर आडे-तिरछे, ऊपर-नीचे की ओर उचट-उचट कर फैल रही हों। उसे बुझाने की सामर्थ्य भला किसमे है? दैव मे भी जब नही तो मनुष्य की क्या बिसात? दुनियाँ मे ऐसा कोई अग्नि-शामक यत्र और मत्र नहीं जो इस पावक की क्रोधाग्नि को शान्त करदे! इन्द्रदेव की दैवी मेघमाला द्वारा होने वाली घन-घोर मूसलाधार वर्षा भी सर्वभक्षी हुताशन को बुझाने मे असमर्थ है। इतने भयानक और विकराल दृश्य को उपस्थित करने के उपरान्त आचार्य महाराज ऐसी भयावह अग्नि के शमन करने का एक अत्यन्त सुगम उपाय प्रस्तुत करते है कि लौकिक जल मे तो ऐसी बीभत्स और प्रचण्ड अग्नि शान्त नहीं होगी। वह तो आपके (वीतराग प्रभु के) नाम-स्मरण रूपी जल से ही क्षण भर में पूरी तरह बुझ सकती है। आपके पावन नाम का स्मरण मात्र ही अनोखा, अद्भुत, बेमिसाल अग्नि शामक यत्र है—मत्र है!!! अर्थात् जो आपको द्रव्य-गुण-पर्याय मे ध्याता हुआ अपने को ही ध्यान का ध्येय बनाता है, उसको विकराल से विकराल अग्नि का भी भय नही रहता। उसके हृदय मे शान्ति सुधा का वह शीतल सलिल बहता है कि जिसमे भय-क्रोध आदि सतापो का कोई अस्तित्व ही नही रहता।

यद्यपि लोक मे अग्नि का विरोधी तत्त्व जल को कहा गया है परन्तु वह भी अग्नि से परास्त होकर शोषण कर लिया जाता है। इसलिए आचाय मान-तुग जी ने लौकिक जल की नि सारता और अलौकिक जल अर्थात् भगव नाम स्मरण की उपादेयता यहाँ सिद्ध की है। अन्तस मे तो नामस्मरण ही निश्चयत जल है परन्तु बाह्य मे वही मत्रित जल के प्रतीक रूप मे दिखाई देता है। उसके छिडकने मात्र से सामान्य अग्नि ही नही, दावाग्नि भी एकदम शान्त हो जाती है।

ससार के समस्त प्राणी ऐसी ही दावाग्नि मे फँसे हुए है। इस भव-अटवी मे चारो ओर आग लगी है—निकलने का कोई मार्ग नही!! और आग को बुझाने के सभी पुरुपार्थ निष्फल हो रहे है! केवल वे ही इस दावाग्नि से सुरक्षित है जिनके निष्कपट हृदय मे आपके पावन नाम का भाव-स्मरण हो रहा है। वे ससार की राग की आग मे नही जल रहे है बल्कि वीतरागता और साम्यरस के शीतल सरोवर मे निमग्न है। ऐसे श्रद्धालु सम्यक्त्वी भक्तो को न भय है, न भव है, न सताप है। उनकी दृष्टि मे तो भवो के भावो का अभाव है।

The conflagration of the forest, which is equal to the fire fanned by the winds of the doomsday and which emits bright burning sparks and which advances forward as if to devour the world, is totally extinguished by the recitation of Thy name 40

The repeating of your name is a water, capable to put out the conflagration of a forest, which, rising up infront kindled by wind, (blowing) at the time of deluge, tossing up sparks and blazing up in flames, is, as it were, going to swallow up the whole creation 40

अन्वयः

यस्य पुस हृदि त्वन्नामनागदमनी (स) निरस्तशङ्क रक्तेक्षणम् समद-कोकिलकण्ठनीलम् क्रोधोद्धतम् आपतन्तम् उत्फणम् फणिनम् क्रमयुगेन आक्रामति।

शब्दार्थ

यस्य—जिस (के)

पुस —पुरुष के—मानव के—मनुष्य के।

हृदि—हृदय मे—चित्त मे—मानस मे।

त्वन्नामनागदमनी—आपके नाम रूपी नागदमनी सर्प को शान्त कर देने वाली जडी नागदौन (अस्ति) है।

विशेषार्थ —त्वत्—आपके नाम—उस रूपी नागदमनी वही हुआ त्वन्ना-मनागदमनी।

नागदमनी एक प्रकार की जडीबूटी होती है। जिसे नागदौन भी कहते हैं। यह शिमले तथा हजारे मे पाया जाने वाला छोटे आकार का एक पहाडी वृक्ष जिसकी लकडी भीतर से सफेद और मुलायम होती है। लोगो का विश्वास है कि इस लकडी के पास साँप नही आत। कही-कहीं इसे नागदौना भी कहते हैं। नागदौना एक पौधा होता है जिसमे डालियाँ और टहनियाँ नहीं होती। इसकी पत्तियाँ हाथ भर लम्बी तथा दो या ढाई अगुल चौडी होती हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कडुआ, हलका, त्रिदोषनाशक तथा सूजन प्रमेह ज्वर को दूर करने वाला होता है। यह विषनाशक होता है। इसके द्वारा सर्प को वश मे किया जाता है—अथवा सर्प को दमन करने वाली ऐसी जगली विद्या जिसे नागदमनी कहा जाता है।

(स) (वह मनुष्य)

निरस्तशङ्क —भय रहित होता हुआ—शका रहित होता हुआ।

विशेषार्थ —निरस्त—दूर हुई है शङ्का—जिसकी वही हुआ निरस्तशङ्क अर्थात् नि शङ्क-निर्भय होता हुआ।

रक्तेक्षणम्—लाल आँखो वाले—रक्तवर्ण नेत्रो वाले।

विशेषार्थ —रक्त—लाल रग की ईक्षण आँखें है जिसकी वही हुआ रक्ते-क्षण। (द्वितीयान्त एक वचन)

समदकोकिलकण्ठनीलम्—उन्मत्त कोयल की ग्रीवा के समान काले।

विशेषार्थ —मद सहित वही हुआ समद—उन्मत्त ऐसा कोकिल—कोयल

उसके कण्ठ—ग्रीवा के समान नील—श्यामवर्ण वाला वह हुआ समदकोकिल कण्ठनील (द्वितीयान्त एक वचन)।

क्रोधोद्धतम्—क्रोध (गुस्से) के कारण उद्दण्ड—अत्यन्त क्रोधायमान।

विशेषार्थ :—क्रोध—गुस्से से उद्धत—उदण्ड हुआ वह क्रोधोद्धत (द्वितीयान्त एक वचन)।

आपतन्तम्—सामने आते हुए (द्वितीयान्त एक वचन)।

उत्फणम्—ऊपर की ओर फन उठाये हुए (द्वि० एक वचन)।

विशेषार्थ —उत्—ऊपर की ओर उठाये हुए है। फण—फन (पत्ते के स आकार मे फैलाया हुआ साँप का सिर)

फणिनम्—सर्प को-भुजङ्ग को (द्वितीयान्त एक वचन विशेषण)।

क्रमयुगेन—दोनो पैरो से।

आक्रामति—लाँघ जाता है।

भावार्थ

हे विषापहारिआद्यदेव !

जिस पुरुष के हृदय मे आपके नामस्मरण स्वरूपी नागदमनी जडी है। वह अपने दोनो पैरो से उस *लाल-लाल आँखो वाले विकराल कृष्ण सर्प* को भी नि शक-निर्भय होकर लाँघ जाता है जिसका वर्ण मतवाली कोयल के कण्ठ के समान एकदम काला है और जो क्रोधोद्धत होकर अपने फण को ऊपर की ओर उठाता हुआ डसने के लिए सीधा बढा चला आ रहा है।

अर्थात् हे भगवन् ! आपका निरन्तर कीर्तन करने वाला भक्त उस भयकर नाग पर दोनो पाँव देकर निर्भय चला जाता है।

विवेचन

भक्तामर स्तोत्र के समान ही एक और महाप्रभावक स्तोत्र सस्कृत स्तोत्र साहित्य मे सुप्रचलित है जो विषापहार स्तोत्र कहा जाता है। उसकी रचना की पृष्ठ भूमि मे भी सत्य की धरातल पर स्थित एक चमत्कारी ऐतिहासिक कथावस्तु विद्यमान है। आठवी-नवी शताब्दी का मध्ययुग वस्तुत एक ऐसा भारतीय युग था जिसमे शैव, वैष्णव, जैन एव बौद्ध धर्म मे परस्पर सम्प्रदाय-गत प्रतिस्पर्द्धा मची हुई थी। तत्कालीन राजर्षि सत-श्रमण-महात्मा आदि राजा और प्रजा को अपने प्रभाव मे लाने के लिए विविध प्रकार के मत्र तत्र-औषधि आदि का प्रयोग अपनी साधनाओ-तपस्याओ और ऋद्धियो के बल पर

करने के लिए तत्पर थे। दैवी चमत्कारों से आकर्षित होकर राजा और प्रजा समेत सारा देश का देश ही तद्धर्मानुयायी हो गया था।

विषापहार स्तोत्र के रचयिता श्री धनञ्जय कवि भी उस युग के एक ऐसे ही भक्त थे जिन्होंने अपनी भावपूर्ण जिनेन्द्रभक्ति द्वारा अपने उस मरणासन्न इकलौते शिशु को पुनर्जीवन प्रदान किया था जिसे कि एक भयंकर काले नाग ने डस लिया था। तात्पर्य यह कि भावपूर्वक स्मरण किया हुआ यह एक ऐसा मंत्र है कि जिसके प्रभाव से सर्पादिक विषधर जन्तु द्वारा डसे जाने पर भी उनकी मूर्च्छा या बेहोशी दूर हो जाती है। कहा भी है—

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

यही नहीं बल्कि अपने चैतन्य स्वरूप के विस्मरण रूप जो अनादि-कालीन मूर्च्छा जीव के साथ लगी है वह भी स्वरूप स्मरण से तुरन्त दूर हो जाती है—कहा भी है—

"अनादीनी मूर्च्छा विषतणी त्वरा थी उतरती" (गुजराती)

आध्यात्मिकता के बल पर यह तो हुआ मंत्र साधना का चमत्कार। इसके अतिरिक्त मणि-औषधि और रसायन साधनों के भौतिक चमत्कार भी लोक में बहुलता से देखे सुने जाते हैं। ऐसी-ऐसी जड़ी-बूटियाँ दुनिया में विद्यमान हैं जिनके प्रयोग से सर्पादिक जहरीले जन्तुओं के विष भी निष्प्रभाव हो जाते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में एक ऐसी जड़ी बूटी का प्रकरण है जिसको हाथ में लिए रहने से ही सर्प का विष अपना कुछ भी असर नहीं करता। संस्कृत में उसे नागदमनी और बोलचाल की भाषा में उसे नागदौन कहा जाता है। भले ही इस नागदमनी जड़ी ने आज अपना वह प्रभाव खो दिया हो तो भी हम देखते हैं कि अभी भी बहुत से सपेरे ऐसे हैं जो मंत्र तंत्र विद्या से अथवा विविध जंगली जड़ीबूटियों के द्वारा सर्प से दंशित व्यक्ति को क्षणमात्र में निर्विष कर देते हैं।

संसार के क्रूर प्राणियों में जहाँ सिंहादिक की गणना प्रमुख रूप से होती है वहाँ विषधर प्राणियों में काले नाग का नाम भी मुख्यता से लिया जाता है। काले नाग को देखने मात्र से हृदय काँप जाता है। डसे जाने पर तो क्वचित् कदाचित् ही कोई मनुष्य जीवित बच सकता है। साक्षात् यमराज का वह अवतार होता है। दुर्भाग्य से यदि उस पर पैर पड़ जाय तो वह अपना बदला निश्चित ही अपने वैरी से लेता है। उसके क्रोध का ठिकाना नहीं रहता

आँखें लाल-लाल हो जाती हैं। फण को ऊपर उठाकर एकदम अपने शत्रु पर वह झपटता है।।

आचार्य मानतुंग जी इस श्लोक से संकेत करते हैं कि कोई फणधर नाग इतना काला होता है जितना कि मतवाली कोयल का कण्ठ।। फिर यदि उस पर पैर पड़ जाये तो उसके क्रोध का क्या कहना ? वह फण उठा करके पदाक्राता को कभी भी जीवित नहीं छोड़ता। परन्तु ऐसा सर्प भी उस व्यक्ति का कुछ नहीं बिगाड़ सकता जिसने कि आप के पावन नाम का सहारा लिया हो। वह तो ऐसे भयंकर सर्प को भी निडर होकर जानबूझ कर लाँघ जाता है। क्योंकि उसके पास एक ऐसी जड़ी है जिसके बल पर भयंकर से भयंकर सर्प भी वशीभूत हो जाता है। नागदमनी जड़ीबूटी तो उसका बाह्य प्रतीकात्मक नाम है, असली जड़ी तो, हे भगवन् ! भाव पूर्वक स्मरण किया गया आपका नाम है। अर्थात् आपके द्रव्य-गुण-पर्याय को लक्ष्य में रखकर जिसने आत्म स्वरूप को पहिचाना उसका ही भव-भ्रमण रूपी विष तुरन्त उतर जाता है।

The man, in whose heart abides the Mantra that subdues serpents, viz, Your name, can interpidly go near the snake, which has its hood expanded, eyes blood-shot, and which is haughty with anger and black like the throanof the passionate cuckoo 41

A man possessing at his heart Nagdammi of your name, fearlessly treads on a serpant who, being mad with fury and hearing red eyes has raised up its head to file with and whose neck is as black as that of a cuckoo 41

× × ×

मूल-श्लोक (युद्ध भय-विनाशक)

वल्गत्तुरङ्ग - गजगर्जित - भीमनाद—
माजौ बल बलवतामपि[1] नृपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूख - शिखापविद्ध,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशुभिदामुपैति ॥४२॥

संग्राम-भय विनाशक जिन नाम-कीर्तन

जहाँ अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर।
शूरवीर नृप की सेनायें, रव करती हो चारो ओर॥
वहाँ अकेला शक्तिहीन नर, जपकर सुन्दर तेरा नाम।
सूर्य तिमिर सम शूर सैन्य का, कर देता है काम तमाम ॥४२॥

1—"बलवतामरि" ऐसा भी पाठ है।

अन्वय.

आजौ त्वत्कीर्तनात् वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनादम् बलवताम् अरिभूपतीनाम् बलम् उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धम् तम इव आशु भिदाम् उपैति ।

शब्दार्थ.

आजौ—संग्राम में—रणभूमि में-युद्ध स्थल में—लडाई के मैदान में ।

विशेषार्थ .—आजि—युद्ध उसमें, उसके विषय में । सप्तमी एक वचन ।

त्वत्कीर्तनात्—आपके नाम के कीर्तन से—आपका स्मरण करने से—आपकी स्तुति करने से—आपका वारम्बार नाम जपने से ।

वल्लत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनादम्—उछल-उछल कर हिनहिनाते हुए घोडो और गर्जना करते हुए हाथियो की भयकर आवाज हो रही है जिसमें ऐसी ।

विशेषार्थ —वल्गत्—उछलते हुए ऐसे तुरङ्ग—घोडे तथा गज—हाथी उनके द्वारा गर्जित—गर्जना की गई और उससे जिस प्रकार की भीमनाद—भयकर आवाज हो रही है जिसमे ऐसा यह पद बलम् का विशेषण है ।

बलवताम्—पराक्रमी-शक्तिशाली सेनाओ मे युक्त ।

विशेषार्थ —यह पद अरिभूपतीनाम् पद का विशेषण होने से षष्ठी के बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है ।

अरिभूपतीनाम्—शत्रु राजाओ की ।

विशेषार्थ —अरि—शत्रु ऐसे वे भूपति—राजा वही हुए अरिभूपति उनके द्वारा । यह पद षष्ठी के बहु वचन मे प्रयुक्त हुआ है ।

बलम्—सैन्य-सेना-फौज ।

उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धम्—उदीयमान दिवाकर की किरणों के अग्रभाग से भेदे गये ।

विशेषार्थ —उद्यत—उदय होता हुआ ऐसा दिवाकर—सूर्य उसकी मयूख—किरण उसकी शिखा—अग्रभाग उसके द्वारा अपविद्ध—दूर किया हुआ वही हुआ उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्ध ।

यह पद तम —का विशेषण है इससे प्रथमा के एक वचन में आया है ।

तम इव—अन्धकार के सदृश ।

आशु—तत्काल-जल्दी से जल्दी । अति शीघ्र ।

भिदाम् उपैति—विनाश को प्राप्त होती है ।

भावार्थ

हे कर्मारिविजेता आदीश्वर !

ऐसे भीषण रणक्षेत्र में, जहाँ कि घोड़े उछल-उछल कर हिनहिना रहे हों। भीमकाय हस्ती भयंकर चिघाड़ कर रहे हों। शत्रुपक्ष के राजाओं की फौज अत्यन्त शक्तिशाली और अपराजेय हो। तो भी वह आपकी चरण-कृपा से झटपट तितर-बितर हो जाती है। अर्थात् शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। मानो कि उदित होता हुआ सूर्य अपनी प्रखर किरणों की नोकों से अंधेरे को छिन्न-भिन्न कर रहा होता है।।

विवेचन

विविध प्रकार के लौकिक भयों से मुक्ति दिलाने वाले श्लोकों की रचना करने के पश्चात् स्तुति कर्ता मुनिराज मानतुंग जी ३८ तथा ३९ वे छंद में भीषण रण संग्राम का दृश्य उपस्थित करते हुए कहते हैं कि आपका भक्त भले ही अपराजेय शक्तिशाली शत्रु सैन्य के बीच घिर गया हो, कभी भी परास्त नहीं होता बल्कि सामान्य होते हुए भी शत्रुओं की फौजों को तुरन्त तितर-बितर कर देता है।

महाभारत का युद्ध साक्षी है कि पाण्डव पक्ष अल्प संख्यक, राज्य सत्ता विहीन और साधन हीन होने पर भी अन्ततोगत्वा विजयी हुआ। उसके विपरीत उनके शत्रुपक्ष वाले कौरव गण न केवल बहु संख्यक सुभट महारथियों से युक्त थे अपितु साम-दाम-दंड-भेद आदि शक्तियों के कूट नीतिज्ञ थे। दु शासन, दुर्योधन, कर्ण, द्रोण आदि सभी शूरवीर सुभटों की शक्ति एक ओर ही लगी थी। सच-मुच में ऐसे एक पक्षीय सबल शत्रुओं से लोहा लेना और उन्हें जीतना किसी दैवी कृपा का ही फल होता है। वह दैवी कृपा और कुछ नहीं बल्कि साक्षात् नारायण कृष्ण का स्वय पाण्डव पक्ष की ओर झुकाव था। तात्पर्य यह कि जिसने भगवद्भक्ति का पक्ष लिया वह भले ही असंख्य प्रचड शत्रु सेनाओं के बीच घिर गया हो। भले ही उस पर अनायास जबरदस्त आक्रमण कर दिया गया हो। शत्रु पक्ष के घोड़े उछल-उछल कर हिनहिना रहे हों!! हाथी चिंघाड़ रहे हों!! चारों ओर भाग दौड़ और लूटपाट मची हुई हो! घोर निराशा का वातावरण हो!! इतने पर भी भक्त यदि अपनी विजय चाहता हो, शत्रुओं को नष्ट कर देना चाहता हो, एक वीर की भाँति अपनी छाती पर ही शत्रु शस्त्रों के वार झेलना स्वीकार करता हो, विवश पीठ दिखाने की स्थिति में हो, तो ऐसे आड़े वक्त में जिसने भी आपका स्मरण किया, कीर्तन किया,

अन्वय

त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिण कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणा तुरयोधभीमे युद्धे विजितदुर्जयजेयपक्षा (सन्त) जयम् लभन्ते ।

शब्दार्थ

त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिण—आपके चरण रूपी कमलो के समूह का सहारा लेने वाले भद्र परिणामी भव्य पुरुष ।

विशेषार्थ—**त्वत्**—आपके, **पाद**—चरण रूपी **पङ्कज**—कमल वही हुआ त्वत्पादपङ्कज जिसका **वन**—समूह अथवा उपवन उसका **आश्रय**—सहारा-शरण ग्रहण करने वाले वही हुआ **त्वत्पादपङ्कजवनाश्रियन्** (यह पद प्रथमा के बहु वचन मे है ।

कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोधभीमे—वरछी व भालाओ के नुकीने अग्रभाग से भेदित-क्षत-विक्षत-घायल हाथियो के रक्त रूपी जल प्रवाह मे वेग से—तेजी मे उतर कर तैरने मे उतावले ऐसे योद्धाओं से भयकर।

विशेषार्थ—**कुन्त**—भाला व वरछी, उसका **अग्र**—नुकीला भाग वह हुआ कुन्ताग्र जिससे **भिन्न**—भेदित हुए, क्षत-विक्षत हुए-घायल हुए, ऐसे **गज**—हाथियो उनका **शोणित**—रक्त रूपी **वारिवाह**—जल प्रवाह, उसमे **वेग**—वेग से-तेजी से **अवतार**—प्रवेश करने मे, उतरने मे तथा **तरण**—तैरने मे, पार करने मे **आतुर**—उतावले ऐसे **योध**—योद्धाओ से युक्त **भीम**—भयकर वही हुआ **कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोधभीम** ।

यह पद युद्ध का विशेषण होने से सप्तमी के एक वचन मे प्रयुक्त हुआ है ।

युद्धे—युद्ध मे, सग्राम मे, रण भूमि में ।

विजितदुर्जयजेयपक्षा—कठिनता से जीता जा सके ऐसे शत्रु पक्ष को जीत लिया है जिन्होने ऐसे ।

विशेषार्थ—**विजित**—जीते जा चुके हैं ऐसे **दुर**—अत्यन्त कठिनता से **जय**—जीते जाने वाले **जेयपक्ष**—शत्रुपक्ष ।

जो जीतने योग्य होय वह जेय ऐसा जो पक्ष वह जेय पक्ष अर्थात् शत्रु-पक्ष यह पद **त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिण** का विशेषण होने से प्रथमा के बहु-वचन में प्रयुक्त हुआ है ।

जयम् लभन्ते—जय को प्राप्त होते हैं—विजय प्राप्त करते हैं ।

भावार्थ

हे अनन्तशक्तिमन् !

घनघोर भीषण सग्राम हो रहा हो। हाथियो को वरछी-भाले की नोको से इतना अधिक छेदा-भेदा जा रहा हो कि उनसे खून की नदियाँ पानी जैसी वह निकलीं हो। उसके प्रवाह में योद्धा लोग अतरा रहे हो। उसे तैर कर पार करने के लिए वे उतावले हो रहे हो। शत्रु पक्ष इतना प्रवल हो कि उसे जीतने में दातो पसीना आ रहा हो। तो भी हे भगवन् ! आपका वह भक्त योद्धा वात की वात मे ऐसे दुर्जेय दुश्मन को परास्त कर देता है। क्योकि वह आपके मजुल चरण रूपी कमलों के शीतल वनो की छत्रच्छाया में आ पहुँचा है।।

विवेचन

भक्त शिरोमणि आचार्य मानतुग मुनि जिनेन्द्र भक्ति रस मे इतने ओत प्रोत हैं कि तथाकथित साहित्यिक नव रस भी अपनी समस्त आलकारिक छटा समेत उसमे समर्पित हो चुके हैं।

प्रस्तुत श्लोक में युद्ध क्षेत्र के वहाने रौद्र, भयानक, वीर और वीभत्स रस का स्पष्ट चित्र खीचा गया है परन्तु भगवान के चरण-कमल रूपी शीतल शान्त वन के आगे वे सभी रस अपने घुटने टेक देते हैं ?? देखिये कितना वीभत्स दृश्य है युद्ध क्षेत्र का —कि हाथियो के खून की नदिया जल की भाँति वह निकलती हैं। योद्धा लोग उन्हें तैर तैर कर लडने को उतावले हो रहे हैं। यह वीररस का शब्दाकन है। शत्रुओ के क्रोध का ठिकाना नही है। यह रौद्र रस का चित्राकन है। सग्राम इतना भीषण भयकर और घमासान है कि हृदय काँप काँप उठता है, दिल दहल उठता है आदि-आदि भयानक और करुण रस के उदाहरण हैं—तो भी प्रशान्त रस उन पर विजयी होता है। क्योकि आपके शीतल-शान्त-चरण-कमल वन की छत्रच्छाया में आपका भक्त आ पहुँचा है। क्रोधादिक सारे वैभाविक रस एक स्वाभाविक शान्त रस के समक्ष अपना अस्तित्व विलीन कर देते हैं। "त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते" पद से यही आध्यात्मिक अर्थ ध्वनित होता है।।

Those, who resort to Thy louts-feet, get victory by defeating the invincibly victorious side (of the enemy) in the battle-field made terrible with warriors, engaged in crossing speedily the flowing currents of the river of thd blood-water of the elephants pierced with the pointed spears 43

In a battle, the fierceness of which was enhanced by (the cries) of soldiers, being drifted away by and eager to cross over the blood-currents of elephants, rent by the points of lances the persons, by resotting to the forest of your lotus like feet, attain victory over invincible opponents 43

मूल-श्लोक (सर्वापत्ति विनाशक)

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषण-नक्र - चक्र[1]—
पाठीनपीठ - भयदोल्बण - वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग शिखरस्थित - यानपात्रा—
स्त्रास विहाय भवत. स्मरणाद्[2] व्रजन्ति ॥४४॥

भव-समुद्र तारिणी जिनेन्द्र भक्ति

वह समुद्र कि जिसमे होवे, मच्छ-मगर एव घडियाल।
तूफा लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल॥
भँवर चक्रमे फँसी हुई हो बीचो बीच अगर जल-यान।
छुटकारा पाजाते दुख से, करनेवाले तेरा ध्यान॥४४॥

१—"चक्रे" ऐसा भी पाठ है। २—"तव सम्मरणात्" ऐसा भी पाठ है।

अन्वय.

क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ अम्भोनिधौ रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थित यानपात्रा भवत स्मरणात् त्रासम् विहाय व्रजन्ति ।

शब्दार्थ·

क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्बणवाडवाग्नौ—अत्यन्त डरावने मगर-मच्छ, घडियाल आदि के कुपित होने से तथा भीमकाय पाठीन नाम के मत्स्य की पीठ जहाजो से टकराने के फल स्वरूप सघर्षण से उत्पन्न विलक्षण वडवानल सुलग रहा है जिसमे ऐसे भयकर क्षुब्ध ।

विशेषार्थ—**क्षुभित**—क्षोभ को प्राप्त होने से, **भीषण**—डरावने बने हुए, ऐसे **नक्र**—मगर मच्छ, **चक्र**—घडियाल तथा **पाठीन**—भीमकाय मछली की, **पीठ**—शरीर मे पेट की दूसरे ओर के भाग की टक्कर से, **भयद्**—भयकर (तथा) **उल्वण**—अद्‌भुत, विलक्षण, **वाडवाग्नि**—वडवानल से युक्त। वही हुआ **क्षुभितभीषणनक्रचक्रपाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नि**—यह पद अम्भोनिधौ का विशेषण होने से सप्तमी के एक वचन मे प्रयुक्त हुआ है ।

अम्भोनिधौ—समुद्र मे-सागर मे ।

रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा—उछलती-लहराती ऊपर नीचे को होती हुई लहरो की शिखर पर-चोटी पर-सिरे पर डगमगा रहे—विचलित हो रहे हैं जहाज जिनके ऐसे पुरुष ।

विशेषार्थ—**रङ्गत्**—तीव्रता से उछलती हुई **तरङ्ग**—मौजो-लहरों के **शिखर**—अग्रभाग (चोटी-सिरे) पर **स्थित**—विचलित हो रहे हैं—डगमगा रहे हैं **यान**—जहाज जिनके ऐसे **पात्र**—पुरुष । वही हुआ **रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थित यानपात्र** । यह पद प्रथमा के बहु वचन मे है ।

भवत—आप के ।

स्मरणात्—स्मरण करने से ।

त्रास—आकस्मिक भय को ।

विहाय—छोडकर ।

व्रजन्ति—आगे बढे चले जाते हैं—गन्तव्य स्थान को पा लेते हैं ।

भावार्थ

हे तरणतारण तीर्थङ्करदेव !

विकराल मगरो, घडियालो तथा पाठीन पीठ जाति के भीमकाय मत्स्यो

से युक्त भयकर समुद्र मे गजब का विलक्षण वडवानल सुलग रहा हो, जिसके कारण उसमे विकट खलबली मची हुई हो ऐसे डरावने सागर (समुद्र) को भी वे मनुष्य बिना किसी कष्ट के—आसानी से, मजे से पार हो जाते हैं जो आपका स्मरण करते हैं। भले ही उनके जहाज जिन पर वे स्थित हो उछलती हुई उत्ताल तरङ्गो की छाती पर अतराते हुए डावाडोल हो रहे हो !

विवेचन

काव्य ग्रथो मे समुद्र को, महासमुद्र को जहाँ गम्भीरता और मर्यादा का प्रतीक मानकर उनकी स्तुति की गई है, वहाँ नैतिक धर्म-ग्रन्थो मे भव-भ्रमण का अथाह क्षारीय पारावार कहके उसकी निन्दा की गई है !! कुछ भी हो असख्यात् द्वीप-समुद्रो से मध्यलोक वेष्ठित है। थल भाग की अपेक्षा जल भाग दूने-दूने विस्तार वाला है ! जितने अधिक थलचर प्राणियो मे हम परिचित हैं उतने जलचर जीव जन्तुओ के आकार-प्रकार और नाम से नही। मगरमच्छ-घडियाल आदि इनेगिने भीमकाय प्राणियो के नाम ही हमे मालूम हैं !! समुद्रीय गोताखोर एव अन्वेपको ने उनके अन्दर पैठकर अवश्य ही विविध भाँति के भयावह विद्रूप जल जन्तुओ का पता लगाया है। ऐसे ऐसे विशाल-काय, वज्र शरीर वाले प्राणी उनमे पाये जाते हैं कि बडे-बडे जहाज उनसे टकराकर आगे नही बढ पाते या डूब जाते हैं। कभी-कभी तो जहाज के जहाज ही उनके मुख द्वारो मे प्रवेश कर जाते है ! पाठीन जाति का एक ऐसा महा-मत्स्य होता है कि जिसकी पीठ और जहाजो के सघर्षण से अग्नि उत्पन्न होकर वडवानल का रूप धारण कर लेती है। पानी मे आग का लगना कुछ विचित्र सा अवश्य प्रतीत होता है परन्तु वैज्ञानिक तथ्य यह है कि पानी से लदे उडते हुए मेघ जब आपस मे टकराते हैं तब उनके धनात्मक और ऋणात्मक सघर्ष मे विद्युत् उत्पन्न होती है। वह अग्नि यदि क्षणिक न हो तो ब्रह्माण्ड ही भस्मी भूत हो जावे। आज के वैज्ञानिक भी जलशक्ति से कृत्रिम विद्युत्-अग्नि उत्पन्न कर रहे ह। यहाँ केवल तात्पर्य इतना ही है कि एक तो महासागर वैसे ही अतल-अथाह अपार और भयङ्कर होते है कि उन्हे सामान्य पुरुष तैर कर पार नही कर सकते। स्वय चौथे श्लोक मे आचार्य मानतुग महाराज ने स्वीकार किया है कि—

> कल्पान्तकाल पवनोद्धत नक्र-चक्र।
> को वा तरीतुमलमम्बुनिधि भुजाभ्याम् ॥

भले ही कवियो की दृष्टि मे समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लघन नहीं करता हो तथापि जव उसमे ज्वारभाटा उत्पन्न होता है तो उसकी लहरें आसमान को छूती हैं। तूफान उठने पर तो सम्पूर्ण समुद्र क्षुब्ध हो जाता है। आलोडित होने पर तो उसमे ओर-छोर खलवली मच जाती है। उसके अन्दर रहने वाले असख्य जलचर प्राणी घवडा कर उसे और भी अधिक क्षुब्ध करते हैं। चारो ओर अशान्ति का वातावरण छा जाता है। कल्पना मात्र से भय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे ही क्षोभयुक्त महा समुद्रो मे यदि वडवानल सुलग उठी हो, ज्वार भाटा आया हो! प्रलय कालीन तूफान चल रहे हो! मगर मच्छ, घडियाल खलवली मचा रहे हो! और फिर उनकी उत्ताल तरङ्गो की छाती पर यदि कोई जहाज तैर रहा हो तो क्या उसकी कुशलता की कल्पना भी कोई कर सकता है? कदापि नही!! डावाडोल होकर भँवर चक्र मे फँसकर वह तो यात्रियो समेत कभी भी जल मे डूव कर नष्ट हो सकता है। तथापि ऐसे आडे वक्त में तो केवल अपना पुण्य कर्म अथवा भगवन्नाम स्मरण रूपी धर्म कार्य ही अपनी रक्षा कर सकता है!!

कवि कहते है कि—

हे भगवन् आपका सकीर्तन करने से जहाज मे वैठे हुए मनुष्य मजे से विना किसी कष्ट के पार हो जाते है। मौत के मुँह मे वैठे हुए भी वे अभय रहते है और किनारे लग जाते हैं!!

भव-समुद्र भी अथाह खारा पारावार है। विविध प्रकार के कर्म रूपी भयावह जलचर प्राणियो से यह ससार-सागर क्षुब्ध हो रहा है। शुभाशुभ रागकी आग समुद्र में लगी हुई है। मानव पर्याय की जहाज उस सागर में अतरा रही है। उसे कुशलता पूर्वक किनारे लगाने वाला केवल भाव पूर्वक किया हुआ जिनेन्द्र भगवान का नाम-स्मरण ही एक मात्र सहायक है!! उक्त च—

> यह भव-समुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठही।
> अतिदृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही॥
>
> —कविवर द्यानतराय जी

Even on that ocean, which contains the dreadful submarine fire, the agitated and therefore, terrific alligators and fishes fearlessly move those, though their ships are placed on high dashing waves, who but remember Thee 44

Persons in the ships, balancing on the rising waves in ocean, agitated by the terrible crocodiles, porpoises and whales as well as by submarine fire, sail to the shore without any fear by repeating your name 44

× × ×

मूल-श्लोक (जलोदरादि रोग एवं सर्वापत्ति नाशक)

उद्भूतभीषण - जलोदर - भारभुग्ना[1]
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पाद पङ्कज रजोऽमृत दिग्धदेहा,
[2]मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपा ॥४५॥

सर्व व्याधि विनाशक जिनेन्द्र चरण-रज

असहनीय उत्पन्न हुआ हो, विकट जलोदर पीडा भार।
जीने की आशा छोडी हो, देख दशा दयनीय अपार॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद-रज सजीवन।
स्वास्थ्य लाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुन्दर तन॥४५॥

१—"भग्ना" ऐसा भी पाठ है। २—"सद्यो" ऐसा भी पाठ है।

अन्वय·

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना शोच्याम् दशाम् उपगता च्युतजीविताशा मर्त्या त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा (सन्त) मकरध्वजतुल्यरूपा भवन्ति।

शब्दार्थ.

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्ना —उत्पन्न हुए भयंकर 'जलोदर' के भार से या वजन से वक्र (टेडे) हो गये है ऐसे,

विशेषार्थ —उद्भूत—उत्पन्न हुए-पैदा हुए, भीषण—भयङ्कर ऐसा जलोदर—रोग विशेष, उसके भार—वजन, से भुग्न—टेडे होगए-वक्र होगए वही हुआ उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्न। यह पद मर्त्या का विशेषण होने से प्रथमा के बहु वचन मे प्रयुक्त हुआ है।

भुग्ना के स्थान पर भग्ना ऐसा पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ टूटा हुआ अर्थात् बीच से टूटा हुआ ऐसा समझना चाहिए।

जिस रोग विशेष से पेट मे पानी भरता जाय और फल स्वरूप पेट फूलता ही जाय अर्थात् वृद्धि को प्राप्त करता जाय तथा उदर के अतिरिक्त शरीर के अन्य अवयव गलते जायें—क्षीण पडते जायें उसको आयुर्वेद शास्त्र मे 'जलोदर' कहा गया है। इस रोग की गिनती कष्ट साध्य महारोगों मे की जाती है।

शोच्याम्—शोचनीय-दयनीय।

दशाम्—हालत को—अवस्था को।

उपगता —प्राप्त होने वाले।

विशेषार्थ —उपगता मर्त्या का विशेषण होने से प्रथमा के बहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है।

च्युतजीविताशा —और जिन्होंने जीवन की आशा छोड दी हो, ऐसे।

विशेषार्थ·—च्युत—त्यक्त अर्थात् त्याग दी है—छोड दी है जिन्होंने जीवित—जीवन की आशा-जिन्दा रहने की आशा। वह हुआ च्युतजीविताशा यह पद भी मर्त्या का विशेषण होने से प्रथमा के बहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है।

मर्त्या —मनुष्य,

त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा —आपके पाद-पद्मो की रज (धूलि) रूपी अमृत से लिप्त कर लिया है अपने शरीर को जिन्होंने ऐसे।

विशेषार्थ.—त्वत्—आपके पादपङ्कज—चरणरूपी कमल उसके रजोऽमृत—

विवेचन

अभी तक स्तोत्र कर्ता मुनीश्वर बाह्य भयकर दैविक और भौतिक आधियों (विपत्तियो) के निवारण का ही उपाय बतला रहे थे परन्तु अब इस छद मे वे दैहिक व्याधियो के निराकरण का भी सफल उपाय निरूपित कर रहे हैं। वे कहते है कि जिनके चरण-कमलो की रज से जन्म-जरा और मृत्यु जैसे महा भयकर रोग भी सदैव के लिए विनष्ट हो जाते है। तब इन सासारिक व्याधियो की तो बात ही क्या है? श्री जिनेन्द्रदेव के चरणारविन्दो का पराग, विभूति, धूलि वह अमृत है कि जिसको शरीर पर लगाने से कुरूप से कुरूप व्यक्ति भी कामदेव के समान सुदर दैदीप्यमान हो जाते हैं! मरणासन्न से मरणासन्न व्यक्ति भी दीर्घायुष्य हो जाते हैं—अमर हो जाते हैं!! जब ऋद्धिधारी मुनीश्वरो को स्पर्श करके आने वाली वायु से भी नाना प्रकार की व्याधियें दूर हो जाती है तो साक्षात् तीर्थङ्करो की चरण-विभूति के प्रताप का तो क्या कहना? सैकडो पौराणिक दृष्टान्त हमारे सामने हैं कि श्रीपालादिक करोडो कोटिभटो को भी जब गलित कुष्ट जैसे महा भयकर रोग उत्पन्न हुए तो गधोदक को शरीर पर लगाने मात्र से ही वे कामदेव के समान पुन स्वरूपवान

बन गए । एकीभाव स्तोत्र के कर्ता श्री वादिराज जी मुनीश्वर का कायाकल्प भी इसका एक सुन्दर उदाहरण है । सन्तो, महासन्तो और तीर्थङ्करो के चरण कमल जहाँ पडते हैं वहाँ की धूल भी इतनी पवित्र और अमृतमयी हो जाती है कि उसको माथे पर लगाने से कुरूप काया भी कचन काया वन जाती है । रहीम कवि का एक दोहा है कि—

धूर धरत नित शीश पर, कहु रहीम केहि काज ।
जेहि रज मुनि पतनी तरी, सो ढूंढ़त गजराज ।।

हाथी अपनी सूंड से निरन्तर धूलि स्नान इसलिए करता है कि वह उन रामचन्द्र जी के चरण-कमलों की धूल को खोज रहा है जिसके स्पर्श से पाषाणी भी अहिल्या वन गई थी । वह भी चाहता है कि कही न कही तो वह धूल मिलेगी और मेरा उद्धार होगा ! रामायण मे सत तुलसीदास जी कहते हैं कि केवट श्री रामचन्द्र जी को नाव पर इसलिए नही चढने देता कि कही उनके चरण-कमलो की धूल से नाव सजीव न हो उठे ! और इस भांति वह आ-जीविका से वचित हो जावेगा । यहाँ धूल का महत्त्व नही वल्कि सतो की वीतरागता का ही महत्त्व समझना चाहिए । वहुत से मत्र-तत्र-वादी भभूत या भस्म देते हैं और दावा करते हैं कि इसका लेप करने से रोग दूर हो जायेंगे पर वे यह नही जानते कि यह भभूत धूल या भस्म काहे का प्रतीक है ? उस भभूत (विभूति) का क्या रहस्य है ? ·· असल मे यह रज तो वह पुण्य विभूति है जो तीर्थङ्करो के चरण तल मे रहती है ! पुण्य तो धर्म का मैल है ! ! जहाँ रत्नत्रय रूपी धर्म रहेगा वहाँ पुण्य तो नियम से चरणो की धूल वनकर रहेगा ही । यह रज तो वह विभूति है जो तीर्थङ्करों द्वारा चार घातिया कर्मों के नष्ट करने पर प्राप्त हुई है ! यह वह विभूति है जो अनन्त चतुष्टय के नाम मे प्रसिद्ध है ।

"अरि-रज रहस विहीन"

तीर्थङ्करों की रज वास्तव मे अमृत का काम करती है । जव मात्र जिन विम्व की रज ही माथे पर लेने से रोग दूर होकर शरीर सुन्दर वन जाता है तो साक्षात् वीतराग तीर्थङ्कर देवो की चरण-रज शरीर पर लगाने से क्या भव रोग दूर नही होते होगे ? अवश्य ही होते होंगे । यह उन सयमी वीत-राग तीर्थङ्करों की रज रूपी अमृत है जिसको लगाने से शरीर सुदर ही नहीं बल्कि आत्मा भी अशरीरी हो जाती है ! !

ससार मे राजयक्ष्मा, विशूचिका, महामारी, कुष्ट, कैंसर आदि सैकडो रोग हैं । यही नही नित नये-नये रोग पैदा होते जा रहे हैं ! इन सव मे जलो-

दर महा रोग वडा ही दु खदायी प्राण लेवा और शरीर को विद्रूप कर देन वाला होता है। आचार्य श्री कहते है—कि

जो मनुष्य आपके चरण-कमलो की रज को अमृत मान कर अपने शरीर पर लपेटता है वह कामदेव के समान सुन्दर वन जाता है।

Even those, who are drooping with the weight of terrible dropsy and have given up the hope of life and have reached a deplorable condition, become as beautiful as Cupid by besmearing their bodies with the nectarlike pollen dust of Thy lotus-feet 45

Persons, bent down under the weight of the horribly risen dropsy, being in pitiable plight and with lost hopes of life, attain equality with the cupid in beauty by applying to their bodies the nectar of pollen of your lotus-like feet 45

मूल-श्लोक (बन्धन-विमोचक)

आपादकण्ठ - मुरुशृङ्खल - वेष्टिताङ्गा,
गाढ बृहन्निगड कोटि निघृष्टजङ्‌घा ।
त्वन्नाममन्त्रमनिश मनुजा स्मरन्त,
सद्य स्वय विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

सर्व बन्धन-भय निवारक जिन-स्मरण
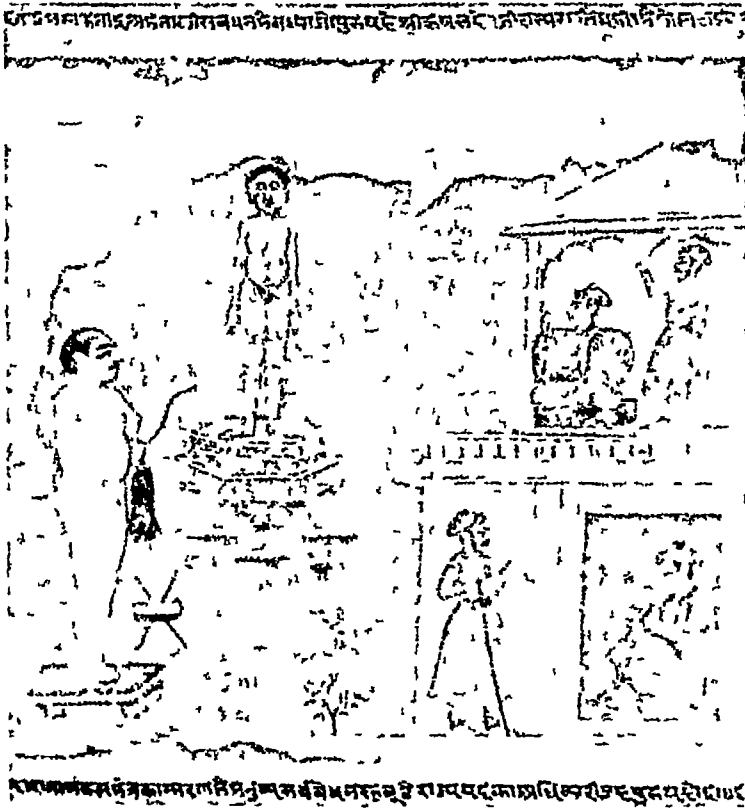
लोह-शृंखला से जकडी है, नख से शिख तक देह समस्त ।
घुटने जाँघें छिले वेडियो, से अधीर जो है अति त्रस्त ॥
भगवन् ऐसे बंदीजन भी, तेरे नाम मन्त्र की जाप ।
जपकर गत-बन्धन हो जाते, क्षण भर मे अपने ही आप ॥४६ ॥

विशेषार्थ :—**विगत**—चला गया है जिसका **बन्ध**—बन्धन का **भय**—डर वही हुआ **विगतबन्धभय** ।

यह पद भी मनुजा का विशेषण होने से प्रथमा के बहुवचन मे प्रयुक्त हुआ है ।

भवन्ति—हो जाते हैं ।

भावार्थ

हे बन्धनमुक्त !

जिनका शरीर एडी से लेकर चोटी तक बडी-बडी साकलो से जकड कर कस दिया गया हो । मजबूत लोहे की जजीरो की नोको से रगड-रगड कर जिनकी जघायें बुरी तरह छिल गई हो ! ! ऐसे कारागार मे बन्दी—परवश पुरुष आपके नाम स्मरण रूपी मन्त्र का निरन्तर जाप्य करने से तुरन्त ही बन्धन के भय से अपने आप स्वयमेव छूट जाते हैं—मुक्त हो जाते हैं ।

विवेचन

ससार का प्रत्येक प्राणी अर्थात् जीवमात्र स्वतन्त्रता प्रिय होता है । भले ही वह स्वतन्त्रता का शाब्दिक अर्थ न समझता हो परन्तु उसकी अनुभूति और भाव-भासन का आनन्द उसे अवश्य ही आता रहता है । पराधीनता, परतन्त्रता, परवशता कितनी ही सुन्दर व सुखदायी क्यो न हो, उससे छुटकारा पाकर स्वच्छन्दता और खुले वातावरण मे प्रत्येक जीव सास लेना चाहता है ! तोते को भले ही आप सोने के पिंजडे मे कैद करके रखिये ! उसे विविध मेवा-मिष्ठान्न खिलाइये, तब भी वह खुली खिडकी पाकर यथावसर 'खुले प्रकाश मे उड ही जावेगा । स्वतन्त्र और स्वावलम्बी जीव लाख-लाख कष्ट और अभावो मे भी आजादी के आनद की अनुभूति के लिए छटपटाता रहता है ! ! उसे परावलम्बन, परमुखापेक्षिता से प्राप्त सोने के ग्रास भी जहर के कौर से लगते हैं ! कैदी चाहे लोहे की बेडियो से बधा हो, चाहे सोने की मोटी जजीरों से ! आखिर कहलाएगा तो वह कैदी ही । यही कारण है कि भारत जब-जब पराधीन हुआ-गुलाम हुआ तब-तब उसने स्वतन्त्रता के लिए सग्राम किये ! ! कहते हैं कि अग्रेजी राज्य इतना सुव्यवस्थित और अनुशासित था कि उसके शासन काल मे सूर्य नही डूबता था, सभी प्रकार की सुख सम्पन्नता होने पर भी देशभक्त नेताओ ने पराधीन भारत को यह नारा लगा लगाकर मुक्त करा ही लिया कि—

"स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"

—लोकमान्य तिलक

इतिहास साक्षी है, कि परतन्त्र और गुलाम भारत मुगलों और अंग्रेजों से मुक्ति पाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा !! यह तो हुई राजनैतिक स्वतन्त्रता की व्यवस्था !! दार्शनिक व्यवस्था तो केवल दो ही तत्त्वों पर आधारित है ! वे दो तत्त्व है बंध और मोक्ष। बंध अर्थात् गुलामी-पराधीनता-सम्पूर्ण मोक्ष अर्थात् स्वतन्त्रता, आजादी, सम्पूर्ण स्वावलम्बीपना !!

जैनधर्म मे कण-कण, परमाणु-परमाणु की स्वतन्त्रता डंके की चोट पर घोषित की गई है। प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र, गुण स्वतन्त्र, और पर्याय स्वतंत्र है। एक दूसरे का कर्त्ता कोई द्रव्य है ही नही। एक मे दूसरे को मिलाने की मान्यता, जानकारी और आदत ही यथार्थ मे बन्ध है। जब कि वस्तु स्वरूप यह है कि जीव त्रैकालिक स्वभाव से निर्बन्ध ही है। वैभाविक बन्धन तो काल्पनिक ही है। द्रव्यदृष्टि से तो वह त्रिकाल ही स्वतन्त्र है। पर्याय दृष्टि से उसकी अवस्था मे बन्धन है। गाय यद्यपि हमको खूंटी और रस्सी से बंधी हुई प्रतीत होती है परन्तु परमार्थ दृष्टि से देखा जाये तो गाय उस समय भी निर्बन्ध व मुक्त ही है। क्योकि गाय रस्सी नही बन गई है !! गाँठ तो रस्सी की रस्सी मे लगी है !! अर्थात् रस्सी ही बँधी है। तात्पर्य यह कि स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव मे रहना ही स्वतन्त्रता है—स्वावलम्बन है, आजादी है, स्व-समय है। पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र, पर-काल, पर-भाव मे रहना ही परतन्त्रता पराधीनता, बन्धन और गुलामी है। आध्यात्म और आगम ग्रन्थो का कथन है कि जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर निर्जरा और मोक्ष तत्त्वो के अर्थों को जो यथार्थ रूप से मान लेता है, जान लेता है, अनुभव कर लेता है वह कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। उनको ज्ञेय-हेय-और उपादेय रूप से जानना ही प्रथम कर्त्तव्य है। परतन्त्रता अन्य कुछ नही बल्कि अपनी दृष्टि मे, श्रद्धा मे स्व और पर का मिश्रण करके देखना-जानना-मानना और तदनुसार चलना ही है। इसे ही जिन परिभाषा मे मिथ्यात्व कहा है। मिथ्यात्व ही बन्धन है। सम्यक्त्व ही स्वतन्त्रता है। स्वभावाश्रय ही स्वतन्त्रता है। विभावाश्रय ही बन्धन है—गुलामी है !!

यहाँ पर आचार्य महाराज लौकिक और राजकीय बन्धनो से मुक्ति का उपाय बतलाते हुए कहते हैं—कि जो व्यक्ति आपके नाम स्मरण रूपी मन्त्र को निरन्तर रटता है, जपता है वह अपने आप तुरन्त ही मुक्त हो जाता है। बंधन मुक्त हो जाता है। संसारी जीव कर्म बन्धनो की मजबूत साकलो से

जकड़ा हुआ है। पापमयी लोहे की तथा पुण्यमयी सोने की जंजीरों से निरन्तर जकड़े रहने से चौरासी के चक्कर लगा रहा है। भव भ्रमण से उसकी आत्मा मानो छिल रही है। परन्तु जो अपने त्रिकाली पूर्ण स्वभाव का आश्रय लेता है वह तुरन्त तत्क्षण ही निर्बन्ध और मुक्त हो जाता है। क्रमश दृष्टि मुक्त, भावमुक्त, जीवन्मुक्त होता हुआ कर्ममुक्त हो जाता है।

विशेष

दूर जाने की आवश्यकता नहीं। भक्तामर स्तोत्र के इस ४६वें श्लोक के प्रभाव का प्रत्यक्ष चमत्कारी फल स्वयं स्तोत्रकर्ता आचार्यश्री मानतुंग जी को प्राप्त हुआ था। ऐतिहासिक तथ्य है कि आचार्य महाराज तत्कालीन नरेश के कोपभाजन बनने के कारण उनको ऐसी जेल में बंद कर दिया जिससे निकलना ४८ द्वारों से होता था। उन ४८ दरवाजों को बंद करके प्रत्येक कोठरी में मजबूत ताला लगाया गया था। लोहे की बड़ी-बड़ी मजबूत जंजीरों ने उनके नग्न तन को जकड़ दिया गया था। यही नहीं वरन् चौकसी के लिए पहरेदारों को भी खड़ा कर दिया गया। आदीश्वर भक्ति में निमग्न आचार्य महाराज ने ज्यों ही इस श्लोक की रचना की त्यों ही ४८ ताले और मजबूत लौह शृङ्खलाएँ तड़ातड़ टूटती गईं और ध्यान मग्न निर्ग्रन्थ मुनीश्वर निर्बन्ध, मुक्त राजा और प्रजा के समक्ष दृष्टिगत हुए। इस चमत्कारपूर्ण घटना से प्रभावित होकर नृपति सहित उपस्थित प्रजा ने जैनत्व को अंगीकार किया। यही नहीं बल्कि अतिशय की प्रभावना स्वरूप देवताओं ने आकाश से पुष्प वृष्टि की।।

By muttering day-and-night the sacred syllables of Thy name, even those, whose bodies are fettered from head to feet by heavy chains and whose shanks are lacerated by the night gyves, instantaneously get rid of the fear of their bondage 46.

× × ×

Perhaps, constantly in irons from top to toe and with their thighs scratched over with the edges of the fast (bound) strong chains instantly get themselves off the fear of confinement by restoring to the charm of your name 46

× × ×

अन्वय

य मतिमान् तावकम् इमम् स्तव अधीते तस्य मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहिसङ्ग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् भयम् भिया इव आशु नाशम् उपयाति।

शब्दार्थ

य — जो।

मतिमान्—बुद्धिमान—प्रज्ञावान पुरुष,

तावकम्—आपके,

इमम्—इन,

स्तवम्—स्तोत्र को,

अधीते—पढ़ता है—पाठ करता है—अध्ययन करता है। कण्ठस्थ करता है,

तस्य—उनका।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहिसङ्ग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् — उन्मत्त-मदोन्मत्त हाथी, सिंह, दावाग्नि, सर्प, संग्राम, सागर, जलोदर तथा बन्धन से उत्पन्न हुआ।

विशेषार्थ —मत्त—उन्मत्त ऐसा, द्विपेन्द्र—हाथी, मृगराज—सिंह, दवानल—दावानल-वनाग्नि, अहि—सर्प, सग्राम—युद्ध, वारिधि—समुद्र, महोदर—जलोदर तथा बन्धन—बन्धन (प्रतिबंध रुकावट) उनके द्वारा उत्थम्—उत्पन्न हुआ।

भय—भय-डर।

भिया—डर के कारण से ही।

विशेषार्थ —भी—भय, भिया—भय।

इव—मानो।

आशु—तत्काल ही—शीघ्र ही।

नाशम् उपयाति—विनाश को प्राप्त करता है।

भावार्थ

इस प्रकार जो विवेकशील, बुद्धिमान, प्रज्ञावान भद्रपुरुष आपके इस परम पवित्र स्तोत्र का अनवरत, नियमित, श्रद्धा सहित चिन्तवन, अध्ययन, आराधन और मनन करते हैं उनके, मदोन्मत्त हाथी, विकराल सिंह, भभकता दावानल भयकर सर्प, वीभत्स सग्राम, विक्षुब्ध समुद्र, कष्ट-साध्य जलोदर और बन्धन जनित भय भी भयाकुल होकर अर्थात् भय खुद या स्वत भय पाकर शीघ्र

नप्ट हो जाते है। तथा आपके भक्तजनो की ओर लौटकर वार नही करते।

विवेचन

सामान्य रूप से स्तोत्र के अत मे फल-श्रुति कहने मे आती है। तदनुसार भक्तामर स्तोत्र के ३८ वें श्लोक से लेकर ४६ वें श्लोक पर्यन्त आठ भयो के भयकर शब्द-चित्र स्तोत्र कर्ता आचार्य श्री मानतुग जी द्वारा क्रमश खीचे गये हैं। साथ ही उन भयो से मुक्ति दिलाने का एक ही उपाय इन श्लोको मे अभी तक निरूपित किया गया है, वह है—श्री जिनवरेन्द्रदेव का भाव पूर्वक किया हुआ नाम-स्मरण, नाम-सकीर्त्तन।।

४७वें श्लोक मे इन्ही नौ श्लोको का उपसहार पुनरावृत्ति विधि से करके स्तुति पाठ का लाभ दर्शाया गया है। वे आठ भय क्रमश निम्न प्रकार हैं —

(१) ३८वें श्लोक मे—मतवाले हाथी जैसे विकराल प्राणियो का भय।

(२) ३९वें श्लोक मे—सिहादिक जैसे क्रूर हिंसक जानवरो का भय।

(३) ४०वें श्लोक मे—दावानल आदि जैसे नानाविध आकस्मिक अग्नि का भय।

(४) ४१वें श्लोक मे—पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले जिनकी दाटो मे विष रहता है तथा जिनकी सख्या ८० है ऐसे फणवाले दर्वीकर २६ मडली २२ राजिल १० निर्विष १२ तथा मडली और राजिल के सयोग से पैदा होने वाले ७ इस प्रकार सभी प्रकार के सर्पादिक विषधर जन्तुओ का भय।

(५) ४२ तथा ४३वें श्लोक मे—घनघोर सग्राम का भय।

(६) ४४वें श्लोक मे—वडवानल जैसे समुद्र तूफान आदि का आकस्मिक भय।।

(७) ४५वें श्लोक मे—जलोदर आदि वहुविध आधि-व्याधियो का भय।

(८) ४६वें श्लोक मे—गुलामी की जजीरो, पराधीनता व वन्धन के भय।

वैसे तो सम्यग्दृष्टि भव्य भक्त सप्त भयो से सर्वथा मुक्त ही होता है। ये आठ भय उन्ही सातो भयो मे गर्भित हो जाते है। वडे से वडे भक्त भी उपरोक्त आठ भयो के आकस्मिक रूप से आ पडने पर कभी-कभी आत्म श्रद्धा से-आस्था से च्युत हो जाते है। इसलिए उनको दृढ करने के लिए इन नौ श्लोको की रचना की गई है। स्वभाव से तो त्रिकाल ही भव के भय के भाव का अभाव सर्वथा ही है। भय तो परावलम्बीपने मे हैं। स्व मे-आत्मा मे काहे का भय ?

भक्त कवि श्री मानतुंग जी उपसंहार करते हुए कहते हैं कि जो भी व्यक्ति भाव-भक्ति से इस स्तोत्र का पाठ करता है। उसके पास सात या आठ प्रकार के भय कभी फटकते ही नहीं। जिसने अपने पूर्ण स्वभाव की भक्ति की, वही भव के भय से मुक्त हो गया। यहाँ यही मुख्य तात्पर्य है।

The intelligent man, who chants this prayer offered to Thee is in no time liberated from the fear born of wild elephants, lion, forest-conflagration, snakes, battles, oceans, dropsy and shackles 47.

× × ×

Of a wise man who recites this eulogy of yours the fear, arising from these eight sources, such as intoxicated elephant, lion, fire, serpent, battle, ocean, dropsy, and bonds suddenly dies away, as it were, being frightened 47

× × ×

मूल श्लोक (सर्व सिद्धि-दायक)

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं 'मानतुङ्ग' मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥

आशीर्वादात्मक मंगल-कामना

हे प्रभो ! तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य-ललाम ।
गूँथी विविध वर्ण सुमनों की, गुण-माला सुन्दर अभिराम ॥
श्रद्धा सहित भविक जन जो भी, कंठाभरण बनाते हैं ।
'मानतुङ्ग' सम निश्चित सुन्दर, मोक्ष-लक्ष्मी पाते हैं ॥४८॥
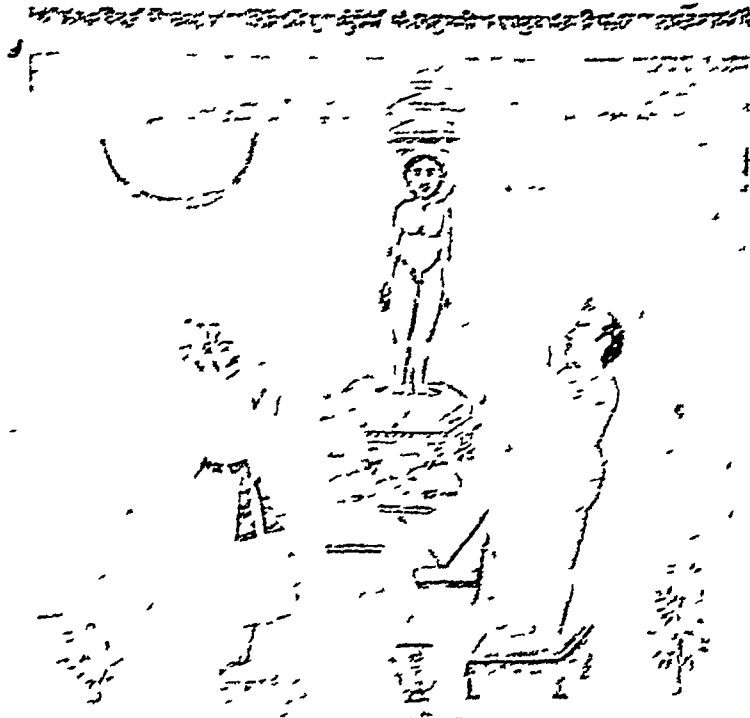
अन्वय

जिनेन्द्र ! इह य जन भक्त्या मया तव गुणै निवद्धाम् रुचिरवर्णविचित्र-पुष्पाम् स्तोत्रस्रज अजस्र कण्ठगताम् धत्ते तम् मानतुङ्गम् अवशा लक्ष्मी समुपैति ।

शब्दार्थः

जिनेन्द्र !—हे जिनवर !—हे जिनेश्वर देव !

इह—इस विश्व मे—इस ससार मे ।

य जन —जो मनुष्य—जो पुरुप ।

भक्त्या—भक्ति पूर्वक ।

मया—मेरे द्वारा ।

तव—आपके ।

गुणै —प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि गुणो से (मालापक्ष मे—धागो से)

निवद्धाम्—रची गई, वनाई गई (माला पक्ष मे गूंथी गई)

रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्—मनोज्ञ, मनोहर, अकारादि स्वर वर्णों तथा ककारादि व्यजन वर्णों के यमक श्लेप अनुप्रासादिक रूपी सुन्दर सुमनो से युक्त (माला पक्ष मे मनोहर रग-रग के विविध-विचित्र फूलों से युक्त) ।

विशेषार्थ —रुचिर—सुन्दर, मनोज्ञ, मनोहर, मनहर, वर्ण—वर्ण-रग अथवा अक्षर, उनसे वडे विचित्र—विविध, अनेक प्रकार के सुन्दर ऐसे पुष्प—सुमन, फूल अथवा वाणी वही हुआ रुचिरवर्णविचित्रपुष्प ।

स्तोत्रस्रज—आदिनाथ स्तोत्र (अपरनाम) भक्तामर स्तोत्र रूपी माला को, हार को-गजरा को ।

अजस्र —सदा सर्वदा, हमेशा ।

कण्ठगता धत्ते—कण्ठस्थ करता है, याद करता है (माला के पक्ष मे) गले मे धारण करता है, पहिनता है ।

तम्—उस,

मानतुङ्गम्—प्रतिष्ठा प्राप्त स्वाभिमानी, सन्मान से समुन्नत पुरुप को अथवा महाप्रभावक इस महान् स्तोत्र के रचयिता मानतुङ्गाचार्य को ।

अवशा—विवश होकर अथवा स्वतन्त्र ।

लक्ष्मी —मोक्षलक्ष्मी ।

समुपैति—प्राप्त होती है ।

व्यजन तथा शेष दो स्वर वर्ण है। इससे सिद्ध है कि प्रत्येक छद मे मत्र शब्द अवश्य गूंजता है और उसमे निहित मन्त्रत्त्व शक्ति को प्रकट करता है।

भक्तामर स्तोत्र के अन्तिम श्लोक मे अलकारो की साहित्यिक छटा स्पष्ट रूप से दर्शनीय है। यह स्तोत्र जितना साहित्य रसिक कवियो के लिए आनन्द देने वाला है उतना ही अधिक जिनेन्द्र भक्तो को भाव विभोर करने वाला है। जरा उपमा, रूपक, यमक, श्लेषात्मक अलकारो के सु—सयोजन पर ध्यान दीजिये—

रूपक अलकार श्लेषार्थ मे

श्लोकान्तर्गत-अलकार प्राप्त शब्द	स्तोत्र पक्ष	कण्ठमाल पक्ष
स्तोत्रस्रज	स्तोत्र रचना को	फूलो की माला को
भक्त्या	भक्ति पूर्वक	विविध प्रकार की रचनापूर्वक
गुणै	अनन्तचतुष्टयादिक गुणों से अथवा प्रसाद, माधुर्य, ओजादि गुणों से	सूत्रों से—धागों से
निबद्धा	बनाया हुआ	गूथी हुई
रुचिर वर्ण	मनोज्ञ अक्षरों वाले, अलकारो से युक्त	सुन्दर-सुन्दर रग विरगे पुष्पों से युक्त
कठगता धत्ते	भाव पूर्वक जपता है अथवा मुखाग्र याद करता है	कठ मे धारण करता है अथवा पहिरता है
मानतुगम्	मानतुग मुनीश्वर को (कवि का नाम निदेश वाचक शब्द)	स्वावलम्बी, स्वाभिमानी विवेकी, प्रामाणिक पुरुष को, ऊँचे सन्मान वाले भक्त को
लक्ष्मी	मोक्ष लक्ष्मी निश्रेयस	पुण्य-वैभव अभ्युदय

निर्ग्रन्थ मुनीश्वर उपसंहार पूर्वक व्यवहार से दूसरो को लक्ष्य करते हुए तथा निश्चय से 'स्व' के लिए यो आशीर्वाद देते है कि जो भद्र-भव्यभक्त इस स्तोत्र रूपी माला को पहिनते है वे स्वर्ग राज्यादिक पुण्य विभूति तो पाते ही है। परम्परा से मुक्ति लक्ष्मी को भी पा लेते है।। यह माला विविध भाति के रंगीन पुष्पो से बनाई गई है। सूत्र, मन्त्र, ऋद्धि आदि के धागो से गूथी गई है। जिनेन्द्र भगवान की अनन्त गुणावली इसका मूलाधार तत्त्व है।। सम्पूर्ण माला द्रव्य है। सभी रंगीन फूल विविध क्षणवर्ती पर्याये है। उन पुष्प रूपी पर्यायो मे निरन्तर प्रवहमान गुण रूपी धागा है। जो भक्त द्रव्य-गुण-पर्यायो की स्वतन्त्रता को समझ कर, भेद विज्ञान करके, अभेद का आनन्द लेता है—वह लौकिक सुख को तो अपने आप प्राप्त करता ही है। अलौकिक, नि:श्रेयस लक्ष्मी भी उसे इस पुरुषार्थ द्वारा मिलती है। माला के रूप रंग आदि मे रुचि वाला, विकल्प करने वाला आदि को आनन्द प्राप्त नही होता—इसी प्रकार गुण और पर्यायो के विकल्पो मे अटक जाने वाले को आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त नही होता। उस आनन्द को तो द्रव्यदृष्टि से अभेद वस्तु को स्वीकार करने वाला—पहिनने वाला व्यक्ति ही उठा सकता है। माला तो माला ही है—द्रव्य ही है। वह सूत्र नही, फूल नही अर्थात गुण नही, पर्याय नही। भेद होते हुए भी अभेद है। इस प्रकार इस श्लोक से यही आध्यात्मिक ध्वनि निकलती है।।

The Goddess of wealth of her own accord resorts to that man of high self-respect in this world, who always place round his neck, O Jinendra this garland of orisons, which has been sturng by me with the strings of The excellences out of devation, and which looks charming on account of the multi coloured flowers in the shape of beautiful words 48

In this world the Goddess of prosperity is compelled to approach the respectable person who constantly put on round his neck the garland of merits produced in this eulogic form by me in devotion to you ann composed of uarious pretty flowers of literary beauty 48

× × ×

जन्माभिषेक शोभा-यात्रा

मति-श्रुत अवधि समेत, ऋषभ जिन अवतरे।
मुग्ध हुआ त्रैलोक्य, देव विभ्रम भरे॥
घंटे बजने लगे, सोलहों स्वर्ग मे।
सिंहनाद हो उठा, ज्योतिषी वर्ग मे॥१॥

गूंजी मधुर ध्वनि, शंख की स्वयमेव, प्रति सुर-भवन मे।
दुन्दुभि तथा शहनाइयां, बज उठीं व्यन्तर-सदन मे॥
डोला सिंहासन, इन्द्र का जिन, जन्म निश्चय हो गया।
धनराज तब मायामयी गजराज लेने को गया॥२॥
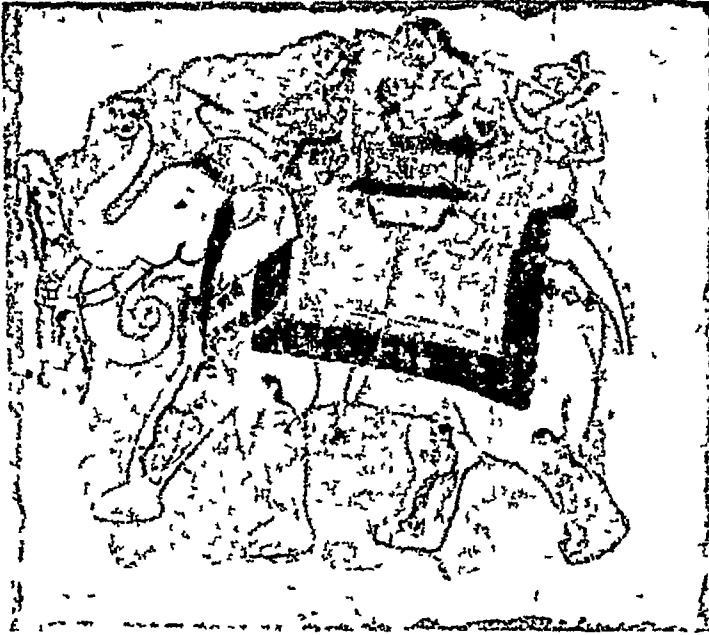
सौ मुख वाला ऐरावत सु विशाल था।
मुख में थे दन्ताष्ट दत प्रति ताल था॥
ताल-ताल मे बनी सवासौ कमलिनी।
कमल बेल मे खिले कमल पच्चीस ही॥३॥

इन्द्राणिया मिल गा रहीं, मागलय पूर्ण वधाईया।
नच रहीं देवागनाएँ, बज रही शहनाईया ॥
जल ला रहे क्षीराब्धि मे, सुर वृन्द हाथो हाथ ही।
अभिषेक करते कलश लेकर, इन्द्र दोनो साथ ही ॥१०॥

वदन उदर अवगाह कलश गत जानिये।
एक चार अष्टादश लाख प्रमानिये ॥
इन्द्र कलश ले धारावाह उडेलते।
वृषभ शीर्ष पर क्रमश उनको झेलते ॥११॥

झेलते प्रभु कलश धारा, आठ एक हजार की।
प्रक्षाल के उपरान्त शोभा क्या कहे शृ गार की ॥
उत्सव हुआ सपन्न यो मरुदेवि के सुत लाडले।
वापिस मिले उनको उन्हें, देवेन्द्र अपने घर चले ॥१२॥
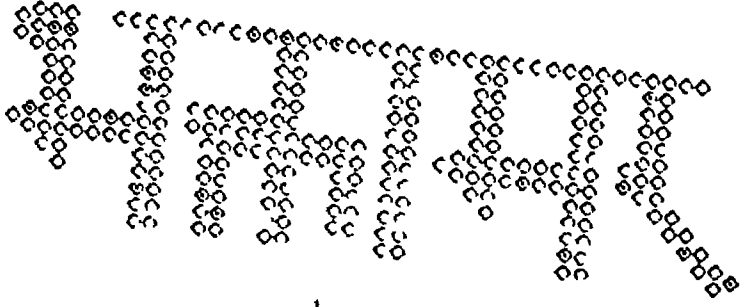
(द्वितीय-खण्ड)

जंगल में मंगल

कितना ही कुशल कलाकार क्यो न हो, एक ही बार की असावधानी से अपनी प्रतिष्ठा से हाथ धो बैठता है, कितना ही कुशल लक्ष्य-वेधक क्यो न हो, ध्यान बटते ही निशाना चूक जाता है।·

हाँ ! तो सुदत्त भी एक कलाकार था—चौर्य-कला मे सिद्धहस्त !! किन्तु · सम्भवत अनहोनी उस दिन अपना रूप बदल कर ही आई होगी, क्योकि तभी तो राज्य-शासन की आँखों मे सदा धूल झोंकने वाला वही सुदत्त सहसा राजनीति के चक्रव्यूह मे बुरी तरह फँस गया और रगे हाथो पकडा गया ।

इसमे सन्देह नही कि चोर की चौर्य-कला जब घुटने टेक देती है, तो मिथ्या मायाचारी मानो कवच बनकर उसकी रक्षा करने सेवा मे उपस्थित हो जाती है।· राजा ने प्रश्न किया—

"वर्षों से परेशान करने के पश्चात् आखिर आज हाथ मे आ ही गये, धन तो खूब जोडा है चुरा-चुरा कर, पर पहिनने को फटी हुई कोपीन भी नही है, अवश्य ही किसी पूँजीपति धन्नासेठ की छत्रच्छाया मे तुम्हारे ये जघन्य अपराध पनपते रहे होंगे। भला, साफ-साफ तो बताओ किनके यहाँ रखी है तुम्हारी अपार दौलत ?"

" पूँजीपति हेमदत्त श्रेष्ठी, महाराज !" चोर के मुँह से अनायास ही निकला।

"हूँ ·· ।"

× × ×

कुछ क्रुद्ध रहे होंगे परन्तु अन्ततोगत्वा 'सत्यमेव जयते' का शाश्वत स्वर्ण सिद्धान्त भी भला क्या कभी झूठ हो सकता है ! सत्य के शासन में देर है· · ··अन्धेर नहीं ।

× × ×

अन्ध-कूप में क्षुधित-दुखित-प्रपीड़ित पड़े सेठ जी को तीन दिन तीन रात हो गये । जीवन की एक-एक घड़ी वर्ष बन कर कटती । सोचते—"उस इंच-इंच रेंगने वाली वीभत्स मृत्यु से तो झपट कर आने वाली मौत ही श्रेयस्कर है ।" परन्तु नहीं, सदा सत्य का पालन करने वाला व्यक्ति सम्यग्दृष्टि होता ही है । शारीरिक वेदना का अनुभव न होने देने के लिये हेमदत्त श्रेष्ठि आत्मध्यान में तल्लीन हो गए और प्रथम तीर्थङ्कर भगवान आदिनाथ की आदर्श झांकी उनकी बंद आंखों में चित्रपट की भांति झूलने लगी ।···· महाप्रभावक श्री भक्तामर जी पर उनकी अटूट आस्था थी ।· ज्यों ही उन्होंने भक्तामर के प्रथम द्वितिय श्लोकों का स्मरण उनकी ऋद्धि और मंत्र सहित किया कि तत्काल एक देदीप्यमान ज्योति ने उनकी बन्द आंखें खुल गईं । और उन खुली हुई आंखों ने देखा कि सामने एक देवी हाथ जोड़े खड़ी है । · अपने पर सेठ जी ने जब दृष्टि डाली तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा । रत्नजटित सिंहासन पर विविध वस्त्रालंकृत और नाना प्रकार की विभूतियों से युक्त अपने को पाया ! !

"तुम कौन हो ?" हेमदत्त जी बोले ।

"शासन देवी विजया"—सौन्दर्य-प्रभा बिखेरती हुई देवी बोली ।

"तुम यहां इस अन्ध-कूप में क्यों आई ?"

"तुम्हारे इस दो श्लोकों की ऋद्धि एवं मंत्र मोहिनी के वशीभूत होकर ।" इतना कह कर देखते ही देखते वह कपूर की भांति आंखों से ओझल हो गई ।

× × ×

लाश देख कर तो गिद्ध ही झपटते हैं । राजकर्मचारियों ने सोचा—चलो उस मरणासन्न श्रेष्ठी के पास चलें, बन्धन मुक्ति का प्रलोभन दिखाकर उससे कुछ स्वर्ण-मुद्रायें ऐंठें । पर वहाँ पहुँच कर जिन भक्त हेमदत्त श्रेष्ठि का जो अनोखा ठाठ देखा तो होश ठिकाने न रहे । उल्टे पैरों भागे । हांपते-हांपते राजा से निवेदन किया—

"हे उज्जयनी नरेश ! सेठ ह्मदत्त जी अन्ध-कूप मे पड़े सड रहे हो सो बात नही।"

साश्चर्य राजा बोला—"तो फिर ?"

राज कर्मचारी एक हा साथ एक स्वर मे बोले—"वह तो जगल मे मगल कर रहे ह।"

इसके पश्चात् सनातन जैन-धर्म की कितनी प्रभावना हुई होगी—यह लिखने की नही, सोचने-समझने की चीज है।

●●●

जान बची तो लाखो पाये

"हे स्वामिन् ! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, आगच्छ, आगच्छ, अन्न-जल शुद्ध है, स्वामिन् आईये !" •• की मधुर स्वर लहरी एक बार पुन वायुमडल मे थिरक उठी !

नव यौवन दम्पत्ति के सु-मधुर कण्ठो मे एक साथ निकला हुआ यह स्वर केवल जड शब्दो के सहारे ही प्रस्फुटित नही हुआ था वल्कि उसमे आन्तरिक हार्दिक श्रद्धा, भक्ति, विनय एव उपासनादि तत्त्वो की महक थी।

कवि लोग जिस प्रकृति की छटा से विमुग्ध होकर आत्मविभोर हो जाते है—उसी प्रकृति के आँचल मे हमारे नग्न दिगम्वर मुनि और तपस्वी वास किया करते हैं।

प्रकृति क्या है ? आत्मा की खुली हुई एक पुस्तक ! जिस प्रकृति को हम नीरव, मौन और एकाकी वियावान जगलो और गुफाओ मे देखते हैं, हरे-भरे स्थावर वृक्ष-लताओ मे देखते है, कल-कल निनादनी नदियो मे देखते हैं—वही सौम्य प्रकृति इन महामना महात्माओ की स्वय अपनी प्रकृति है। इसलिये ऐसे नैसर्गिक क्षेत्र मे वे आत्मविभोर तो होते ही हैं—साक्षात् आत्म-दर्शन करते हुए आत्म-कल्याण भी करते हैं, और जो आत्म-कल्याण कर सकते हैं, परोपकार भी उन्ही से सभव है। जो स्वय भव-सागर से तर सकें, वही अन्यो को तार सकते हैं। तभी तो इन परम गुरुओ को तरण-तारण सज्ञा है।

"परोपकाराय सता विभूतय" के चूंकि वे साक्षत् अवतार होते हैं अतएव उन्हें मानव के सामाजिक क्षेत्र में भी प्रविष्ट होना पडता है, आहार ग्रहण के उद्देश्य से नही। हम लोगो की भाँति वे खाने के लिये नही जीते वल्कि जीने के लिये खाते हैं।

हाँ! तो पीत उत्तरीय ओढे, हाथ जोडे वणिकपुत्र सुदत्त श्रेष्ठि सुमगल-कलश गृहीता अपनी पत्नी के साथ खडे हुए इन तरण-तारण गुरुवर्य का आह्वान कर रहे थे।

आज भी हम परम दिगम्वर मुनियो को आहार देते हैं। यद्यपि न तो वह सख्या साधुओं की है और न आहार-दान देने वाले श्रावक-श्राविकाओ की ही, तथापि उपर्युक्त स्वरों को श्रवण कर अवश्य ही हमारी सुषुप्त चेतना उस सास्कृतिक वातावरण का स्पर्श पाते ही पुलक उठती है—आनन्द विभोर हो नाचने लगती है। भाव-पारखी मुनि ऐसे स्वरो के अभ्यस्त होते हैं। तत्काल ही भोजन-शाला मे प्रविष्ट हुए एव यथाविधि निरन्तराय आहार ग्रहण किये। उपरान्त गृहस्थ ने तत्त्वज्ञान श्रवण करने की इच्छा प्रकट की।

चूंकि वह भक्तिकाल का मध्य युग था, अन्यान्य सम्प्रदाय मन्त्रों के वल पर चमत्कार प्रकट कर अपने अपने धर्मों की महत्ता व्यक्त करते हुए होडाहोडी मे सलग्न थे। जैन साधु भी समय की हवा पहिचानते थे इसलिये वे भी उस समय श्रावको को तत्त्वज्ञान का पाठ "थ्योरिटिकल" (सैद्धातिक) नही "प्रेक्टिकल" (प्रायोगिक) रूप से ही पढाते थे। आज वैज्ञानिक यन्त्रो से प्रयोगशालाएँ चलाते हैं, उस समय वे मन्त्रो और तन्त्रो से ही चलाई जाती थीं। इस प्रकार समयानुकूल चलने से एक पथ दो काज सिद्ध होते थे। गृहस्थ का लौकिक एव पारलौकिक आत्म-कल्याण, आचार्यों का परोपकार लाभ तथा जैन तत्त्वज्ञान की प्रभावना। अतएव उन मुनिराज ने महाप्रभावक भक्तामर के द्वितीय युगल काव्य और उनकी मन्त्र-ऋद्धि-साधना विधि आदि मौखिक रटादी और चल दिये वियावान जगल की ओर!

× × ×

"व्यापारे वसति लक्ष्मी"। फिर भला वणिक्पुत्र अकर्मण्य या निष्क्रिय कैसे वैठा रह सकता है?·· जहाजो पर माल लदवा कर चल दिया समुद्र के उस पार रत्नद्वीप की ओर।

रत्नद्वीप कहाँ है? · इस विषय मे आज के इतिहास और भूगोल विल्कुल ही मौन हैं, केवल पुरातन पुराणो के ही मुंह खुले हुए हैं।

अस्तु ! समुद्र की छाती को रौंदते-चीरते हुए जहाज वढे जा रहे हैं। उनमे बैठे हुए मानव मानो उस अगाध जल पर विजय पाकर अट्टहास कर रहे हो, परन्तु उन्हे यह खबर कहाँ कि हमारी वनाईं हुईं रूप रेखाओ पर भाग्य-कर्म-या दैव सदैव चलेगा ही—वह निश्चित नही। कर्म की रेखाएँ या पगडडियाँ तो उसकी अपनी निराली ही है—स्वतन्त्र हैं। •हाँ यह बात दूसरी है कि किसी जगह पुरुषार्थ की पगडडी से कही कोई एकाध कर्म की पगडडी क्रास कर जावे ! इस क्रास स्थान को हमे "सयोग" कहना चाहिये, पर हम ऐसा न कहकर कर्त्तव्य बुद्धि के नशे मे कुछ और ही बकते हैं और सिर पर आसमान उठाये फिरते है—अहकार का !

हाँ तो होता क्या है कि एकाएक जोरो का तूफान आता है, घटाएँ घिर आती हैं, जहाजो का विजय-अभिमान डोलने लगता है। समुद्र की चौडी छाती पर रखे हुए उनके मजबूत पैर डगमगाने लगते हैं। खुर्राटे भरते हुये मनुष्य जग जाते हैं ! जगते हुए रोते हैं और रोते हुओ के प्राण कहाँ अटके होगे ? कहा नही जा सकता है !! जहाजो मे भरी हुई अपार दौलत के वदले प्राण-दान का सौदा करने वाला यदि वहाँ कोई होता तो निश्चय ही वहाँ मोल तोल का प्रश्न ही नही उठता और मनमाने हीरे जवाहरात पाता !!!

× × ×

सामायिक मे लीन एक एकान्त कोने मे बैठे हुये सुदत्त श्रेष्ठि के कर्ण-कपाट व नेत्र-द्वार तब विस्फारित हुये जब चारो ओर "बचाओ-बचाओ" का कर्णभेदी शोर होने लगा। अपने पति 'मानस' के साथ आत्म-ज्योति के दर्शनार्थ गई हुईं पाँचो इन्द्रियाँ तो तब लौटी जब उनका वहाँ बैठना ही कठिन हो गया।

वणिक्पुत्र सुदत्त श्रेष्ठि को स्थिति समझते देर न लगी। तत्काल उन मन्त्र काव्यो का उच्चारण जोर जोर से करने लगे जो कि उन्हे मौखिक याद कराये गये थे। शुद्धोच्चारण के एक एक शब्द ने मानो सजीव प्रतिमा का निर्माण कर दिया। सौन्दर्य की उस प्रतिमा ने अपना नाम देवी 'प्रभावती' वनलाया और उन्हे 'चन्द्रकान्त' मणि प्रदान कर ज्यो ही वह विलीन हुई त्यो ही चन्द्रमा छिटक कर मुस्कराने लगा। वादल छट कर आसमान साफ हो गया और प्रलय-पवन सौम्य हो गई।

सुनहरा प्रभात हुआ तो रत्नद्वीप के निवासियो ने देखा कि जहाज समुद्र तट पर खडे हैं। यात्री उनसे उतर कर मुस्करा रहे हैं—मानो कुछ हुआ ही

नही । कृतज्ञता प्रकाशन के लिये यात्रियो ने सुदत्त श्रेष्ठि के सन्मुख रत्नो से भरी हुई झोलियाँ प्रस्तुत की किन्तु उस विवेकी वणिक्पुत्र ने उन्हे लेने से इनकार कर दिया और अत्यन्त कोमल करुण स्वर मे बोला :—

"जान बची तो लाखों पाये"

●●●

नक्शा ही बदल गया

सुभद्रावती नगरी मे ही नही वरन् समस्त कोंकण प्रदेश की गली-गली मे यही चर्चा थी कि आखिर 'देवल' इतनी सम्पत्ति पा कैसे गया ! .. कल तो फटा जीर्ण-शीर्ण कुरता पहिने हुए लकडी को आरे से चीर रहा था। नन्हे-नन्हे बच्चे पास मे खडे रोटी के एक-एक टुकडे को बिल्ला रहे थे। स्त्री ताने मार मार कर उसके पुरुषार्थ पर हथौडे की सी चोटें कर रही थी तथा स्वय मजदूरी कर परिवार के पेट पालने की डींगें हांक रही थी और आज अचानक एकदम काया पलट !! रात्रि भर मे इतना अद्‌भुत परिवर्तन !!! सोचने वाले हैरान थे, देखने वाले दाँतों तले अँगुली दबाकर रह जाते और पडोसी ! .. उनकी छातियों पर तो साँप लोट रहे थे या ईर्ष्या की दावाग्नि मे जले जा रहे थे वे ! हाँ, और उनके बारे मे तो कहना भूल ही गया जो कल तक सीधे मुँह बात नही करते थे, पर आज अपनी ठकुर सुहाती से मानो उसके तलुए ही चाटे जाते थे और वे साहूकार जिन्होंने लाल लाल आँखें दिखाते हुए तकाजे पर तकाजे लगाए और घर के दरवाजे को रौंद डाला, आज चिकनी चुपडी बातों द्वारा अपने अत्याचारो पर पर्दा डालने को निकल पडे—उसकी खुशामद मे ! वाह री गिरगिट जैसी रग बदलने वाली दुनियाँ, धन्य है तुझे !!

सबहि सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय ॥

परन्तु नही, इन सब के बीच मे एक वह मानवीय वर्ग भी रहता है जिनका कार्य रहस्योद्‌घाटन करना ही होता है, वे सदैव कार्य मे कारणो की ही

खोज किया करते हैं। ऐसे व्यक्ति वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक होते हैं मात्र तत्वान्वेषक। ऐसे ही तत्त्वान्वेषक महोदय भी इस रहस्य की भूमिका खोजने 'देवल' के पास आये और जिज्ञासु भाव से बोले "अवश्य ही आपने किन्ही मन्त्रो का साधन किया है ? क्या बतलाने का कष्ट करेंगे कि वह कौन सा मन्त्र है ? कहाँ से वह आप को प्राप्त हुआ और उसकी साधन विधि क्या है ?"

देवल एक सरल सीधी प्रकृति का मनुष्य था। आज वह भले ही अपार वैभव का स्वामी हो गया हो, पर कल तक तो वह एक साधारण कठफार (विश्वकर्मा-बढई) से कुछ अधिक नही था। निर्धनता की ठोकरें ही कुछ ऐसी होती हैं कि निर्धन मनुष्य मे कभी कभी देवत्व के दर्शन होने लगते हैं। 'देवल' की बाहिरी दुनियाँ तो अवश्य बदल गई थी पर अन्तरग उसका अभी उतना ही निर्मल था—सरल था। विनम्रता से यथाक्रम कहना प्रारम्भ किया—

श्रीमान् जी! आप को निश्चय न होगा कि गिल्ली डडे जैसे अल्पवयस्क बालको के साधारण खेल से मेरे इस क्रान्तिकारी परिवर्तन की कहानी का आरम्भ होता है। आज से सात दिन पहिले इस सामने वाले चौगान मे छोटे बालको का एक समूह उपर्युक्त खेल खेल रहा था। इतने मे घूमता घामता एक सप्त वर्षीय बालक भी क्रीडास्थल पर आ पहुँचा। बगल मे एक छोटी सी पुस्तिका दबाये था, इससे ज्ञात होता था कि वह अभी शाला से ही लौटा है और अपने समवयस्को को खेलते देख कर उसका भी जी खेलने को ललचा गया है। मैं उस बालक को देखते ही उस पर मुग्ध हो गया। विचारने लगा, कितने निश्चिन्त होते हैं ये नन्हे नन्हे भोले बालक, न खाने की चिन्ता, न खिलाने की। एक मैं हूँ, कि दिन भर बसूला चलाता हूँ, तब कही मुश्किल मे अपने पेट को रोटियाँ जोड पाता हूँ, परिवार पालन तो दूर ही रहा। जैसे तैसे विचारो का क्रम टूटा तो क्या देखता हूँ कि वह बालक खेलने की अभिलाषा रखते हुए भी खेल मे शामिल इसलिए नही हो पा रहा था कि उसके पास डडा नही है। निदान एक दयालु बालक ने डडा दिया और उसने खेलना शुरू किया पर दिल खोलकर वह खेल भी न पाया था कि वह डडा ही टूट गया। डडे के टूटते ही उसका दिल टूट गया। उसके मुख पर छाये हुए विषाद के भाव मैंने स्पष्ट पढ लिए। वह दुखी था, इसलिए नहीं कि और अधिक न खेल सका पर इसलिए कि इस समय वह दूसरे का ऋणी था। लज्जा से उसका मुख लाल हो गया! न जाने क्यो उसकी यह स्थिति मुझे असह्य हो गई। मैंने उसे सकेत से बुलाया और पुचकार कर पास बैठाया।

पूंछा—"वेटा ! तुम्हारा नाम क्या है ?'

"सोमक्रान्ति"—भोलेपन मे उसने उत्तर दिया।

"और वेटा ! पिता जी का ?"

"सुधन श्रेष्ठी।"

"वेटा सोमक्रान्ति ! वतलाना यह कौन सी पुस्तिका है ?"

"नही, विना स्नान किये इसे नही छूने दूंगा मैं। यह जैन धर्म का पवित्र ग्रन्थ भक्तामर स्तोत्र है। इसे श्रद्धावान श्रावक ही छू सकते हैं।" वालक के मुंह से मानो सिखाये हुए शब्द नितान्त भोलेपन से निकलते गये और मैं मोहित होता गया। उसको उकताहट हो रही थी, इसलिए मैंने दो सुन्दर डन्डे वनाकर उसे दिये और कहा कि एक से स्वय खेलना और दूसरा उस लडके को जाकर दे दो जिसका कि तुमने लिया था।

"वास्तव मे भाई साहव !" देवल वोलता ही गया—निष्कपटता मे ही मित्रता का वास रहता है। देखो न, कहाँ तो मैं अधवूढ़ा खूंसट और कहाँ वह सप्तवर्षीय वालक ? पर हम दोनो ऐसे घुलमिल कर वातें कर रहे थे, मानो समवयस्क हो। उसके साथ वातें करके तो सचमुच मे मैंने इस पचपन वर्ष की उम्र मे भी वचपन का आनन्द ले लिया था ! भोला वालक डन्डे पाकर इतना खुश हुआ कि उसने पुस्तक देते हुए मुझ से कहा —"पिता जी से न कहना" और दौड कर चला गया। अव मैंने पुस्तक के पत्र पलटे तो उसके पांचवें श्लोक पर नजर ठहर गई और कुछ ऐसी श्रद्धा जगी कि उसे याद कर यथाविधि ऋद्धि और मन्त्र की साधना के लिए पास के ही जगल की एक निर्जन गुफा मे जाकर ध्यान लगाने लगा ! वस फिर क्या था ? कल ही रात्रि को जव मैं उपर्युक्त काव्य और ऋद्धि-मन्त्र की जाप जप रहा था कि एकाएक 'अजिता' नाम की देवी प्रकट हुई और वोली—

"हे वत्स ! क्या चाहते हो ?"

"धन" मेरे मुंह से विना सोचे-विचारे ही निकल पडा।

"तो देखो, वत्स ! यहाँ से ईशान कोण मे जो पीपल का झाड है—उसके चारो ओर की भूमि खोदो।" इतना कह कर देवी अन्तर्धान हो गई और मैं सर पर पैर रखकर भागा उस वृक्ष की तरफ ! खोदने पर वास्तव मे करोडों के हीरे जवाहरात वहाँ गडे हुए प्राप्त हुए हैं और इनका उपभोग मैं तभी करूंगा जव तक कि एक मनोरम आदिनाथ चैत्यालय का निर्माण कराकर उसमे उपर्युक्त 'भक्तामर' का पाचवाँ श्लोक ऋद्धि-मन्त्र सहित उसकी दीवारो मे अङ्कित न करा दूंगा।

●●●

गोबर-गणेश

अध्ययन शालाओ मे एक जडमति छात्र की क्या अवस्था होती है, उसे वह भुक्तभोगी विद्यार्थी ही अनुभव कर सकता है, जो वात वात मे अध्यापक की प्रताडना, साथियों और सहपाठियो द्वारा उपहास एव आत्म-ग्लानि उसके रसमय जीवन को निराशा से भर देते हैं। निराशा ही क्यो ? कभी कभी तो आत्म-हत्या जैसा लोकनिंद्य जघन्य कार्य भी कर बैठता है वह, या अशरण सा घूमता हुआ विविधि मन्त्र-तन्त्रो का अनुष्ठान करके कुशाग्र बुद्धि वनने के स्वप्न देखा करता है। ऐसे ही एक अन्तेवासी की यह लघु कथा है जिसने कि महाप्रभावक भक्तामर जी के छटवें काव्य का ऋद्धि-मन्त्र सहित अनुष्ठान किया और ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से व्युत्पन्नमति वनकर अपने जीवन को मधुर वनाया।

तत्कालीन भारत की राजधानी काशी, राजा हेमवाहन, उसके दो पुत्र—जेष्ठभूपाल, लघुभुजपाल। पहिला अतिमन्द बुद्धि—दूसरा कुशाग्रबुद्धि या आध्यात्मिक भाषा मे उन्हे कह सकते हैं—जड, चेतन या निश्चय और व्यवहार।

वारह वर्ष कूकर की पूंछ नली मे रखी गई, जव निकली तब टेढी की टेढी। वारह वर्ष तक पडित श्रुतधर ने भूपाल के साथ माथापच्ची की और जव देखा कि उसके मस्तिष्क मे सिवाय गोवर के और कुछ नही भरा है तव उनके पाडित्य ने जवाव दे दिया। और दूसरी ओर वारह वर्ष मे राजकुमार भुजपाल ने क्या प्राप्त किया, वह भी सुन लीजिये। पिंगल, व्याकरण तर्क, न्याय, राजनीति, सामुद्रिक, वैद्यक, शास्त्र, विज्ञान, मनोविज्ञान आदि आदि।

एक ही गुरु के पढाये ये दो शिष्य, एक ही पिता के ये दो पुत्र परन्तु अन्तर, जमीन और आसमान का। यह दैव दुर्विपाक नही तो और क्या है ? परिणाम स्वरूप एक का जीवन लोकप्रियता के पथ पर और दूसरे का लोक-

निन्दा के मार्ग पर ढलने लगा !...

निदान परिस्थितियो से पराजित होकर उसने अपने लघुभ्राता भुजपाल की सम्मति के अनुसार उपर्युक्त मन्त्र का अनुष्ठान किया और इक्कीस दिन के पश्चात् भूपाल का साक्षात्कार जिन शासन की अधिष्ठात्री 'ब्राह्मी' नाम की देवी से हुआ। उससे वर प्राप्त कर वह एक ऐसा धुरन्धर विद्वान हुआ कि पुराणो मे उस घटना ने अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

●●●

भयंकर चक्रवात

धूलिया एक ऐसा कु-तापसी था जिसने कि अपने मिथ्या पाखण्ड तथा ढोंग का जाल बिछाकर भोली जनता को उसमें फँसाने का उपक्रम रच रखा था। वैताली विद्या उसे सिद्ध हो गई थी· यह एक ऐसी विद्या है, जिसे कि चरित्र भ्रष्ट मनुष्य भी बिना आत्मज्ञान के प्राप्त कर लेते हैं और कुछ काल के लिए अपना आतङ्क जमाकर मनुष्यो की आँखो मे धूल झोंक सकते हैं ! पर कब तक ? जब तक कि उनका साक्षात्कार किसी सम्यग्दृष्टि गुरु से नहीं हो जाता।

पाटलिपुत्र मे 'धूलिया' और उसके शिष्यों ने कुछ ऐसा आतङ्क जमाया कि वहाँ कि प्रजा तो ठीक, राजा धर्मपाल भी उसकी चरण-रज लेने आने लगे। लौकिक चमत्कारो ने मानों उनके विवेक की आँखो मे पट्टी बाध दी थी। जिन शासन के कट्टर भक्त ही बहुरूपिया मायाचारियों की नस पकडना जानते हैं। इनके सामने आते ही सत्य-सूर्य पर छाई हुई काली घटाएँ तत्काल छिन्न-भिन्न हो जाती हैं।

एक किशोर पाखण्डी धूलिया के यह सब प्रपच पूर्ण कृत्य देखता और उनके भण्डाफोड करने के अवसर की ताक मे रहता। किशोर का नाम था—"रतिशेखर !"—वह कोई तपस्वी नहीं था, पर आत्मज्ञान अवश्य ही उसे कुछ अंशों मे प्राप्त था ! साथ ही मन्त्र-तन्त्र आदि मे भी उसकी पहुँच थी।

एक दिन रतिशेखर विद्या मन्दिर मे बैठा हुआ अध्ययन मे लीन था। धूर्त धूलिया का एक प्रमुख शिष्य उसके समीप जानवूझ कर इस उद्देश्य से आकर बैठा कि रतिशेखर उसे विनयावनत होकर नमस्कार करे, परन्तु क्या कभी सम्यक्त्वी भी मायाचारी मिथ्यात्वी के चरणो मे झुक सकता है ? नमस्कार की तो कौन कहे उसने उसे देखा तक नही कि पास मे कौन बैठा है ? बैठे बैठे चेले राम जव उकता गये तो चलते वने—अपना सा मुँह लिए, और आकर अपने गुरु धूलिया को एक-एक की दो-दो भिडा कर भडकाया ! वस फिर क्या था ? बुद्धिशून्य गुरु जी का पारा १०३ डिग्री पर चढ गया। आँखें चढी हुई देखी तो वैताली विद्या की अनुगामिनी देवी हाथ वाँधे आकर आगे खडी हो गई।

"क्या कार्य है, तापस !" देवी वोली।

"रतिशेखर के प्राण हरण"—अट्टहास करते हुए धूलिया ने कहा।

"पर वह तो दृढ निश्चयी सम्यक्त्वी है, उसका सर्वनाश असभव है, हाँ उसके तेज पर-उसके बढते हुए प्रभाव पर धूल अवश्य बरसाई जा सकती है, और इस प्रकार आपके प्रभाव को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।"

"तो जाओ, तत्काल यही करो देवी !"

आँधी उठी—इतने जोरो की कि मकान के मकान उडने लगे। धूलि वर्षा से आसमान भी नही दिखाई देता था। रतिशेखर की विशाल सुदृढ अट्टालिका तो मानो धूल के समुद्र मे डवी जा रही थी !

रतिशेखर उस समय घर पर नही था, उसने जो यह हाल सुना तो महाप्रभावक श्री भक्तामर के सातवें श्लोक का स्मरण ऋद्धि-मन्त्र जाप्य सहित कई वार किया। ध्यानस्थ होते ही वह किशोर क्या देखता है कि जिन शासन की अधिष्ठात्री देवी 'जृम्भा' वैताली विद्या की अनुचरी देवी के वक्षस्थल पर सवार है और उत्तप्त धूल का भयकर चक्रवात धूर्त धूलिया की कुटी पर मडरा रहा है। इतनी धूल कि श्वास लेना भी कठिन। निदान धूर्त धूलिया और उसके चेले चपाटे गिरते-पडते भागते रतिशेखर की शरण मे आये और क्षमा याचना करते हुए सनातन जैन धर्म पर अपनी श्रद्धा व्यक्त की। और जैन धर्म की जय जयकार की।

●●●

सूखे ठूठ में कोपल

"आँख के अन्धे और नाम नयन सुख।" "जन्म के कगाल पर नाम धनपाल।" आखिर नाम से कुछ वनता विगडता तो है नही, फिर भी दैव के प्रति मानो वह एक चुनौती अवश्य होता है! अथवा होता है एक तीखा व्यङ्ग!! और इस प्रकार वह नाम ही कभी-कभी आत्म-सन्तोष का साधन वन जाता है। पर इसे आत्म-सन्तोष तो क्या आत्म-वचना या आत्म-विस्मरण ही कहना अधिक उपयुक्त होगा।

वश्य धनपाल केवल निर्धन ही हों सो नही, नि सन्तान भी थे—अर्थात् "दुवले और दो अपाढ" वाली कहावत के भी वे एक खासे जीते जागते प्रतीक थे। इन दोनों दुश्चिन्ताओ ने इनके जीवन के मधुर-रस को सोख लिया था। वह जमाना आज का जमाना तो था नही कि जो गरीव हैं, वे सन्तान की इच्छा न करें और जो धनवान हैं— लक्ष्मी पुत्र हैं, वे कुछ नही तो एक पुत्री का ही मुँह देखने के लिए देवी-देवताओं—पीर पैगम्वरो की देहली पर माथा रगडते फिरें! आज के युग की तो दिशा ही कुछ दूसरी हो गई है। जिनके यहाँ एक-एक लाल के लाले पडे रहते हैं उनके यहाँ लालो की वोरियाँ भरी पडी रहती है। और जिनके यहा एक-एक दाने के लाले पडे हैं उनके यहाँ इन वालों लालो की गिनती ही नहीं।

इसी प्रसङ्ग मे इस युग के आदर्श 'सन्तति-निग्रह' के विपय मे मैं कुछ भी नही लिखना चाहता, क्योंकि उससे कहानी की पौराणिक भूमिका के छूट जाने का भय है। यद्यपि कहानी मे भूमिका प्राय नही के वरावर हैं परन्तु तथ्याश उसमे अवश्य ही समूचा का समूचा ग्राह्य है। और वह तथ्याश महाप्रभावक भक्तामर काव्य के अष्टम श्लोक, उसके मन्त्र एव ऋद्धि आदि मे गर्भित है। पुराणों मे जो कुछ लिखा है वह विज्ञापन के लिए अथवा अपनी हाट खोलने के लिए नही प्रत्युत् सम्यग्दर्शन के मूल तत्त्व श्रद्धा के चमत्कार को प्राणिवर्ग

अपने व्यावहारिक प्रयोगों से देखकर लौकिक और पारलौकिक लाभ उठावें यही उनका मूल उद्देश्य समझ में आता है।

× × ×

धन्य हैं वे परमोपकारी उदारचित निःस्पृह मुनि चन्द्रकीर्ति और महीकीर्ति जिनकी अनन्य अनुकम्पा से धनपाल को इस श्लोक पर श्रद्धा हुई। यद्यपि कुल जाति जैन वणिक् होने से भक्तामर काव्य उसको मौखिक रटा हुआ था तथापि तब वह स्वयं एक रूढ़िवादी शब्दतीर्थ और जड़तीर्थ था। युगल दिगम्बर जैन मुनियों की अपूर्व दया से जब उसने इन जड़ शब्दों की कबरें खोद-खोद कर उनमें विज्ञान ज्योति के दर्शन किये तो उसकी श्रद्धा और भक्ति उमड़ पड़ी और जब श्रद्धा और भक्ति उमड़ ही पड़ी तो उसका अवश्यम्भावी परिणाम कहाँ जाता? और एक दिन पर्यङ्कासन से ध्यानस्थ धनपाल श्रेष्ठि को उपर्युक्त मन्त्र की अधिष्ठात्री 'महिनदेवी' ने दर्शन दिये। बोली विनीत स्वर में — इस श्लोक के शब्दों में वास करने वाली मैं एक साकार शक्ति हूँ। तुम्हारी दोनों दुश्चिन्ताओं को मैं भलीभाँति जानती हूँ। चूँकि तुमने निष्काम भाव से श्रद्धा के वशीभूत होकर इस पवित्र पद्य का पाठ किया था—इसलिए मुझे तुम्हारे पास आना पड़ा। यदि किसी कामना को लेकर तुम मन्त्राराधन करते तो कदाचित् मेरा आना असम्भव हो जाता। अस्तु—"कहो, क्या चाहते हो वत्स! तुम्हारी किसी एक चिन्ता का समूल नाश ही इस समय मैं करूँगी।"

धन और सन्तान—इन दोनों अभावों में से किसकी पूर्ति के लिए वह प्रार्थना करे इस असमंजस में वह सेठ पड़ गया। निदान तर्क बोला :—जीवन जब मेरे पल्ले पड़ ही गया है तो उसकी यात्रा तो बिना पेट भरे कभी भी पूरी नहीं होगी! अब रहा सन्तान का सवाल। तो उसका हल होना इतना आवश्यक भी क्या है? वंश के नाम चलाने को ही सन्तान की आवश्यकता होती है न? सो वह तो तेरे नाम से चलती जायगी। जब धन नहीं होने पर भी तू धनपाल था अब धन हो जाने पर तू एक अमर धनपाल हो जायगा।

विश्वास ने तर्क को स्वीकार किया। अब धनपाल नाम से ही नहीं दान से भी धनपाल हो गया।

सूनी गोद मे खिलते कमल

जिसकी मधुर किलकारियों से घर का कोना कोना गुंजायमान हो जाता हो, जिसकी बाल-हठ लोक दुर्लभ वस्तुओं को भी अपने पास बुलाने की क्षमता रखती हो, जिसके धूल-धूसरित अङ्ग-प्रत्यङ्गों से सौन्दर्य टपका पड़ता हो, जिसकी सरलता में समस्त कुटिलताओं को एक अपूर्व चुनौती हो, जिसकी मन्द-मन्द मुस्कान में आनन्द का विशाल समुद्र लहराता हो और जिसके रोदन मे भी संगीत की सरस स्वर लहरी गूंजती हो—ऐसा गोदी भरा लाल नन्हा सा नौनिहाल बालक जिस परिवार मे नही है, उस घर की नीरसता का क्या कहना? लाख-लाख आमोद-प्रमोद और भोग-विलास के सघन साधनों से गृहस्थी भरी पड़ी हो, किन्तु यदि जगमगाता हुआ कुल-दीपक उस गृह मे नही है तो सर्वत्र नीरसता-शुष्कता एवं उदासीनता का घनीभूत कोहरा सा छाया रहता है। अपनी तोतली भाषा मे जो वाङ्मय का रसास्वादन कराता हो या घुटनों के बल घुटरकर जो दिन भर आगन को नापता रहता हो और रात मे लोरिया सुन-सुन कर जो मीठी नीद मे झपक जाता हो—ऐसा बालक यदि परिवार मे नही, तो दाम्पत्य रूपी जीवन-तरु मे फल क्या मिला? क्या लाभ दम्पत्ति के उस मधुर मिलन से जिसमे जीवन के सत्य की प्राप्ति न हुई हो? सौभाग्यवती होकर भी जो जिव्हा से 'मां' शब्द को सुनने के लिए सदा-सर्वदा लालायित बनी रहती हो, ऐसी अभागिनी—हतभागिनी के हृदय की टीस दूसरा कौन जान सकता है? नौ माह—दो सौ सत्तर दिन—छै हजार चार सौ अस्सी घंटे या तीन लाख अठासी हजार आठ सौ सैकिंड उदर मे रखने के उपरान्त भी जो नरक सदृश प्रसव की असह्य वेदना को हँसते-विहँसते सहने को लालायित बनी रहती हो वह 'सुत-शून्या' दिन-रात घडी घंटे कैसे काटती होगी इसे अन्तर्यामी के अतिरिक्त दूसरा कौन जानेगा—समझेगा?

लावण्यमयी रानी हेमश्री का भी यही हाल था। आधी उम्र तक तो उनके यौवन-तरु मे कोई फल लगा नही और शेष उम्र मे तो फिर आशाओ पर पानी फिरा फिराया ही था।

× × ×

अधिकाश माताएँ अपनी अशिक्षित एव अविवेक अवस्था मे—"तेरा सत्यानाश हो, तू मर जाता तो अच्छा होता, तेरे पैदा होने की अपेक्षा तो मेरा बांझ ही रहना भला था।" आदि नाना प्रकार की कर्ण कटु-वाणी अपनी सन्तान के

प्रति कहती हुई पाई जाती हैं। उन्हे स्मरण रखना चाहिए कि ऐसी स्त्रियाँ अगले भव के लिये वन्ध्या होने के कर्म का बध करती हैं—यह आगमोक्त कथन है। अथवा जो स्त्रियाँ दूसरो के वालक को देख कर ईर्ष्या की अग्नि मे जला करती हैं वे भी इसी निकृष्ट कर्म को बाधती हैं या जो नारियाँ प्रसूता की सेवा सुश्रूषा मे उपेक्षा करती हैं वे भी वन्ध्या कर्म का बध करती हैं।

आज-कल की शिक्षित महिलाएँ वासना की तृप्ति के लिए मनोरजन तो खूव करती हैं और समय आने पर गर्भपात करती फिरती हैं—या वर्थ कट्रोल की दवाओ का सेवन करती हैं, उन्हे याद रखना चाहिये कि वे अगले भव मे अवश्य ही वन्ध्या होवेंगी। अष्टम तीर्थङ्कर भगवान चन्द्रप्रभु के जीवन पर दृष्टि-पात करने से विदित होगा कि उनकी माता ने भी यह पुत्र-रत्न यौवन की ढलती अवस्था मे प्राप्त किया था, उसका कारण उनके द्वारा पूर्वोपार्जित कोई न कोई कर्म ही तो था।

× × ×

कुदेवो की देहली पर घटो नाक रगडने और सिर फोडने पर भी जव कुछ फल प्राप्त नही हुआ तो कामरूप देश की भद्रावती नगरी का राजा 'हेमब्रह्म' और उनकी आज्ञाकारिणी भार्या 'हेमश्री' एक दिन वन क्रीडा को गये। जगल मे एक शिला खड पर ध्यानस्थ वीतराग महा मुनिराज को देख दोनो उनकी शरण मे पहुँचे। और दर्शन कर उनके चरणो के समीप बैठ गये।

मन पर्यय ज्ञानी महा मुनिराज ने दोनो के मनोभावो को पढा और उनके निवेदन करने के पूर्व ही उन्होने कहा —एक नवीन जैन मदिर का निर्माण कर उसके शिखर पर स्वर्ण कलश चढाओ। मदिर की सजावट कर उसमे चतुर्विंशति तीर्थङ्करो की मूर्तियाँ स्थापित करो। इसके सिवाय सोने-चादी अथवा कासे की थाली मे महा प्रभावक श्री भक्तामर जी का नौवाँ काव्य केशर से लिखो और उसे जल मे धोकर प्रेम पूर्वक पी लिया करो! तुम्हारी मनो-कामना अवश्य ही पूर्ण होगी!

"मरता क्या न करता ?" राजा रानी ने महामुनिराज की बताई विधि को श्रद्धा पूर्वक स्वीकार किया और चरण छूकर राज-महल को लौट आये।

× × ×

वसत पचमी का दिन था। कामदेव पचशरो से रति के साथ क्रीडा कर रहे थे। प्रकृति अँगडाईयाँ ले रही थी। खिले हुए कमलो पर भ्रमर मडरा रहे थे। पक्षि युगल सरोवरों मे ही जीवन-रस प्राप्त कर रहे थे।

उसी रात्रि की बात है कि पुष्पवती रानी हेमश्री का सौभाग्य फलित हो गया ! • मधुर-मिलन मे जो जीवन-रस प्रवाहित हुआ, उसका मनोरजन नौ मास पश्चात् मानवीय आकार मे प्रकट हुआ।

राज-महल मे बधाईया गूज उठी, और नगर-भर मे दीवाली मनाई गई !

नव-जात शिशु का नाम रखा गया "भुवन-भूषण"

●●●

भ्रान्त पथिक का भाग्य

अन्धकूप मे पडे हुए सेठ जी अपने अमूल्य जीवन की अन्तिम घडियाँ गिन ही रहे थे कि एकाएक छम •छम• छमा छम की मनोमुग्धकारी सुरीली ध्वनि से वे सिहर उठे।

स्त्री वेद की भावना से नहीं, अपने उद्धार की कल्याणमयी कामना से। प्रश्न है कि एकान्त मे स्त्री की कल्पना ही वासित होकर जब पुरुष मे सिहरन पैदा कर देती है तो सेठ जी को क्यो उस प्रकार की सिहरन न हुई ? इस प्रश्न का हल एक अन्य प्रश्न खडा कर देने से सुगमता पूर्वक हो जायगा !

वह प्रश्न है—क्या वासना की उत्पत्ति मौत के मुँह मे जाते समय भी सभाव्य है ? फिर वह स्त्री एक सामान्य मर्त्य लोक की नारी तो थी नहीं— साक्षात् लक्ष्मी रूप धारिणी रोहिणी थी। जो महाप्रभावक श्री भक्तामर जी के दशवें काव्य से आहूत होकर उस निर्धन श्रीदत्त सेठ को लक्ष्मीपति बनाने आई थी। मानो "तुल्या भवन्ति भवतो ननु"— शब्दों की मूर्तिमती श्रद्धा ही सामने समुपस्थित होकर श्री जिनेन्द्रदेव के इस पुरातन साम्यवाद सिद्धान्त पर सेठ जी के हस्ताक्षर लेने आई हो।

आज भी एक साम्यवाद है, जो केवल अपनी अदृश्य रूप रेखाओं से ही हमारे मन को मृग-तृष्णा की छलना के समान मुग्ध करता है। प्रयोगात्मक नाम की कोई वस्तु सचमुच उसमे है ही नहीं।

हाँ, तो देवी को देखते ही सेठ जी तपाक से बोले —"हे देव वाले ! मुझे इस अन्ध-कूप से निकालने की महती कृपा कीजिये।"

कार्य करना होगा !

"वह क्या ?" जिज्ञासु भाव से श्रीदत्त श्रेष्ठि ने पूछा।

"यह कि तुमने जिस मत्र व ऋद्धि आदि के द्वारा महाप्रभावक श्री भक्तामर जी के दशवें काव्य के आधार पर मुझे इस वियावान जगल मे आहूत किया है—वैसे ही जन साधारण के सामने उसे तुम्हें प्रकट करना होगा। साथ ही नयमधारी साधु महाराज की सत्कृपा से तुमने यह विद्या पाई है उन्हे भी कभी विस्मृत नहीं करना। इतना कहकर देवी अन्तर्धान होगई। सेठ जी भी अन्धकूप से ज्यो ही बाहर निकले कि उनकी अट्टालिका भी उन्हे सन्मुख ही दिखाई दी।

●●●

खारी बावड़ी और पनघट पर जमघट

यह सभी जानते हैं कि पानी से तृपा शान्त होती है, परन्तु यह कितनो को ज्ञात है कि पानी से पिपासा शान्त न होकर उल्टे बढ़ती भी है। इस विरोधाभास से आप चौंकिये नही, क्योकि मेरा मन्तव्य खारे पानी से है। हम अपने दैनिक भोजन मे जब कभी लवण की मात्रा अधिक कर देते हैं तब स्वाभाविक रूप से हमे बार-बार प्यास लगती है। लवण का यह एक विशेष गुण विज्ञान सम्मत है। वास्तव मे खारे जल मे लवणादिक पदार्थ घुले रहने के कारण ज्यो-ज्यो उसे पिया जाता है त्यों-त्यो प्यास बढती ही जाती है। अव्वल तो विप के घूट के समान उसका कठ के नीचे उतरना कठिन होता है, दूसरे हमारी प्रकृति के लिए प्रतिकूल अर्थात् अहितकर भी वह है। वैसे सस्कृत मे जल का एक नाम अमृत भी है, परन्तु मैं समझता हूँ कि यह सज्ञा मधुर जल के लिए है न कि क्षारीय जल के लिए। आज का विज्ञान तो इस क्षारीय जल के लिए एक हलका विप सिद्ध कर रहा है। वैज्ञानिको ने तो यहाँ तक कहा है कि लवण ही एक ऐसा पदार्थ है जिसके कारण सर्प के विप का असर हम पर होता है। यदि बारह वर्प तक हम लवण का प्रयोग न करें तो सर्प के विष का हम पर रच मात्र भी असर न होगा। प्रत्युत हमे काटकर

वह स्वय मृत्यु को प्राप्त हो सकता है। यही कारण है कि प्रकृति ने पीने के लिए यदि हमे मधुर जल की देन दी है तो दूसरे उपयोगो के लिए खारे जल की। इस भाँति जल को विप कहना असगत प्रतीत नहीं होता और जिस प्रकार विप एक चिन्ता का विषय है, खारा जल भी उसी प्रकार चिन्ता का विपय हो सकता है। तात्विक लोग इसकी उपेक्षा कदापि नही कर सकते। भले ही वैज्ञानिक इस तथ्य की अवहेलना कर उस क्षारीय जल को मधुर रूप परिणत करने मे असमर्थ बने रहे किन्तु पुरातन पुराण कहते हैं कि युवराज तुरगकुमार जैसे तत्वदर्शी ने इसे एक महान् गहन चिन्ता का विषय समझा और उसे वैज्ञानिक ढग से नही, अपितु मन्त्रो के द्वारा मधुर बनाकर पिपासुओ का अपार उपकार किया।

युवराज तुरङ्गकुमार को महाप्रभावक श्री भक्तामर जी के ग्यारहवें काव्य पर अटूट श्रद्धा थी वह "पीत्वा पय शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धो, क्षार जल जलनिधेरसितु क इच्छेत् ॥" का पाठ प्रतिदिन किया करता था।

× × ×

कावेरी नदी के तट पर युवराज के क्रीडार्थ उनके पिता रतनावतीपुरी के राजा रुद्रसेन ने जव एक मनोरम उद्यान वनवाया तो राजपुत्र तुरगकुमार की इच्छा उस उपवन के बीचो बीच एक बृहत बापिका खुदवाने की हुई। खुदने को तो वह खोदी जा चुकी और पानी भी उसमे कई स्रोतो से द्रुतगति से आने लगा किन्तु जव उसे चखा गया तो लवण समुद्र के जल समान उसका स्वाद पाया। बस फिर क्या था, राजकुमार तुरग इसी बात से अधिक चिन्तित रहने लगे।

राजकुमार को चिन्तित देख राजा रुद्रसेन ने औषधि, मणि, मन्त्र एव तन्त्र आदि द्वारा अनेकानेक प्रयोग किये कि किसी भी प्रकार वह क्षारीय जल मधुरता को प्राप्त हो परन्तु यह साधारण सी दिखने वाली बात इतनी मामूली न थी। अन्ततोगत्वा एक दिन राजा रुद्रसेन निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि चन्द्रकीर्ति महाराज के समीप आये और अन्यान्य धार्मिक तात्विक प्रश्नो के उपरान्त लवण जल को मधुर बनाने का उपाय पूँछने लगे। मुनि श्री ने कहा —

"पाच स्वर्ण कलशो मे प्रासुक जल भर कर श्रीमज्जिनेन्द्रदेव का वृहद् अभिषेक कीजिए। तदुपरान्त उसी क्षारीय जल का उपयोग कर शुद्ध पवित्र भोजन बनाकर दिगम्बर साधु को शुद्ध भाव से निरन्तराय आहार कराइये—

परन्तु इतना स्मरण रहे कि जिसने वावडी खुदवाई हो वही उसका जल भर कर लावे और जल भरते समय महाप्रभावक श्री भक्तामर जी के ग्यारहवें काव्य का पाठ ऋद्धि मन्त्र सहित करता रहे।"

× × ×

दूसरे ही दिन युवराज तुरग ने उपर्युक्त विधि से क्रिया करके एक परम दिगम्बर मुनि को निरन्तराय आहार दान दिया। वह आहार दे ही रहे थे कि इतने मे उपवन के रक्षक ने आकर खुश खबरी सुनाई कि न जाने क्यो आज उद्यान की वावडी के पनघट पर महिलाओं का जमघट लगा हुआ है— सुनते ही तुरग के हृदय की चिर पिपासा शान्त होगई और वह मधुरता से भर गया मानो आज युवराज ने पथिको को क्षीर सागर के मधुर जल का पान कराया हो।

नगर मे इस बात को लेकर सर्वत्र खुशिया मनाई गई और जैनधर्म के जय जयकारो से आकाश गुजायमान कर दिया।

●●●

भात परात भर ! पंगत बरात भर ॥

किसी भी विषय को पढ लेना एक अलग चीज है और पढने के उपरान्त उसका मनन करना दूसरी चीज है। अधिक या कम कितना भी पढा जाय किन्तु उसके मनन द्वारा, उसके घोर पारायण द्वारा, उसमे निहित मौलिक प्रवहमान शाश्वत तथ्य को अवश्य पहुँचा जाय तभी पठन-पाठन की सार्थकता है। तभी अमूल्य जीवन का साफल्य है।

जड-चेतन, सत्य-असत्य, हित-अहित रूप मिश्रित पर्यायो मे से अपने हस वत् क्षीर-नीर विवेक द्वारा—भेदविज्ञान द्वारा सारभूत तत्त्व को अपने में आत्मसात कर लेना ही यथार्थ मनन है।...इसी मनन को चाहे आत्म-दर्शन कह लीजिए चाहे सम्यक्त्व ! निश्चयतः तत्त्व एक ही है, व्यवहार अनेक। साध्य एक ही है, साधन अनेक। उपादान एक है, निमित्त अनेक। ग्रहण करने

वाला गृहस्थ उस तत्त्व को स्त्री-पुत्र-कलत्रादि मे भी ग्रहण कर सकता है। न ग्रहण करने वाला एकान्त जगल मे रहने वाला योगी भी उसे ग्रहण नहीं कर सकता। पोथियो की पोथियें घोट कर पीजाने वाला पडित भी कहो तो उसे ग्रहण न कर सके और निरामूर्ख भी कहो तो एक ही वाक्य मे दृढ श्रद्धा कर वस्तु स्वरूप की यथार्थता तक पहुँच जावे। यही सम्यक्त्व है। स्पष्टीकरण के लिए दो लघु दृष्टान्त देखिये —

यद्यपि हमारी मूल कथा से इन दृष्टान्तो का कुछ भी सम्बन्ध नही है, तथापि सम्यक्त्व को समझने के लिए उनकी अनिवार्यता है। सम्यक्त्व का यथार्थ चित्रण करने के लिए दृष्टान्त जानबूझ कर अन्य मतो से लिए गये है ताकि सम्यक्त्व जैन धारणा का सकुचित पारिभाषिक शब्द मात्र न समझ लिया जाय। दृष्टान्त आँखो देखा होने के कारण ही यहाँ देना आवश्यक हो गया है —

एक त्रिपुडधारी पडित जी थे। उनकी वाणी मे जादू का सा वह असर कि श्रोता चित्र लिखित से और मत्र मुग्ध से रह जाते थे। छाया चित्र के व्यसनी सिनेमा जाना भूल जाते, राही अपना गन्तव्य-पथ भूल कर वही कान लगा लेते। वे तत्त्व की बात कहते थे, परन्तु स्वय भी वे क्या उस तत्त्व तक—उसके रहस्य तक पहुँचे थे—जिनका कि बार-बार उच्चारण अपने मुखारविन्द से करते थे? अधिकाश श्रोता भी या तो कथा मात्र पर ध्यान दे रहे थे या पडित जी द्वारा अपने पर उल्लू की लकडी फेरे जाने के कारण ही उन पर मोहित थे। प्रवचन के बीच-बीच मे बार-बार वे कहते कि "राम को भजै सो भव पार हो जावे।" प्रवचन नित्य सन्ध्या को होता, श्रोता भी अधिकाधिक सख्या मे उपस्थित होकर अपनी व्यसन पिपासा शान्त करते अथवा यह कहिये कि अपनी औपचारिक उपस्थिति वहाँ अवश्य देते।

एक कृषक की पतिव्रता स्त्री थी। उसका नित्य कर्म था, सन्ध्या समय खेत मे काम करने वाले अपने पतिदेव को भोजन देने जाना। उसे समय नही था, कि कभी प्रवचन सुने। अपने काम से काम था उसे तो! परन्तु सयोग की बात तो देखिये कि अपने मे मगन उस रास्ते से वह जा ही रही थी कि पडित जी के वचन "राम को भजै सो भव सागर को पार होवै" उसके कान मे पड ही गये। पड ही नही गये रास्ते भर वे उनमे गूँजते भी रहे। उस गूज का हृदय पर न जाने क्या असर हुआ कि वह उन शब्दो के तद्रूप ही होगई। पडित जी पर अटल अगाध श्रद्धा होगई थी। अतएव न जाने क्या

सोच कर लौटी उलटे पाँव ! ! और धीरे से पंडित जी के कान के पास मुँह लेजाकर बोली —आपकी ब्यालू नदी पार अमुक मकान पर होगी। · · अपना पूर्ण पता देकर कृपक पत्नी चलती बनी।······जोरो का पानी आया, इतना कि जिस सरिता को पार कर उसे दूसरे पार पहुँचना था उसमे एकाएक वाढ आगई। कृपक पत्नी तो श्रद्धा के तद्रूप निश्चल सम्यक्त्वी थी ही—आव देखा न ताव शीघ्र ही नदी मे कूद पड़ी ! ! कूदना था कि दूसरे क्षण वह अपने घर बैठी नजर आई ! आनन-फानन विविध व्यजन तैयार किये कि कही पंडित जी महाराज आ न जावें और लगी घटो से उनकी बाट जोहने। देखते-देखते सवेरा होने को आया पर पंडित जी नही आये ! बेचारी बडे असमजस मे थी। अन्ततोगत्वा दिन के १२ बज गये तब कही पंडित जी ने मकान मे पदार्पण किया।

"पंडितजी महाराज ! देखिये भोजन ठडा हो चुका है, मैं कब से आपकी बाट जोह रही हूँ—" कृपक पत्नी नम्रता पूर्वक बोली !

"मूर्खे ! तुम्हें नही मालूम नदी कितनी चढी थी ? फिर भला मैं कैसे आता ? जब वह उतरी तभी तो मैं नाव मे बैठ कर यहाँ आ सका हूँ !"

पर, महाराज जी ! मैं तो उसी समय आगई थी, आप ही ने तो कहा था कि जो 'राम भजे सो भव-सागर से पार हो जाये।' फिर यह बेचारी छोटी सी नदी क्या ?

श्रद्धा के साक्षात् दर्शन कर पंडित जी की भीतरी आँखें खुल गईं और उन्हें ज्ञात होगया कि —

> पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
> एक हि अक्षर तत्त्व का पढ़ै सो पंडित होय ॥

तात्पर्य यह कि सम्यक्त्व हो तो ऐसा हो, क्योंकि वह किसी एक धर्म की बपौती नही। अजन चोर को भी तो इसी प्रकार का सम्यक्त्व हुआ था और यही सम्यक्त्व हुआ था मत्री पुत्र महीचन्द्र को महाप्रभावक श्री भक्तामर जी के १२ वें काव्य की साधना-भक्ति के कारण से। उसका भी रसास्वादन कीजिये !

× × ×

नगरी अहिल्यापुर। राजा कुमारपाल, मत्री विलासचन्द्र। मत्री पुत्र का नाम था महीचन्द्र। महीचन्द्र की घनिष्ट मित्रता एक वैश्य पुत्र से थी।

दोनो ने एक साथ एक दिगम्वर मुनिराज के पास महाप्रभावक श्रीभक्तामर जी के १२वें श्लोक के ऋद्धि-मन्त्र आदि की साधन-विधि का पठन किया। वणिक-पुत्र ने तो पढने के लिए पटा था सो उसके हाथ तो केवल रटन्त मात्र पढना ही रहा, परन्तु राज्यमन्त्री पुत्र ने उन शब्दो मे अपनी तद्रूपता स्थापित की थी। फलस्वरूप जैन शासन की अधिष्ठात्री 'मोहिनी' (महा) देवी के द्वारा उसे कामधेनु नामक गाय की प्राप्ति हुई। जहाँ उसके दूध को छिडका जाता वही स्वर्ण का ढेर वन जाता।

लोगो को चमत्कृत करने के लिए महीचन्द ने वही दूध अपने घर के चौके मे डाल दिया तो भाँति-भाँति के पकवान तैयार होगये— हजारों स्त्री पुरुषों को वही भोजन परोसा गया पर भण्डार भरपूर ही रहा।

तात्पर्य यह कि चमत्कार और ऋद्धि सिद्धिया उसके चारो ओर चक्कर लगाने लगी। आत्मदर्शन वाले को तो मोक्ष भी जब हथेली पर रखा हुआ दीखता है, फिर उसी की चाकर इन वेचारी ऋद्धि सिद्धियो की क्या वात ?

सम्यक्त्व की लीला ही कुछ ऐसी है।

पुन कहना चाहता हूँ कि पढने मात्र से सिद्धि नही होती। शब्दों के साथ तद्रूप होने मे सिद्धि निहित है। गर्दभ की पीठ पर पुस्तको का ढेर का ढेर लग जाय तो उसे क्या उनमे निहित तत्त्वो का आनन्द प्राप्त होगा ? उसे तो जैसे ईंटो का वोझा वैसे ही पुस्तको का। उसे तो वोझा ढोने से काम।

●●●

बहुरूपिया का भंडाफोड़

दैदीप्यमान सिंहासन पर सम्राट कर्ण अपने राजसी वैभव को चारो ओर विखेरे हुए शोभित हो रहे हैं, और दिनो की अपेक्षा दरवार भी ठसाठस भरा हुआ है। ज्ञात होता है कि आज उन्होंने सर्व धर्म सम्मेलन का वृहत आयोजन किया है। देश देशान्तरो से पधारे हुए ज्ञानी, योगी, पडित, कवि, कलाकर आदि सभी वहाँ उपस्थित हैं। सव को वाणी स्वतंत्रता अर्थात् वोलने की खुली छूट है। तर्क-प्रमाण और श्रद्धा के खुले चैलेंज परस्पर मे टकरा रह

हैं। किन्तु प्रत्यक्षता के अभाव मे यह सब एक वाक्-विलास मात्र दिखाई देता था।

यह उस मध्ययुग की चर्चा है जो कि सास्कृतिक होते हुए भी साम्प्रदायिक स्पर्द्धा मे बढा हुआ था। आज तो साम्प्रदायिकता के कारण देश ने जो गहरी क्षति उठाई है वह किसी से छिपी नही है किन्तु तब ।साम्प्रदायिकता से कुछ लाभ ही हुआ था। वह यह कि इस स्पर्द्धा मे लोगो ने चमत्कार और योगो के नित नये-नये प्रयोग करके आध्यात्मिकता की नीव मजबूत बनाई थी।

अपने-अपने धर्मों की प्रशसा और डीगो से सम्राट् कर्ण जब प्रभावित नहीं हुए तो दरबार के बीचों बीच एक अपरिचित सा व्यक्ति खडा होकर जोर से चुनौती देता हुआ गरज उठा ।

मैं साक्षात ब्रह्मा-विष्णु-महेश को इस भूतल-तल पर उतार सकता हूँ। गणेश, बुद्ध, स्कद आदि देवताओ के प्रत्यक्ष दर्शन करा सकता हूँ। दर्शक गण उसकी ओर आँखें फाड-फाड कर देख रहे थे, परन्तु वास्तव मे वह एक कुशल कलाकार था। कलाकार याने बहुरूपिया। उस युग के बहुरूपिया वैदिक और पौराणिक देवताओ के वेश बना बनाकर उनकी प्रतिष्ठा घटाने मे अपनी सास्कृतिक परम्परा की कुछ भी हानि नही मानते थे। और न आज ही मानते हैं। देवताओ मे जो देवत्व आता है—पूज्यत्व भाव आता है, वह तो प्रतिष्ठा और श्रद्धा से ही आता है। और जब वह प्रतिष्ठा ही देवताओ मे छीन ली जाती है, तो वे सस्ते और बाजारू होकर गली-गली बिकते फिरते है —मिट्टी के पुतले बने हुए। परन्तु जैनियो की इस विषय मे प्रशसा ही करना पडेगी। जो वीतराग भगवान की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखने मे सदैव से सचेत रहे हैं। गली-गली बिक कर दो पैसे मे सहज ही मिल जाने वाले गणेश जी और रामलीलाओ के रामचन्द्र जी क्या देवत्व की प्रतिष्ठा को कम नहीं करते ? अस्तु

सम्राट् कर्ण अपने राज्य को एक धर्म निरपेक्ष राज्य बनाने के पक्ष मे थे, जब कि उनका राज्य मत्री सुमति वहाँ जैनेन्द्र शासन का स्वप्न देख रहा था। देखते-देखते बहुरूपिया पलायमान होगया और क्षणोपरान्त अदृश्य वाणी हुई। "शकर जी आ रहे हैं।" दरबारियो ने देखा तो सचमुच नन्दी पर सवार गले में काले सर्पों की माला डाले और भस्म लपेटे हुए शिवजी खडे थे।

इसी क्रम मे दूसरे तीसरे दिन विष्णु, बुद्ध, गणेश, ब्रह्मा, कार्तिकेय आदि देवता भी अपने-अपने स्वरूपो में जनता को दिखाई दिये।

आँखें डाल कर राजा न जाने क्या पढ़ रहे थे ? कहीं नेत्र चषक से उसके रूप सौन्दर्य का पान तो नहीं करने लगे थे ? परन्तु दासी थी कि उसने आज अपने प्रति राजा की जो यह अस्वाभाविक अभद्रता देखी तो उसके नीचे की धरती खिसकने लगी । उसे आश्चर्य हो रहा था, कि आज राजा को यह हो क्या गया ? कहीं मुझे धोखे मे रानी तो नही समझ लिया ? परन्तु बड़ों का प्यार यदि छोटों को मिलने लगे तो वे किसी भी मूल्य पर उनके चरणो मे अपना आत्म समर्पण करने को तैयार हो जाते है ? फिर नारी प्रेम की परिभाषा जैसे सुन्दर रूप से जानती है, वैसी पुरुष नहीं । "त्रियाचरित्र पुरुषस्य भाग्य, देवो न जानाति कुतो मनुष्य. ।" ऐसे स्वर्ण अवसर को चम्पा ने अपने हाथ से जाने देना ठीक न समझा और दूसरे ही क्षण उसने अपना सर्वस्व राजा के आगे रख दिया ।

x x x

व्यसन भले ही छोटा हो परन्तु उसकी सन्तान सम्मूर्च्छन जीवो की भांति दिन दूनी— रात चौगुनी वृद्धि को ही प्राप्त होती है । राजा का यह अशोभनीय व्यसन एक दिन का नहीं था । यह तो उनका नित्यप्रति का कार्य होगया था । यहां चम्पा के प्यार ने हथेली पकड़कर हाथ पकड़ना प्रारम्भ कर दिया । उसका प्यार अब केवल प्यार ही नही रह गया था, वह कुछ-कुछ शासन का रूप भी लेने लगा था । राजा भले ही केतुपुर नगर मे राज्य कर रहे हो, परन्तु चचल चम्पा तो अब राजा के ऊपर शासन कर रही थी ।

विषयासक्तचित्तानां गुण: कोवा न नश्यति ।
न वै दुष्य न मानुष्य, नाभिजात्य न सत्यवाक् ॥

सन्देह नही कि कामान्ध-कामातुर के सभी गुण नष्ट हो जाते हैं । कोटिकोटि जनता की आशाओं के केन्द्र अपने उत्तरदायित्व मे गिरकर, एक बांदी का— एक तुच्छ दासी का दास होजाय, इसे सच्चरित्र रानी का सरल हृदय कैसे सहन कर सकता था ? महारानी कल्याणी के निश्चल निष्कपट अगाध प्यार को करारा धक्का लगा था । इस स्वार्थ से उसने राजा को समझाने-सचेत करने तथा सुमार्ग पर लाने का बीड़ा उठाया हो सो नही, उसे तो राज्य मे बढ जाने वाले अन्याय, अत्याचार, दुराचार का भय था ? क्योकि राजा जिस मार्ग का अनुसरण कर रहा हो— प्रजा क्यो नही करेगी ? 'यथा राजा तथा प्रजा ।'

दरस करूँगी रतन बिम्ब के

शैशवावस्था वह सुकोमल तरु है जो इच्छानुसार मोड खाकर जीवन को मोड के अनुरूप बना लेता है। नदी के किनारे खडे हुए बडे-बडे पेड अपना मस्तक ऊँचा उठाकर कहते हैं हम महान् हैं।

किन्तु नदी की एक लहर जब उसकी जड को हिला देती है, तब उसे अपनी शक्ति का परिचय मिलता है। एक लता जो आरम्भ से ही नम्रतायुक्त वातावरण मे पोषित हुई है, झुकना जिसे सिखाया गया है—वह नदी के मध्य मे खडी होकर भी आँधी और तूफान को अपना जीवन समझ कर मौन वर्षों तक खडी रहती है।

मित्नावाई एक राजा के उच्च घराने मे उत्पन्न हुई थी जहाँ उसका जीवन आरम्भ से ही सुख और विलासता से परिपूर्ण होना चाहिये था—वहाँ वह प्रारम्भ से ही आध्यात्मिकता की ओर झुकी हुई थी। यो बाल्यपन के जीवन मे सासारिकता को कोई स्थान नही—वह अल्पवयस्का होते हुए भी ससार और धर्म की ओर सोचने लगी थी। एकान्त वातावरण पाते ही वह जगत की निस्सारता और उससे मुक्त होने का एक मात्र उपाय धर्म पर घटो सोचा करती—विवेचन किया करती।

राजा महीपचन्द्र को अपनी पुत्नी का धर्म की ओर आकर्षण देख कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होने मित्ना को श्रीमती आर्यिका के पास अध्ययन के लिए भेजा। मित्ना ने धर्म के गूढ रहस्यो को समझा और सोचा कि जीवन मे धर्म को समझना उतना मूल्यवान नही, जितना उस पर आचरण करना।

विद्याध्ययन के उपरान्त आर्यिका के पास जाकर मित्ना ने आशीर्वाद की याचना की। आशीर्वाद देते हुए श्रीमती आर्यिका ने कहा —"गुणवती पुत्नी! प्रत्येक जैन गृहस्थ का जिन-दर्शन एक आवश्यक कार्य है अत तुम्हारा भी कर्त्तव्य है कि जिन-दर्शन के बिना अन्न-जल ग्रहण न करना।"

मित्ना श्रीमती के सत्य वचन को श्रवण कर कुछ क्षण सोचने लगी—तत्पश्चात् उसने कहा —

"परम पूज्यनीया माता जी मैं प्रतिज्ञावद्ध होती हूँ कि प्रतिदिन रत्नमयी जिन प्रतिमा के दर्शन-अर्चन के पश्चात् ही भोजनादिक कार्यों को करूँगी।"

श्रीमती आर्यिका ने मित्ना को आशीर्वाद दिया और वह अपने पितृगृह लौट कर धर्म साधन करती रही।

एक समय होता है, जब फूल खिलता है और माली चाहता है कि वह फूल हमेशा वैसा ही प्रफुल्लित रहकर उपवन की शोभा बढाता रहे। वही राजा महीपचन्द्र का विचार था। वे सोचते नही थे कि कन्या एक वपौती है—थाती है जिसका सुकुमार हाथ उसके दूसरे जीवन-साथी के हाथ मे पकडाना होगा और उन दोनो साथियो की जीवन क्षेत्र मे प्रसन्नता पूर्वक दौड ही उनकी सच्ची प्रसन्नता होगी।

आखिर रानी ने—सोमवदनी सोमश्री ने एक दिन कह ही डाला—"क्या मित्रा को आर्यिका बनाने का विचार कर रखा है—आपने ? वह स्वय ही वैरागिन का भेष बनाकर जिन-साधना मे लगी रहती है और पीछे से तुम उसे प्रोत्साहन देते रहते हो ! आखिर कन्या का पाणिग्रहण किये बिना ही घर मे छुपाये रहोगे उसे ?"

रानी की बात सुनकर महीपचन्द्र ने मित्रा की ओर देखा ! उन्हे अपनी पुत्री मे वास्तविक परिवर्तन दिखाई दे रहा था। उसके कपोल, नेत्र और अधर सूर्य की अरुणिमा को भी हीन घोषित कर रहे थे। जिन अधरो पर बाल्यपन की किलकोरें नृत्य-करती थी—वे आज यौवन के बोझिल भार से उदीप्त हो उठे थे।

राजा महीपचन्द्र के घर पर विवाह की दुन्दुभि बज उठी। आम लोगो मे यही चर्चा थी कि राजा ने अद्वितीय वर की खोज की है—कोई कहता—"भाई राजा के भावी दामाद क्षेमकरजी साधारण लक्ष्मीपति नही अपितु धनकुवेर हैं—धनकुवेर !

तो दूसरे महाशय बीच मे ही बोल पडे —"क्षेमकर धर्म के ज्ञाता नही, प्रकाण्ड विद्वान भी हैं। ससार की समस्त ऋद्धिया उन्ही के पैर चूम रही हैं !" इन दोनो की बात सुनकर एक बालक कह रहा था—"भाई ! धन और ऋद्धि की बात तो हम नही जानते पर क्षेमकर जी जब कभी श्री भक्तामर स्तोत्र का कठस्थ पाठ करते हैं तो दर्शक उनकी ओर देखते ही रह जाते हैं और वे पता नही किस लोक मे ध्यानस्थ होकर विचरण किया करते हैं।

अन्ततोगत्वा विह्वल नेत्रो से वैवाहिक क्रियाकलाप समाप्त करके राजा ने विदा की और अन्तिम बार अवरुद्ध कठ से कहा "पुत्री ! पति तुम्हारे सर्वस्व हैं—उनकी सेवा ही तुम्हारा उत्कृष्ट धर्म है।"

× × ×

धूमधाम से बारात लौट कर आचुकी थी। मध्यान्ह मे सास ने आकर दुलहिन को भोजन के लिए बुलाया।

"माँ ! मुझे भोजन की आवश्यकता नही।" मिवा ने सकुचाते स्वर मे कहा।

"ससुराल आकर ऐसी अशुभ बातें नही करते बेटी। तुम्हारे लाल सिन्दूर के साथ ही तुम्हारी काया आरक्त बनी रहे—इसके लिए भोजन तो आवश्यक है पुत्री !"

"माँ ! मैं श्री पार्श्वनाथ के दर्शन के बिना भोजन ग्रहण नही करती।"

पास ही के चैत्यालय मे श्री पार्श्वनाथ की अति मनोज्ञ विशाल पाषाण मूर्ति स्थापित है—जाकर दर्शन करलो और फिर जल्दी आकर भोजन करो ! तुम्हारे श्वसुरजी घबडा रहे हैं !"

'चैत्यालय मे मूर्ति तो अवश्य है माता जी ! पर वह रत्नमयी नही है।"

सास-बहू के इस वार्तालाप को क्षेमकर जी बडे ध्यान से सुन रहे थे। वस्तु स्थिति को समझ कर उन्होंने माँ को बुलाकर कहा—"किसी की ली हुई प्रतिज्ञा को तोडने के लिए विवश करना उचित नही।" कुछ देर सोचकर पुन बोले—माँ ! चिन्ता न करो, इसका उपाय मैं करूंगा।

× × ×

रात्रि का प्रथम प्रहर था और क्षेमकर योगासन से बैठकर बार-बार पढ़ रहे थे—

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैल पूर
कृत्स्न जगत्त्रयमिद प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाश ॥१६॥

ध्यान मे क्षेमकर इतने लवलीन थे कि बीते समय का उन्हे ज्ञान न था। मुख मण्डल से तेज झलक-झलक कर कह रहा था—'साधना मे याद खुद की रही कब है ?" उनका ध्यान तो तब भग हुआ जब जिनशासन की अधिष्ठात्री चतुर्मुखी (चतुर्भुजी) देवी ने प्रकट होकर कहा—तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी कुमार !

और दूसरे दिन प्रात कल नगरवासियो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देवालय मे पाषाण मूर्ति के आगे पार्श्वप्रभु की विशाल रत्न जडित प्रतिमा के दर्शन किये।

●●●

भोग से योग की ओर

अपने पुरुषार्थ से तीनो लोको को भी एक सूत्र मे बाध देने वाला मानव जिसके सम्मुख अपने घुटने टेकता है—उस शूरवीर का नाम क्या आप को ज्ञात है ?

बडे-बडे तपस्वियो, दार्शनिको, ज्ञानियो, शास्त्रो, पुराणो आदि ने अपना रोना जिसके कारण से रोया है, क्या उनका नाम आपको मालूम है ? यही नही, परमात्मा नामधारी तथाकथित परमात्मा आज भी जिस कमजोरी को अपने पास से नही हटा पा रहे हैं—उसे क्या आप जानते हैं ?

तो सुनिये, अनत ससार के रगमच पर धूम मचाने वाले उस खल नायक का नाम है—"मोह !" वही मोह निश्चयत सच्चिदानन्द जाज्वल्यमान आत्मा रूपी सूर्य के प्रकाश को बादल बन कर रोके हुए है। शास्त्रीय भाषा मे हम उसे दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय कर्मों के नाम से पुकारते हैं। और जिसे हम आठो कर्मों मे सब से अधिक जबरदस्त और हाथ धोकर पीछे पडने वाला मानते हैं। लोक की व्यावहारिक भाषा मे हम उसे प्रेम-मुहब्बत-इश्क या वासना के नाम से पुकारते हैं।

इश्क एक ऐसा रोग है कि जिसका कुछ इलाज नहीं और जवानी के दिनो मे तो यह रोग सन्निपात का रूप धारण कर लेता है। उन्माद की अवस्था मे मनुष्य की क्या-क्या दशाएँ होती हैं उसे तो कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। सचमुच मे जवानी मे जो सम्हल गया वह सदा के लिए सम्हल गया। अन्यथा अभी तक तो जवानी के पूर मे बडे-बडे झाड झखाड बहते हुए ही नजर आये हैं। वासनात्मक प्रेम अथवा मोह पर विजय पाने के अनेक आध्यात्मिक उपचारो के अतिरिक्त एक उपचार सत्सगति का भी है। सत्सगति यदि मनुष्य को वासना से ऊपर उठाती है तो कुसगति भी उसे घोर पतित करने से नहीं चूकती।

कामी को कामी मिले, मिले नीच को नीच।
पानी मे पानी मिले, मिले कीच मे कीच ॥

उपर्युक्त लोकोक्ति के अनुसार रत्नशेखर भी ऐसी ही कुसगति मे पड गया। अर्थात् उसकी दोस्ती एक ऐसे जोगी से होगई, जो कहने को तो तपस्वी जटाजूटधारी और विविध चमत्कारो की योग्यता का स्वाँग किया करता था, परन्तु यथार्थ मे वह क्या था—इसे जानकर आप सिहर उठेंगे।

आज-कल के कई ढोंगी साधुओं के समान वह स्त्रियो को तावीज आदि दिया करता था। लालसा सचमुच मे बहुत बुरी बला है, फिर वह तो पुत्र लालसा ठहरी। पुत्र की लालसा मे मोहान्ध स्त्रिया सब कुछ करने को तैयार हो जाती हैं। यहाँ तक कि उन्हें अपने अमूल्य सतीत्व का भी ख्याल नही रहता और टके सेर वे अपनी अस्मत उन मिथ्यात्वियों—ढोंगियों के हाथ वेचने को तैयार हो जाती हैं।

× × ×

रत्नशेखर उसका चेला है और ऐसा चेला हुआ कि गुरु तो गुड ही रह गया और चेला शक्कर होगए। दुनियाँ के अन्य विषय तो सिखाने से भी सीखने मे नही आते, परन्तु वासना तो जब बिना सिखाये ही मनुष्य मे विभाव रूप से आजाती है—तब रत्नशेखर को तो इस विषय की शिक्षा देने वाले स्पेशल गुरु भी थे। तात्पर्य यह कि वह वासना का कीडा सारी रात और सारे दिन चक्रेशपुर की गली-गली में चक्कर काटता फिरता और जो नही करना चाहिये था वह किया करता? परन्तु होनहार उसकी भी कुछ अच्छी थी। उसकी शादी कर दी गई। जीवन सगिनी का नाम था 'कल्याण श्री'। 'यथा नाम तथा गुण'। मानो उस मदहोश-बेहोश आत्मा को होश मे लाने के लिए दैव ने रत्नशेखर का सत्सग कल्याणश्री से कर दिया था। जिस प्रकार श्रेणिक को चेलना की सत्सगति ने सन्मार्ग दिखाया—उसी प्रकार कल्याणश्री ने भी उसके जीवन की दिशा-पतन की ओर से हटाकर ऊर्ध्वगामी कर दी थी।

कल्याणश्री जैन कुलोत्पन्न सदाचारिणी विदुषी रमणी थी। महाप्रभावक श्री भक्तामर जी का पाठ उसकी ऋद्धि मत्रो सहित करने की उसकी दैनिक दिन चर्या थी। जब उसने पतिदेव की यह दुरावस्था देखी तो पहिले तो वह अपना भाग्य ठोककर रह गई, परन्तु बाद मे साहस बटोर कर उसने जो किया—उसे आगे देखिये।

× × ×

जोगी ने जब देखा कि रत्नशेखर को तो एक ऐसा गुरु मिल गया है जो अपना प्रभाव रत्नशेखर पर तो डालेगा ही साथ मे मेरे दैनिक धन्धे को भी चौपट कर देगा, तो उसने चमत्कारो के जादू रत्नशेखर को दिखाने प्रारभ कर दिये। अर्थात् वह किसी अगूठी को आकाश मे उडता हुआ दिखला कर

किसी भी वाँछित प्रेयसि की अँगुलि तक भेजने की क्रियाएँ करने लगा। इस भाँति रत्नशेखर का आकर्षण पुन अपने पूर्व स्थान पर केन्द्रित होने लगा।

जब कल्याणश्री ने यह हाल देखा तो वह और भी चौकस रहने लगी तथा अधिक दृढता से जोगी के प्रभाव को नष्ट करने की योजना सोचने लगी। अर्थात् कु-सगति और सत्सगति का सघर्ष छिड गया और रत्नशेखर दोनों के वीच मे त्रिशकु की भाँति लटक गए। क्या करें क्या नही ? परन्तु सात्विक गुणो की तो सदा सर्वदा ही अन्तिम विजय रही है। तामस गुणो मे वह ताकत कहाँ ?

एक दिन कल्याणश्री ने जोगी को अपने घर आमत्रित किया और भोजनोपरान्त जल को भक्तामर जी के १७ वें काव्य की ऋद्धि और मत्र से मत्रित किया और उस मत्रित जल को स्वय पीने के पश्चात् उच्छिष्ठ जल पीने के लिए पाखडी जोगी के सामने रख दिया। जोगी जी उस जल को पीकर भोजन समाप्त कर ही रहे थे कि उसके पूर्व जिनशासन की अधिष्ठात्री गाधारी नाम की महादेवी आकर सामने खडी होगई। उसने एक अँगूठी जोगी को देकर कहा कि "उडाओ इसे"। परन्तु कीलित अँगूठी काहे को उडती ? अब गाधारी ने स्वय वह सुवर्ण मुद्रिका आकाश मे फैंकी, तो जहाँ पर वह गिरी वहाँ एक सुन्दर भव्य जिनालय दृष्टिगोचर हुआ।

महादेवी गाधारी के इस अनोखे चमत्कार को देख कर जोगी देवी के चरणो मे आकर गिर पडा और हमेशा हमेशा के लिए दूसरो को चगुल मे फसाने वाली अपनी धूर्त विद्या का परित्याग कर सच्चा जिन भक्त वन गया।

अपने गुरु की यह अवस्था देखकर रत्नशेखर से भी न रहा गया—वह अपनी धर्मपत्नी कल्याणश्री के समक्ष अधिक लज्जित हुआ और उपरान्त जिनालय मे जाकर अपने अपराधो का प्रतिक्रमण कर शेष जीवन सत्सगति मे व्यतीत करने की प्रतिज्ञा ली।

जिन लोगो ने गाधारी के इस चमत्कार को देखा वे भी जिनेन्द्रभक्त बनकर सुख शाति का जीवन यापन करते हुए अपने को धन्य मानने लगे।

●●●

जड़मति होत सुजान

आधुनिक समय मे पैतृक व्यवसाय वहुत कम लोग अपनाते हुए देखे जाते हैं ! आज कोई डाक्टर का पुत्र पैतृक वल पर "स्टैथिसकोप" रखकर रोगियो पर शासन जमा बैठे तो फिर कल्याण ही कल्याण है। न मर्ज रहे, न मरीज। अस्तु—

उपरोक्त शीर्षक की कहानी का आधुनिक युग से गठ-बन्धन नही किया जा सकता। कहानी उस जमाने की है, जब पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति, पद और ओहदा का नैसर्गिक अधिकारी होता था। राजा का कितना ही निकम्मा-कायर-बुजदिल पुत्र क्यों न हो—वादशाह बनकर गद्दी पर बैठेगा। राज्य के पुरोहितजी के पुत्र महाशय को चाहे काला अक्षर भैंस वरावर हो, पर वे वनेंगे राज्य-विप्र ही।

प्रमुख राज्य मत्री सुमतिचन्द्र की मृत्यु के उपरान्त कुलिग देश की वरवर नगरी के अधिपति चन्द्रकीर्ति ने उनके सुपुत्र को बुला भेजा। भद्रकुमार के दरवार मे जाने के पूर्व ही उनकी माँ समझाने लगी—"बेटा भद्र ! राज दरवार मे अदव से जाना, ओहदे का ख्याल करना" ! पर सिखाये पूत कहाँ तक स्वर्ग जावेंगे !

भद्रकुमार राज-दरवार पहुँचे। अभी तक सोलह वसन्त उन्होंने पार किये थे। उनमें से वारह वसन्त तो खेल-कूद और पिताश्री के गोद मे व्यतीत हुए थे। चार वसन्त जरूर घर का काम किया था। पर पिताजी ने तो घर के ढेर सारे पशुओं की गिनती और उनके देखरेख का काम उन्हे सौपा था। दरवार के भव्य वार्तालाप को कुछ समय तक पशुओ के स्वरो से मिलाते रहे और अन्त मे कुछ न समझ कर एक कोने मे दुवक रहे।

राजा ने पूंछा —"भद्रकुमार ! पिताजी के मन्त्रित्व पद का भार वहन कर सकोगे ?"

भद्रकुमार ने उत्तर दिया—"राजन् ! मेरी माँ भी कहती थी कि तुम्हें मत्री वनना चाहिये।"

और, तव !

दरवारियो की हँसी सुनकर राजा ने कहा—"भद्रकुमार ! विना ज्ञान के कैसे तुम यह गुरुतर कार्य कर सकोगे ?"

मनुष्य अपने को अधिक नहीं छिपा सकता। कितना ही अपने को छिपाये पर वार्तालाप उसके ज्ञान का भंडाफोड़ कर देती है। अन्त में भद्र बोला—'राजन्! मैं पिताश्री की लाखों कोशिशों के बावजूद भी साहित्य और व्याकरण से कोसों दूर रहा और आज इस योग्य नहीं कि मंत्री बन सकूं। मुझे कोई अन्य कार्य दीजिये महाराज! जिससे मैं अपनी आजीविका चला सकूं।"

राजा ने कहा—"मूर्खों को मेरे दरबार में स्थान नहीं। यदि यहां स्थान चाहते हो तो अध्ययन करना आवश्यक है भद्र!"

× × ×

तुलसी, सूर, वाल्मीकि आदि जितने महान् पुरुष हुए सभी तो फटकार सुनकर एक प्रशस्त पथ की ओर बढ़े थे। भिखारी हो या बादशाह अपनी निन्दा बरदाश्त नहीं कर सकता। भद्रकुमार भी निंदा का जहरीला कड़वा घूंट पीकर एक मार्ग की ओर बढ़ चले और दुनियां से ऊब कर नग्न दिगम्बर मुनिराज की सेवा में जा उपस्थित हुए। चरण-रज माथे पर लगाकर विनयावनत हो बोला—"भगवन्! मुझे ज्ञान दो! जिससे मैं अपने पिता के मंत्रित्व पद को पा सकूं।" और तब दयालु मुनिराज ने उपदेश किया:—मिथ्यात्व को छोड़ कर सम्यक्त्व की ओर पयान करो वत्स! जिनेन्द्र और जिनेन्द्र वचनों में विश्वास करो और इसके साथ ही महाप्रभावक भक्तामरजी का १८ वां श्लोक पढ़ कर सुनाया और कहा—इस श्लोक का इसकी ऋद्धि मंत्र सहित प्रतिदिन जाप्य व पाठ करने से तुम्हारे मनोरथ की सिद्धि होगी।

× × ×

भद्र परिणामी भद्रकुमार तीन दिन तक लगातार जिन आराधना में लगे रहे, अन्त में जिनशासन की अधिष्ठात्री 'वज्रादेवी' को सामने प्रकट होते देखा।

देवी ने कहा—"आप की अनुचरी हूँ—आज्ञा प्रदान कीजिये।"

भद्रकुमार ने कहा—वरदान दीजिए कि मैं विद्वान बनूं।

पाठक! आगे के वृतान्त से परिचित ही हो गये होंगे। दरबार में राजा ने उसके इतनी जल्दी विद्वान होने का कारण पूंछा।

विनयावनत हो भद्र बोले—राजन् जैन-धर्म के प्रभाव से बड़ी-बड़ी ऋद्धियां और महान् ज्ञान प्राप्त होता है फिर इस शास्त्रीय ज्ञान की क्या गणना है?

●●●

दूध का दूध-पानी का पानी

"सुखानदकुमार को छह मास की सख्त कैद ।"

हस्तिनापुर की गली-गली में यह समाचार प्लेग के सक्रामक कीटाणुओं की तरह फैल गया । शहर भर मे यदि चर्चा का कोई एक विषय था तो बस यही कि इस दुनियाँ मे ईमानदार से ईमानदार और सच्चरित्र से सच्चरित्र व्यक्ति भी लोभ-लालच मे पडकर अपने सुनहरे भविष्य को बिगाड लेता है । कुलीन घराने मे उत्पन्न सुखानन्द के उन्नत ललाट पर यह टीका लगना ही था सो लगा । जन-साधारण की दृष्टि मे यद्यपि वह बदनियत बेईमान और अव्वलदर्जे का तस्कर सिद्ध हो चुका था, परन्तु उसकी अन्तरात्मा पुकार-पुकार कर कहती थी—कि स्वर्ण अग्नि मे तपाये जाने पर ही सौटच का सिद्ध होता है । सीता जी का पातिव्रत्य और भी निखर उठा था—अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होकर !

× × ×

कारागार में पडा हुआ सुखानद अपने दैव दुर्विपाक को दोष देता हुआ अपनी आत्मा को सान्त्वना देता कि कृष्णमन्दिर की हवा विरले ही महापुरुषों को प्राप्त होती है । यह एक ऐसी तपस्या है जो कि सद्य फल प्रदायिनी होती है । अधिकाश महान् आत्माओ की जन्मभूमि जेल ही तो रही है । आदि ।

और क्या हमने आज प्रत्यक्ष नहीं देखा अपनी आंखो कि कल तक कारावास मे सडने वाले आज राष्ट्र के तपोपूत कर्णधार हैं । और तपस्या के वरदान स्वरूप सत्ता की बागडोर आज जिनके वरद हस्तों मे सुरक्षित है ।

दूध मे पानी, शुद्ध घृत मे डालडा वनस्पति और सोने मे रोल्ड गोल्ड आदि मिलावटो से आज असली-नकली की पहिचान बडी कठिन होगई है । मिलावट का रोग कोई नया नही । वह उतना ही पुराना है, जितनी कि मनुष्य की आसुरी प्रवृत्तियाँ ।

स्वर्णकार रत्नज्योति ने राजा की आँखों मे धूल झोंक ही दी । अर्थात् सारे के सारे हीरा-पन्ना, मणि-मुक्ता, स्वर्ण आदि बहुमूल्य जवाहिरातो को तो उसने अपने घर रख लिया और असल का भी मुंह मारने वाली नकली धातुओं के आभूषण निर्माण कर राजा के समक्ष प्रस्तुत करने लाया ।

मायावियों और नक्कालों को जब ईश्वर का भी भय नहीं रहता तब

राज-भय क्यो होने लगा ? उसने तो सोच ही लिया था कि यदि राजा ने अपनी पैनी भेद-दृष्टि से असल को असल और नकल को नकल पहिचान कर अलग थलग कर दिया तो मैं तो तत्काल ही कह दूंगा कि नगर जौहरी सुखानन्दकुमार ने ही आप के साथ धोखा किया है—मक्कारी की है। उसने आपको माल वतलाया तो असली ही था पर आपकी नजर वचाकर उसके वदले मे नारा का सारा जेवर नकली ही रख दिया था। मैं तो आपको उसी समय टोकने वाला था—सचेत करने वाला था, परन्तु यह सोचकर रह गया था कि कही महाराज यह न कहने लगें कि मेरी वुद्धि से होड लगाने वाला तू कौन ? निदान नक्काल और वदनियत रत्नज्योति स्वर्णकार की युक्ति काम कर गई। और उसी सुनिश्चित रूपरेखा के आधार पर जौहरी पुत्र सुखानन्द कुमार को कारागार मे डाल दिया गया।

× × ×

विना अन्नाहार ग्रहण किये कारागार मे पडे हुए उसे पूरे ७२ घन्टे होगये, पर धीर-वीर सुखानन्द का हृदय रचमात्र भी क्षोभित नही था। क्योकि महाप्रभावक श्रीभक्तामरस्तोत्र पर अटल—अगाध श्रद्धा थी—उसे ज्ञात था कि इस महान् स्तोत्र के प्रणेता प्रात स्मरणीय श्रीमन्मानतुङ्गाचार्य पर भी तो यही वडी विपत्ति पडी थी। उन्हे भी अडतालीस ताले वन्द कोठरियो वाली जेल मे वाध कर रखा गया था, परन्तु राजा भोज उनका वाल भी वाका न कर सके। सच ही तो है —

जाको राखै साईया—मार सकै न कोय।
वाल न वांका कर सकै, जो जग वैरी होय॥

फिर मैं तो सोलह आने सचाई पर स्थित हूँ—दूध का दूध और पानी का पानी सव स्पष्ट हो जायगा उसने वार-वार भक्तामर स्तोत्र का १६वां श्लोक उसकी ऋद्धि मत्र का पाठ पढना प्रारभ किया।

कारागार की काली कोठरी मे एक रात्रि, जव वह सो रहा था तव जैनशासन की अधिष्ठातृ जम्वूमति देवी ने आकर उसे उठाया और उठाकर उनके घर निद्रित अवस्था मे ही रख आई।

दूसरे दिन राजा सूरपाल ने देखा कि कारागार का दरवाजा खुला पडा है और सुखानन्दकुमार अपनी जवाहरातो की दुकान पर निश्चिन्त वैठे हुए

व्यापार मग्न हैं। राजा समझ गया कि उसने पिछली रात के अन्तिम प्रहर मे जो स्वप्न देखा था वह इसी रूप मे साकार हुआ है। बस फिर क्या था ?

राजा सूरपाल जैन-धर्म का अटल श्रद्धानी हो गया और स्वर्णकार रत्न-ज्योति अपने किये का फल भुगतने के लिए कारागार मे डाल दिया गया।

●●●

कु-गुरु और सु-गुरु

सेठ अडोलदत्त जैन-धर्म के दृढ श्रद्धानी पुरुष थे। चौपाल मे बैठे हुए सभी व्यक्ति कह रहे थे—"वाह ! कैसा धर्म विश्वासी है।"

पर किसे मालूम था कि चिराग तले अँधेरा ही बना रहता है ? उनके पुत्र विष्णुदास पिता का सान्निध्य और सहयोग पाकर भी मिथ्यात्व के घने अन्धकार मे छटपटा रहे थे।

नगर मे एक दिन एक साधु महाराज का आगमन हुआ।

साधु महाराज की वेष-भूषा तो आकर्षक थी ही, पर साथ ही आकर्षक था उनका मलिन चरित्र, जो उस समय ढोंग की काली चादर से आच्छादित था। बडी-बडी लम्बी जटायें जो उनके मुख-मण्डल की शोभा बढ़ा रही थी—वास्तविक नही थी—अपितु पशुओ की केशराशि पर काली स्याही की पेन्ट चढाकर उपयोग किये जा रहे थे। साधु ने विष्णुदास को निकट आता देख कर सोचा—सोने की चिड़िया पिंजडे मे फँसने वाली है। और योगासन से श्वास रोक कर इस प्रकार बैठ गये, जैसे बगुला अपने पेट-पूजा के लिये अष्टद्रव्य-मत्स्यराज को देखकर ध्यानस्थ हो जाता है।

"साधु महाराज ! कुछ उपाय बतलाइये ताकि संसार-समुद्र से पार होकर स्वर्ग-लाभ कर सकू—"

"वत्स ! तुम्हारा कथन ठीक है, पर तुम सेवक लोग हम सत्संगी साधुओं के भोजन-वस्त्र की फिकर न करके, उपदेश की रट लगाया करते हो ! अरे भाई। किसी कवि ने ठीक ही तो कहा है —

'भूखे भजन न होय गुपाला'

बन्धु ! यदि देश और धर्म की यही दशा रही तो हम साधु लोग हिमालय की चोटी पर निवास स्थली बनाकर 'कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे'—का आह्वान भूखे पेट रह कर ही करते रहेंगे, पर इस म्लेच्छपुरी में पैर न रखेंगे।

साधु महाराज का उपदेश विष्णुदास के माथे पर चढ़ चुका था और फिर एक ही दिन नहीं हफ्तों विष्णुदास ने साधु की सेवा सुश्रूषा में अपने को धन्य माना। विष्णुदास के साधु प्रेम की चर्चा सारे नगर में फैल गई थी। वही विष्णुदास जो पिताजी के लाख कहने पर उधारी के पैसे दुकानों पर जाकर न लाते थे आज साधु महाराज के लिए चंदा एकत्रित कर रहे थे। हुक्के में गांजा तम्बाकू भरना हरि-कीर्तन की महफिल लगाना इत्यादि सभी कार्यों का भार विष्णुदास ने अपने ऊपर उठा रखा था। इन सब कार्यों के उत्तरदायित्व का उद्देश्य सत्सेवा तो था ही पर साथ ही वे सोचते थे कि यदि साधुजी की आराधना में त्रुटि हुई तो उनकी मंडली आगे से साधु-पूजा के महान पुण्य को हाथ से खो बैठेगी। इधर साधुजी थे जो प्रतिदिन भक्तों की कृपा और अपने बनावटी आशीर्वाद से मिष्टान्न भोजनों पर हाथ साफ कर रहे थे। नगर में पाठशाला के अभाव की पूर्ति के लिए जो उन्होंने अल्प धन राशि दो सहस्त्र रुपयों की जोड़ रखी थी—अब वे उसी को भस्मसात करने के घोर प्रयत्न में थे। आखिर एक दिन उन्होंने उपदेश किया—

"धर्मानुरागी भाइयो ! आप लोगों के बीच धर्म-साधन पूर्ण रूपेण जारी रह सका, मेरा मन तो चाहता है कि यहीं एक घास फूस की छोटी-सी कुटिया में पड़ा रहूँ। पर नहीं, भक्तो ! साधु लोग अपना घर नहीं बनाते। यह पृथ्वी और आकाश ही भगवान की माया द्वारा उन्हें महागृह के रूप में निर्मित हुए हैं। साधु के कर्त्तव्य से तो आप लोग भली-भाँति परिचित हैं। एक जगह स्थिर रहने का अर्थ है—उसे उस भूमि से—स्थान विशेष से मोह हो गया है और मोह ही उसे इस पूज्य पदवी से पदच्युत करा सकता है। अतः भक्तजनो ! आज्ञा दो कि मैं अन्यत्र गमन कर सकूँ।"

विष्णुदास बीच ही में बोल उठे—"महात्मन् ! हम भक्तों की धर्म जिज्ञासा को ठुकराकर आप यह क्यों कह रहे हैं।" साधु ने तीर को बे-निशान समझ कर अवरुद्ध कंठ से कहा :—

"भक्तो ! मेरी आँखों से आँसू बह रहे हैं, मेरी आत्मा रो रही है, दिल बर्फ होकर पिघल रहा है, कि साधु पुरुष का किसी गाँव विशेष में मोह उचित नहीं है।"

भक्त मण्डली भी तब साधु जी को न रोक सकी। यह अवश्य हुआ कि

विष्णुदास को वे अपना पट्ट-शिष्य बनाकर साथ मे ले गए। गुरु-शिष्य का आसन दूसरे गाव मे जम चुका था। अब विष्णुदास अपने गुरु की वास्तविक वृत्ति को समझ गया था। विषाद की काली रेखाएँ उसके अन्तस्तल पर खिच चुकी थी। और एक दिन साधु जी भी अपने अनन्य सेवक से पीछा छुडाने के उद्देश्य से एकत्रित रकम बटोर कर रातो-रात वहां से नौ दो ग्यारह हो गए।

× × ×

पुत्र की विषाद युक्त अवस्था देखकर पिता अडोलदत्त अत्यन्त दुखी थे। वे उसे मृतवत् समझ चुके थे किन्तु उस दिन उनके आश्चर्य की सीमा अतिक्रमण कर चुकी जब उनके पैरो पर पुत्र शिर टेक कर क्षमा याचना कर रहा था।

अब भी विष्णुदास एक अन्य साधु के चक्कर मे था किन्तु वह ढोंगी साधुओं को एक बार पतित समझ चुका था और यही कारण था कि वीतरागी दिगम्बर जैन साधु के समक्ष उसका माथा झुक न सका।—अग्नि का तेज सभी को आकर्षित करता है और जैन मुनि के मुख-मडल पर दैदीप्यमान तेज दावानल से कई गुना प्रतापयुक्त होता है। फिर कौन न झुककर आत्मसमर्पण कर देगा उसे ? उसने मुनिराज की आन्तरिक गुत्थियो को सुलझा-सुलझा कर देखा।

विष्णुदास ने सोचा—कही इनके मन मे स्वार्थ की चिनगारी तो नही जल रही है। और तब उनके परीक्षण की ओर वह झुका। मुनिश्री से भी वह पहिले साधु से पूंछे गये प्रश्न को दुहरा उठा।

"ससार से छूटने का उपाय बतलाईये महाराज !"

दयासागर मुनिराज ने कहा—"वत्स ! प्रत्येक सीढी पर पांव रख कर महल मे चढना युक्ति सगत है, पर एकदम कई सीढिया लाघने से मनुष्य मुँह के बल गिरता है। तुम्हारे अन्दर की आत्मा अभी सत्य के प्रकाश की ओर नही बढी और तुम अन्तिम उपदेश की ओर बढ रहे हो। गृहस्थ का सब से बडा पुण्य कार्य वही है, जिसमे उसकी स्वय की आत्मा धिक्कारे नही, वरन सहमति दे।"

× × ×

भूला-भटका पथिक सुराह पर आचुका था, किन्तु उसके सोये हुए भाव कहते थे, कि साधुओं पर विश्वास करना ठीक नही, जब तक उनमे कोई

विशेपता न हो। उसने कहा—"महाराज ! कोई चमत्कार दिखलाइये, जिससे मेरा धर्म और साधुओ पर विश्वास हो ?"

मुनी श्री ने महाप्रभावक भक्तामर जी का२० वां श्लोक मय ऋद्धि मत्र के सिखलाकर कहा—"वत्स ! तुम सभी व्यक्तियो के समक्ष अपना मनोरथ सिद्ध करो, जिससे सभी व्यक्तियो का धर्म मे विश्वास हो सके।"

× × ×

राजा की सम्पूर्ण प्रजा दरवार मे उपस्थित थी। विष्णुदास ने सुरीले कठ से पढना शुरू किया —"ज्ञान यथा त्वयि विभाति कृतावकाश" और तत्काल जैन शासन की अधिष्ठात्री 'भृकुटी' नाम की देवी वहा उपस्थित हो चुकी थी। देवी ने विष्णुदास को अष्ट सिद्धियाँ प्रदान की, तव विष्णुदास जगल मे पहुँचकर मुनिश्री के चरणो मे गिर कर वोले —"वास्तव मे पाखडी साधु पेट पूजा के उद्देश्य से आज भारत वर्ष मे धूनी लगाकर पचाग्नि तपकर देशाटन कर रहे हैं और इन महात्माओ के पुण्यतम कार्यों पर भी अपनी काली करतूतों की स्याही पोत रहे है।

●●●

प्रकृति का प्रकोप भी उसे परास्त न कर सका

प्रकृति चारो ओर श्रृङ्गार से ओत-प्रोत थी। सरिताएँ लहराती-इठलाती हुई अपने असीम प्रवाह से वह रही थी। वडे-वडे पर्वतराज अपना मोहक हरा परिधान पहिन कर दर्शको को मोह लेते थे। निर्जन वन-खड मे एक ओर पपीहे की पी-पी पुकार और मण्डूकों की वेद-ध्वनि प्रसारित हो रही थी—तो दूसरी ओर मयूर वृन्द नाच-नाच कर कह रहे थे —

"इस वसत में नाचो-कूदो प्रमुदित हो सखि!"

चचल चपला की चपलता और मेघो की गभीर ध्वनि इस प्रकार दिखाई

दे रहे थे, मानो विद्युत के प्रकाश मे इन्द्रदेव सितार (वीणा) वादन हेतु प्रस्तुत हो रहे हैं।

इस श्रृङ्गार पूर्ण सुहावने-सौम्य वातावरण मे श्रीधर और रूपश्री पाणि-ग्रहण के पवित्र वन्धन मे वध चुके थे। सम्पूर्ण वैवाहिक क्रियाओ का सानन्द समापन हुआ और रिश्तेदार, सगे सम्बन्धी एक-एक कर जाने लगे। विवाह के पूर्व श्रीधर ने इष्टमित्रों सहित सहपाठियो की वडी आव-भगत की किन्तु अव वह उनसे पिण्ड छुडाने को आतुर हो रहा था। मनोरजन गृह मे जाकर मित्रो मे घन्टों वार्तालाप करने वाला श्रीधर उनकी छाया से भी वचने लगा। मित्र लोग आपस मे कहते —"भाई! पहिली पहिली शादी जो है, और कभी-कभी पास मे गुजरते श्रीधर को ताना मार कर कहते—'भई! इश्क और मुश्क छिपाये नही छिपते।"

इधर श्रीधर था, जो नवोढा नव-वधू के प्रेम के आगे मित्रो के तानो को अनिहीन समझता था।

× × ×

विवाह के पश्चात् आज दशवां दिन था। प्रात काल से ही वर्षा की घनघोर झडी लगी हुई थी। नगर में चारो ओर निस्तब्धता थी, केवल पुराने विचारो के भोले-भाले कृपकवन्धु आल्हा ऊदल जैसे जोशीले व्याख्यान गा रहे थे और कुछ मन चले नव-जवान आख्यान मे वर्णित गुणो को अपने अन्दर जवरदस्ती टटोलकर मूँछो पर ताव दे रहे थे। अधिक काम करने वाले सेवक लोग मेघराज की असीम अनुकम्पा से आकस्मिक अवकाश मना रहे थे और उनके स्वामी मेघराज की इस दुष्टता पर दात पीस रहे थे।

श्रीधर के परिवार वाले मध्यान्ह मे भोजन कर चुके थे, किन्तु रूपश्री अभी तक निराहार थी। घनघोर सघन वर्षा मे नगर से पांच मील दूर देवालय मे स्थित जिनदेव की आराधना करना टेडी खीर थी। सास ने आकर आश्वासन दिया सायँकाल को श्री जिनमन्दिर जी चलेंगे। अभी इस स्थिति मे चलना असभव है! किन्तु जैन धर्मावलम्वी अपनी ली हुई प्रतिज्ञाओ को प्राणपण से निभाते हैं। और घनघोर मूसलाधार वर्षा एक ही दिन नही अपितु सात दिन तक लगातार जारी रही। वडे-वडे विशाल-भवन आज जल मग्न हो चुके थे। गाँव के गाँव नदियो की वाढ मे घिर चुके थे। नगर से ५ मील दूर अवस्थित देवालय भी वाढ के क्षेत्र मे आचुका था। पानी रुकने पर सात दिन से निराहार रूपश्री जव देवालय की ओर जिन-दर्शन हेतु पहुँची

"मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा ।"

और इस श्लोक को पढ़ कर वह रुक गया। उनने उसे आनन्दानुभूति हो रही थी। इसी श्लोक को जब वह बार-बार दुहरा रहा था कि जिनशासन की अधिष्ठातृ समस्त अलङ्कार विभूषिता 'मीरा देवी' ने प्रकट होकर कहा—

'वत्स! प्रसन्नोऽस्मि वरं वृणीष्व।" श्रीधर ने वर याचना करके समस्त परिवार सहित वायु-रथ पर चढ़ कर जिन वन्दना की। मन्दिर जी ने मुनिराज का उपदेश उन्हें आज अमृत तुल्य प्रतीत हो रहा था। और इस अनुपम अलौकिक चमत्कार मात्र से उनका धर्म के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धान हो चुका था। मुनिश्री से पञ्च कल्याणक व्रत की प्रतिज्ञा लेकर वे श्रीधर से महात्मा श्रीधर बन चुके

थे और उनकी दृढ़ प्रतिज्ञा विदुपी पत्नी रूपश्री "मन्ये वर हरिहरादय एव दृष्टा श्लोक को पुन दुहरा-दुहरा कर जिनदेव के समक्ष पढ रही थी।

●●●

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ बैरत्यागः

जिन-शासन के देवी-देवताओ और अन्य मिथ्यात्वी विपय कपाय युक्त व्यन्तर देवी देवताओ के द्वन्द्व सम्बन्धी अनेक कथानक पाठको ने पढे-सुने होगे। प्रस्तुत कथा प्रसग भी लगभग ऐसी ही रोचक घटना का विवरण प्रस्तुत करता है। श्रीमद्भट्टाकलक देव ने जिस भांति बौद्धमत की अधिष्ठात्री तारादेवी को शास्त्रार्थ मे परास्त किया था—वैसे ही वणिक् पुत्र महीचन्द ने चण्डीदेवी को अपने विद्यावल से पराजित कर एक निर्ग्रन्थ मुनिराज का उपसर्ग निवारण किया था।

इस वणिक पुत्र की शिक्षा-दीक्षा का सम्पूर्ण भार तत्कालीन उज्जयिनी नरेश श्रीचन्द्र ने अपने कधो पर ले लिया था। क्योकि वह उनके प्रिय मन्त्री मतिसागर का एकलौता पुत्र जो था। फलत कालान्तर मे वालक महीचन्द सभी प्रकार की लौकिक एव आध्यात्मिक विद्याओ मे निष्णात होगया। गुरु प्रसाद से महाप्रभावक स्तोत्रराज श्री भक्तामर जी के चमत्कारी काव्यो पर तो उसे कमाल हासिल हो गया था।

× × ×

एक दिन क्या हुआ कि नग्न दिगम्बर मुनि एकाकी विहार करते हुए किसी रम्य एकान्त स्थल की खोज-खवर मे उज्जयिनी नगरी से दूर एक ऐसे विमोचित शून्यागार मे पहुँचे जहां उन्हे एकाग्रचिन्ता निरोध पूर्वक ध्यान करने की अनुकूल सुविधा दिखाई दी। और वस फिर क्या था? वैठ ही तो गये वे कमलासन मांडकर अन्तरात्मा की खोज मे।

परन्तु कौन जानता था कि इस एकान्त शून्यागार मे व्यन्तर जाति की देवी चण्डी का आवास है—चण्डी का स्वरूप वस्तुत उसके नामानुकूल ही

था। अर्थात् भयानक रस की निष्पत्ति करने वाली प्रचण्ड रौद्र-मुद्रा और हिंसक अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित वेशभूषा उनके आतङ्कवादी प्रभुत्व की स्पष्ट घोषणा कर रही थी।

प्रशान्त मुद्रा के धारी मुनिराज पर उस पिशाचिनी ने यथाशक्ति विविध उपसर्ग किये। कभी अगारे बरसाये तो कभी हिंसक पशु सिंह, चीते, भेडिये, श्वान आदि उन अकिंचन आत्मध्यानी योगी पर छोड़े परन्तु दीन दुनिया से दूर, अपने में मस्त उन महात्मा का क्या बिगड़ता? उनकी श्रद्धा में तो यह सब उनके ही पूर्वकृत कर्मों का उदय था, जिन्हें समता पूर्वक सहकर वे संवर और निर्जरा का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे—उनकी अजर-अमर आत्मा का कर्म भला क्या बिगाडते?

आत्मा तो अजर-अमर-अविनश्वर-आनन्दकर अभेद्य-अछेद्य है। उपसर्ग तो उनके पौद्गलिक शरीर पर प्रहार कर सकता है। क्या अबद्ध अस्पृश्य आत्मा पर भी उपसर्गों की रच मात्र आच आसकती थी? कदापि नही।

भावकर्मों द्वारा यदि नवीन द्रव्यकर्मों का आश्रव न किया जाय तो कर्मों की संतति का प्रवाह ही एकदम बन्द हो जाता है और उनका उदय अपनी स्थिति निःशेषकर अस्त को प्राप्त हो जाता है। इसलिए बाहिरी दर्शक संसार को तो यह दिख रहा था कि परम दिगम्बर मुनिराज पर कितना घोर संकट है, परन्तु स्वयं मुनिराज के आन्तरिक लोक में जो आलोक छाया था, उसका आल्हादमय आस्वाद और अनुभव केवल उन्हें ही था। वे तो मानो चैतन्य का पीयूष पीते न अघाते थे।

× × ×

राजा श्रीचन्द के कानो में भी यह चर्चा सुन पडी कि नगर के चण्डीमठ में एक निर्ग्रन्थ साधु पर घोर उपसर्ग किया जा रहा है। उन्होंने तत्काल महीचन्द को बुलाया और देवी को किसी विधि से भी उस मठ से निष्कासित करने का सकल्प दुहराया।

अनादिनिधन णमोकारमंत्र का जाप्य करते हुए महीचन्द यथास्थान पहुँच गये तथा श्री मुनिराज के समीप बैठ कर महाप्रभावक भक्तामरस्तोत्र का पाठ कर ही रहे थे कि २२वें २३वें श्लोक पर पहुँचते ही जिन शासन की अधिष्ठात्री मानस्थम्भिनी देवी प्रकट हुई—बोली —

"वत्स! क्या चाहते हो?"

"प्रशान्तमूर्ते! मैं अपने लिए तो कुछ नही चाहता, परन्तु हाँ, यहाँ का

वातावरण अवश्य शान्त चाहता हूँ जो कि क्षुब्ध हो उठा है। इस गुफा की रहने वाली पिशाचिनी चण्डिका के कारण।"

"इस रौद्र रूपधारिणी की यह मजाल कि एक योगी के ध्यान मे बाधा डाले। कदाचित इसे ज्ञात नही कि रौद्ररूप सदैव से शान्तरूप मे परास्त हुआ है। रौद्र-रस तो आत्मा का विभाव-भाव है परन्तु शान्त-रस तो आत्मा का अपना निजी स्वभाव है! अच्छा वत्स! देखो मैं इसे कैसे परास्त करती हूँ? ।'

देखते ही देखते मानस्यम्मिनीदेवी ने अपनी दोनो आँखें बन्द करली। ओठो पर मन्द-मन्द मुस्कान लाकर दाहिना हाथ ज्योही ऊपर उठाया कि चण्डीदेवी के हथियार अपने आप हाथो से गिरने लगे। मायावी भूत-प्रेत तथा सिंह, चीते, व्याल आदि सभी हिंस्र पशु भाग खड़े हुए। अन्त मे चण्डीदेवी मानस्यम्मिनी देवी के चरणो पर गिर कर गिडगिडाने लगी —

हे जिनशासन देवते! मुझे क्षमा करो—देवि! मुझ हतभागिन को क्षमा करो!।

पर पीडा मे कौतुक मनाने वाली दुष्टे! तूने यह नही सोचा कि मैं किस शान्त शक्ति से टकरा रही हूँ? क्या तुझे सम्यग्दर्शन का प्रभाव ज्ञात नहीं है?

"हे प्रशान्तमुद्रे! मुझे क्षमा करो क्षमा करो!"

"क्षमा, क्षमा मैं नही वलिक ये प्रशान्त चित्त महामुनिराज ही तुझे क्षमा करेंगे।"

मुनिराज भला क्या क्षमा करते? वे तो समदर्शी होते है। असिप्रहारण और अर्घावतारण दोनो स्थितियाँ एक बराबर हैं जिन्हे। उन्हे क्षमा और क्रोध से क्या प्रयोजन? •उनके मुखारविन्द से तो जो अमृत-वचन निकले, उनसे यह हुआ कि चण्डीदेवी ने सम्यक्त्व धारण कर लिया और जिनधर्म भक्त बनने की प्रतिज्ञा करली।

क्षुब्ध वातावरण शांति और अहिंसा मे परिणत होगया। शांति के समक्ष रौद्रता ने आत्मसमर्पण जो कर दिया था।

जय जिनवर की गगन भेदी ध्वनि से गुफा का कोना-कोना गूज उठा!

●●●

राग-विराग की फाग

राजा जितशत्रु बड़े ही विलासी कामुक व्यक्ति थे। एक दो नहीं, अपितु ३६ राजकुमारियों से उन्होंने विवाह किया था।

वसंत का सुहावना समय था। कोयल की कूक और सुगन्ध पवन के झोंके कामियों को उन्मत्त करते थे। वस्त्रालंकारों से विरहित वसुन्धरा और पादपवृन्द भी सकोच वश हरित परिधानों से विभूषित हो रहे थे। लतायें सरमीली दुलहिन बनकर पेड़ों के एक ओर, घूंघट डाल कर छिप गई थीं।

कामुक व्यक्ति पर कामदेव चौबीसों घन्टे सवारी किये रहता है। पर इधर तो सोने में सुहागा था। मानो वसंत की बहार नवजवानों की कामोद्दीपन शक्ति को चौगुनी कर देती है।

राजा जितशत्रु वन-क्रीडा को जारहे थे। साथ में ३६ रानियाँ और उनकी दासियाँ थीं। एकान्त—निर्जन वन में स्थित सरोवर में स्नान का सुन्दर आयोजन था। रानियों ने पारदर्शी महीन सुन्दर वस्त्र धारण किये और राजा सहित स्नान के लिए सरोवर में कूंदने लगीं। दासियाँ भी जल में उतर चुकी थी। यह सम्पूर्ण समूह जल जन्तुओं के समान घन्टों जल-क्रीडा में मग्न रहा। रानियों के पारदर्शक महीन वस्त्र शरीर से सट गए थे और प्रत्येक दासियाँ अपनी-अपनी स्वामिनियों के वस्त्राभरण सवारने का प्रयत्न कर रही थी, किन्तु फिर भी महीन वस्त्रों में से उनके उभरे हुए अंग-प्रत्यङ्ग स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। कामदेव के साक्षात् अवतार जितशत्रु रानियों की इस मोहक दशा पर मन ही मन विमुग्ध हो रहे थे।

सहस्रों मुनि-तपस्वी-साधु और त्यागी-वैरागी केवल इसलिए पदच्युत हुए कि परीक्षा को आई हुई किसी स्त्री विशेष ने उनके मन का अपहरण कर आत्मा के उद्दीप्त चिराग को बुझाकर अपनी ओर आकर्षित किया।

पाठक ध्यान दीजिए। जहाँ एक साधक स्त्री के सम्मोहन रूप को पाकर अध्यात्मवाद के नीरस ज्ञान को छोड सकता है, वहाँ अर्द्धनग्नावस्था में वन-क्रीडा करती हुई कई रानियाँ क्या व्यक्ति विशेष के विवेक को स्थिर रख सकती हैं? गर्ज यह कि राजा इस आयोजन से सतुष्ट न हो सके। उनका कामुक चचल मन दूसरी ओर ही भटक रहा था। फाग में राग का होना भी आवश्यक था अतएव ध्रुपद से लेकर शास्त्रीय सगीत तक वाद्य यत्रों पर

झकृत हो उठे। नृत्य का लुभावना आयोजन अवशिष्ट रह गया, जिसे देखने को राजा जितशत्रु अधीर हो रहे थे।

अत मे रानियो की घुघरू युक्त पादध्वनि सुनाई देने लगी। सगीत और नृत्य का समिश्रण आज के मनोरजन गृहो की ही देन नही है। नहीं तो कथा नायक जितशत्रु को अपवाद कहना पडेगा। दासियाँ वाद्य यत्रो पर अपनी अँगुलियाँ फेर रही थी और रानियाँ थिरक-थिरक कर नृत्य कर रही थी।

नृत्योपरान्त, श्रम से थकी हुई रानियाँ मदमाती चाल से घर लौट रही थी। समस्त रानिया यौवन के उन्नत भार से दवी हुई अपने को राजा की अनन्य सेविकाएँ मानती थी।

वन-देवता से रानियो का यह गर्व न देखा गया और देखते-देखते वन-देवता की कुपित दृष्टि से सभी रानियाँ पागलो की भाँति दिखने लगी। पटरानी अपने वस्त्रो की सुध-बुध भूल कर जगल के रास्ते पर दौड रही थी। कमला और विमला ये दो रानियाँ एक कुएँ पर बैठ कर रो रही थी। निर्मला और माधना बालो को छितराये चीत्कार कर रही थीं। माधवी और रेवती सरोवर के किनारे का गन्दा कीचड अपने अग प्रत्यङ्गो पर उवटन सा लपेट रही थीं। कई रानियाँ अपने पारदर्शक परिधानो की चिन्दियाँ वना वनाकर आकाश मे उडाने का नाटक कर रही थी। जिनदत्ता और वासवदत्ता तो हँस-हँस कर ठिठोली करती हुई राजा को सरोवर के गहरे जल मे ढकेले ही ले जा रही थी। राजा जितशत्रु को, उन्मत्त रानियाँ विविध प्रकार से मदोन्मत्त वना रही थीं। राजा को फाग का आयोजन अव वास्तविक और सफल दिख रहा था। धूल, पानी और कीचड उछाल-उछाल कर उनका अट्टहास करती हुई स्वागत कर रही थी। इधर राजा जितशत्रु अव परेशानी से वचने के लिए उन्मत्त रानियो के समूह मे से भागने की असफल कोशिश कर रहे थे।

उसी वियावान जगल मे से व्यापार को जाते हुए एक वैश्य-पुत्र ने राजा जितशत्रु को देखा और स्वागतार्थ उनके समीप पहुँचने के पूर्व ही मदान्ध उन्मत्त रानियों ने वेचारे वणिकपुत्र की विचित्र हालत वनादी। राजा रानियों पर वरस पडा किन्तु उसका असर उलटा ही हुआ। उन्मत्त रानियाँ पूर्वापेक्षा और अधिक विफर पड़ीं और राजा पर मधुमक्खियो की तरह टूट

पडी। रानियो के इस आघात-प्रतिघात से राजा और वणिक पुत्र दोनो ही चिन्तित हो उठे।

अन्ततोगत्वा वणिकपुत्र की सलाह से समस्त मडली समीप के वन मे विराजमान श्री शातिकीर्ति मुनिराज की शरण मे पहुँची। नग्न दिगम्बर मुनिश्री के कान्तियुक्त शरीर को देखकर पागल रानियाँ कामदेव से प्रपीडित हो और अधिक उन्मत्त हो उठी। और वे उन्हे घेर कर बैठ गईं। सहसा कुछ क्षणो के उपरान्त पटरानी कामोन्मत्त हो ऊपर का परिधान फेंकती हुई दोनो हाथो को फैलाये मुनिश्री की ओर बढी कि उसके पूर्व ही उसके पैरो मे मानो किसी ने लोह श्रङ्खला पहिना दी। वह जहाँ की तहाँ मूर्ति की तरह खडी की खडी रह गई। पटरानी की यह हालत देख सभी आश्चर्य चकित रह गये, मानो सभी को लकवा मार गया हो।

अत्यन्त शान्त, गम्भीर, दया के सागर शान्तिकीर्ति मुनिराज ने तब अपने कमडलु से चुल्लू भर जल निकाल कर सभी उन्मत्त—विक्षिप्त रानियो पर डालकर फाग खेल डाली और तभी उन्होंने महाप्रभावक भक्तामर के २४-२५ वें श्लोक का पढना प्रारम्भ किया।

दोनो श्लोको के असीम प्रभाव से विक्षिप्त और पागल भी अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त कर लेता है। वह भक्तामरस्तोत्र सदा-सर्वदा जन-जन के लिए कल्याणकारी हो।

रानियाँ अपनी और राजा की दशा को देखकर मन ही मन लज्जित हो उठी और दासिया नवीन वस्त्रो को लाने के लिए राजमहल की ओर दौड पडी।

●●●

भक्तामर के सुदामा

दर-दर की ठोकरें खाकर, जूठन पर जीने वाला भिखारी! और फटे-पुराने चिथडो मे अपनी लाज ढकने वाली उसकी परिगृहीता नारी!! और समाज से दूर—बहुत दूर स्थित घासफूस की वह झोपडी! हवा के झोके जिस पर अपनी शक्ति आजमाते हो—पानी की बौछारें जिसको अपना

लक्ष्य रखने को सन्नद्ध रहती हो और सूर्य की चिलचिलाती तेज किरणें मानो इसे जलाकर भस्म ही कर देने को लालायित होकर बार-बार झाकती हो ! !

ऐसी ही झोपडी मे सरक्षण पाने वाले वे दोनो प्राणी अपने-जीवन की घडिया काट रहे थे ।

समाज व्यवस्था कोई आज से थोडे ही विगडी है । यह तो युग युगान्तरो का रोग है—महारोग है । विपमता तो मानो ससार को उसी प्रकार वरदान मे मिली है, जिस प्रकार गरीव को जीवन अभिशाप मे ! ! ऐसे आराम, ठाठवाट और वैभव विभूति मे पले हुए रईसो की भृकुटियो के उतार चढाव पर न जाने कितने गरीवों का जीवन-मरण अठखेलिया करता है । गरीवी का चित्रण करने के लिए शब्द योजना अथवा वाग्जाल की कतई आवश्यक्ता नही, क्योकि भारत के विशाल भाल पर ये अभागे लाल लाखो नही, करोडों की सख्या मे यत्र-तत्र सर्वत्र दिखाई देते है। फुटपाथो पर पडे-पडे ही इनकी जिन्दगिया समाप्त हो जाती हैं और प्राप्त होती है दर्जनो की सख्या मे वही उन्हे औलाद, जो अपने घिनौने शरीर को दिखा-दिखा कर नरक के साक्षात् दर्शन करानी हैं ।

अवतार वार-वार पुण्य के पैरो तले रौंदे जाकर भी मानो उनकी चुनौती स्वीकार करने को वाध्य होते ही है। विपमताओ से ही तो ससार का अस्तित्व है । सुख और दुख—साता और असाता—गरीवी और अमीरी—दाता और भिखारी—रक और राजा इन दोनो के समिश्रण का नाम ही तो ससार है । इनमे कोई एक रहे तो फिर उसे मोक्ष की ही सज्ञा न दी जावेगी ?

कहते हैं, कि घूरे के भी दिन फिरते है । फिर इन अभागों के दिन क्यों न फिरते ? सुदामा के दिन यदि नारायण कृष्ण की कृपा से फिरे तो उपरोक्त भिखारी के दिन भी महाप्रभावक श्रीभक्तामरजी के २६ वें श्लोक की साधना से फिर गये । टूटी-फूटी खिरखिस्ता झोपडी से निकल कर सुदामा जी द्वारका की ओर वढे थे तो हमारा यह भिखारी झोपडी से निकल कर वढा निर्ग्रन्थ मुनि की ओर ! सभवत उसने निर्ग्रन्थ को अपने ही जैसा अकिंचन अपरिग्रही समझ कर ही और उनमे आत्मीयता की सुगध पाकर ही उस ओर कदम वढाये हो !

कुछ भी हो, कुछ दिन पश्चात् जव वह भक्तामर जी के २६ वें श्लोक की ऋद्धि तथा मत्र साधना करके वियावान वन से वापिस लौटा तो झोपडी की जगह ऊँची हवेली खडी हुई आकाश से वातें करती दिखाई दी । ठीक

वैसे ही जैसे कि सुदामा जी द्वारका से लौटे तो झोपडी की जगह उन्हें राजमहल के दर्शन हुये थे ।

तब से उसे कोई भिखारी नही कहता, कहलाता है वह नगर सेठ धनमित्र !

अपुत्रीन को तूँ भले पुत्र दीने

बिना फल का वृक्ष स्वय को सन्तति विहीन समझकर मुरझा जाता है। कुमुदिनी रहित सरोवर उत्तुङ्ग लहरो के स्थान पर मद प्रवाह से वहता है। वही हाल राजा हरिश्चन्द्र और उनकी धर्मपत्नी चन्द्रमती का था। सन्तान का अभाव उन्हे चौबीसों घटे सतप्त किये रहता था। कई मुस्तडे पडे और पुजारी राजा साहब के यहाँ पुत्र-यज्ञ के नाम पर घी, मिश्री और शक्कर उडा रहे थे। और कई छद्मवेषी साधु रानी की मनोरथ सिद्धि के लालच मे ठग रहे थे। पीर पैगम्बर और औलियाओ की मिन्नतें-मनौती मनाई जा रही थी।

एक दिन एक तपस्वी जी भिक्षा माग कर बोले —"सौभाग्यवती पुत्री ! राजरानी होकर भी दुखी क्यो हो ?" रानी चन्द्रमती ने अपना मनोरथ कहा तो साधु महाराज बोले —"तुम्हे पिछले जन्म का साधुओं का प्रकोप है ! बेटी ! अब हम साधुओ को इस जन्म मे इच्छानुसार दान दो, तो यह प्रकोप दूर हो सकता है और तब तुम्हारी सभी कामनाएँ फलवती हो सकती हैं।" जटाजूटधारी साधु महाराज की बात रानी को जँच गई। फिर क्या था ? वे यहाँ मिष्ठान्न भोजन पर हाथ साफ करने मे झुक पडे, और यह क्रम कई दिनो तक चलता ही रहा।

साधु महाराज कुछ लालची प्रकृति के थे। सो हवन शान्ति के दिन इतना भोजन पागये कि उनका उठना-बैठना दूभर होगया। राजवैद्यों के उपचारो के बावजूद साधु महाराज फिर उठकर खडे ही न हो सके। सच तो यह है कि "ज्यो-ज्यो दवा की, मर्ज बढता ही गया।" साधु महाराज को बचाने के सारे प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। रानी चन्द्रमती के माथे एक और साधु प्रकोप भडका। उनका पार्थिव शरीर चेतनता शून्य होगया।

ज्योतिषी जी भी एक दिन आकर बोले —"शनिग्रह तुम्हारे विपरीत है रानी जी ! यदि पवित्र मन से सौ ब्राह्मणो को भोजन और राज्य ज्योतिषियो को उनके इच्छानुसार दान-दक्षिणा दो तो शनि-देवता तुम्हारे अनुकूल हो सकता है !"

राजवैद्य ने सलाह दी कि स्वर्ण-दान और स्वर्ण-भस्म का सेवन आपके लिए उपयुक्त रहेगा, और सुवह-शाम अमृत-घृत का उपयोग भी पुत्रवती होने मे सहायक सिद्ध होगा ।

राज-विप्र भी कब पीछे रहने वाले थे, वोले—"हस्त रेखाएँ ठीक नही है, परिहार हेतु पिण्डदान अत्यन्त आवश्यक है।"

पीर पैगम्बर मौलवी और मुल्लाओ ने आपस मे मशविरा कर सलाह दी कि सन्तति को जिद ने पकड रखा है, जब तक उनजी पूजा न की जायगी, पुत्र-जन्म असभव है ।

इस तरह दौड-धूप चलती रही—चलती रही !

एक दिन एकाएक नगर के बाहिरी उद्यान मे मुनि श्री श्रुतकीर्ति जी महाराज का आगमन हुआ । राजा-रानी भी दर्शनार्थ गए । दोनों दम्पत्ति साधुओं और ज्योतिषियो आदि पेशेवर व्यक्तियो में अपना विश्वास खो चुके थे । निर्मोही निस्पृही मुनिराज ने महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का रहस्य तथा उसका प्रभाव वतलाते हुए उसके सत्ताईसवें श्लोक का उच्चारण कर उसके महत्त्व का प्रतिपादन किया । तब तक दोनों मे उस ओर कोई विशेष उत्साह न था । मुनिश्री श्रुतकीर्ति जी महाराज केवल भक्तिपूर्ण धार्मिक क्रिया को समाप्त करने के लिए मधुर कंठ से पढते ही जा रहे थे ।

राज्य मन्त्रियों और उपस्थित व्यक्तियो को आश्चर्य तो तब हुआ जब राजा हरिश्चन्द्र अकेले उठकर जिनमन्दिर मे पहुँचे और स्नान करने के पश्चात् भगवान् आदिनाथ की मूर्ति के सामने पर्यङ्कासन लगाकर जोर-जोर से पढने लगे —

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै—
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्त विविधाश्रय—जातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

उपरोक्त श्लोक का स्वर बाहर के आदमियों को स्पष्ट सुनाई दे रहा था ।

राजा हरिश्चन्द्र तन्मयता से उसी श्लोक को बार-बार दुहरा रहे थे। किन्तु उनके स्वर से स्पष्ट प्रतीत होता था कि वे शब्द उनके अन्त करण के नही थे। उन्होने तो मन मे मनोरथ सिद्धि का मुख्य-उद्देश्य बना रखा था—जिन स्तुति का नही। दो घन्टे अखण्ड पाठ करते हुए व्यतीत होगए फिर भी कुछ निष्कर्ष न निकला ! राजा बडबडाते हुए बाहर निकले और प्रतीक्षा मे खडे हुए दरबारियो से बोले —

धर्म कुछ नही, थोथा प्रपच है और उसके अनुयायी धर्मोपार्जन नही वरन् धर्म के नाम पर आजीविकोपार्जन कर रहे हैं अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए।

प्रमुख राज्यमत्री को राजा के भाव परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ—। और खेद भी ! तत्काल वह स्वय उपरोक्त श्लोक का पाठ बिना किसी इच्छा के धर्म स्थिति के हेतु जिनालय मे कर रहा था। वह तल्लीन था—आस्थावान था। उसके कठ से नि सृत शब्दो मे भक्ति की गगा बह रही थी और आगे को बढ रही थी कि कुछ समय के उपरान्त जैन शासन की अधिष्ठात्री "धृत देवी" ने सम्मुख आकर राज्यमत्री से वर याचना के लिए आग्रह किया।

ससार के अगणित दुखों से उबार कर मानव को मुक्ति-मन्दिर मे पहुँचाने वाले धर्म के प्रति राजा की आस्था बनी रहे यह आवश्यक जानकर उसने अपने लिए नही, वरन् प्रजापति के यहा पुत्ररत्न की प्राप्ति हेतु वर की याचना की।

और "तथास्तु", कहकर धृत देवी अन्तर्धान होगई।

पाच वर्ष के बाद मुनिश्री श्रुतकीर्तिजी महाराज पुन उसी नगर मे अपने शिष्यो समेत आये। दलबल सहित राजा-रानी दर्शनार्थ पहुँचे। दम्पत्ति ने अपने चार वर्षीय बालक को मुनिश्री के चरणो मे डालकर कहा—

भगवन् ! इसे आशीर्वाद दीजिए।

●●●

रूपकुण्डली

यौवन का झोका कभी-कभी स्वय को बहा ले जाता है। विरले ही व्यक्ति इसमे प्रवेश करके सकुशल लौट पाते हैं। यौवन के मद मे उन्मत्त होकर हस्ती अपनी हस्ती बतलाने के ध्येय से उल्टी मजिल की ओर दौड लगाता

है। यौवन के मद मे मदहोश पुष्प-वृन्द जब खिलखिलाकर हँसते हैं, तो दूसरे ही दिन उन्हे बिखर-बिखर कर अपने पैरो की धूलि पर मुँह के बल गिरना पड़ता है। युवावस्था वह खिली हुई कलिका है जिस पर भ्रमर मडराते हैं, पराग चूसते हैं और उसको अर्द्ध निस्तेज बनाकर चल देते हैं।

रूपकुडली राजा पृथ्वीपाल की अनन्य सुन्दरी राजकन्या थी। रूप और यौवन के दो-दो प्यालो के सन्निकट होते हुए भी वह उनसे संघर्ष कर रही थी। यह संभव है कि कामदेव ने अपने समर्थ शरीर से अप्सराओ को आकर्षित किया हो, किन्तु रूपमती रूपकुडली के समक्ष उसे लज्जित होना ही पड़ता। चन्द्रमा के सदृश कान्ति युक्त, मृगनैनी और गजगामिनी रूपकुण्डली स्वर्गलोक की अप्सरा सी दिखाई देती थी। उसके निर्मल कान्ति युक्त दन्त समूह जब सहसा खिलखिला कर हँसते थे तब निकटवर्ती व्यक्तियो को यही प्रतीत होता था कि बिजली अर्द्ध तेज मे चमक रही है। उसकी-क्षीण जर्जर कटि सम्पूर्ण शरीर को कामलता के सदृश घोषित कर रही थी।

इस अनिद्य अनन्य रूप मे छिपी हुई किसी भी षोडसी को अपने ऊपर गर्व हो सकता है। रूपकुण्डली भी इसका अपवाद न बन सकी। अपनी सहेलियो को यह हीन समझ कर अपने अनुपम रूप का दम्भ बतलाती इठलाती हुई जाकर सायंकाल को गिरि-शिखर पर जा विराजती, अलसाये हुए नेत्रो से बसत की बहार निहारती और कभी-कभी उस युवा तुर्कभ्रमर मण्डली की ओर देख लेती थी जो रूप की तृष्णा से तृषित होकर इस ओर पर्यटन के बहाने आ निकलते थे।

शुभाषितेन गीतेन, युवतीनां च लीलया।
यस्य न द्रवते चित्तम्, सर्वमुक्तोऽथवा पशु ॥

रूपकुण्डली दासियों सहित अपनी बगिया मे टहल रही थी। सामने से नग्न दिगम्बर मुनिराज आ निकले। यौवन के मद से चूर दासियो ने स्वामिनी की आज्ञा से निर्मोही मुनि को छेड़ दिया। मुनिश्री ने उपसर्ग समझ कर कोई आपत्ति न की, न भावों में कोई विकार आने दिया।

रूपकुण्डली ने आगे आकर मुनिराज की निन्दा की तथा उनके धूल-धूसरित-कुरूप शरीर और नग्न भेष पर क्षोभ प्रकट किया। अन्त में रूप-गर्विता रूपकुण्डली ने शिला खण्ड पर स्थित समाधिस्थ मुनि के शरीर को रंग बिरंगे रंगो से चित्रित किया तथा उन्हें एक खासा व्यंग्य सजीव चित्र (कार्टून)

वनाकर छोड दिया। और हँसी मजाक उडाती अपनी दासियो समेत वह राज-भवन की ओर वढ गई।

मुनिराज ने उपसर्ग की समाप्ति पर अपना ध्यान भग किया। विना किसी सन्ताप और द्वेष के जगल की ओर जाने लगे। विल्कुल छोटे-छोटे अवोध वच्चे विचित्र रग के व्यक्ति को देख कर अपनी-अपनी माँ की गोद मे भय के कारण जा छुपे थे। और नगर के विनोदी वालक उनके पीछे-पीछे हँसते हुए जा रहे थे। मुनिराज तो अपनी आत्मा की निधि सजोये साम्यभाव से चार हाथ जमीन शोधते हुए गमन कर रहे थे। उन्हे न तो रूपकुडली का उपहास वुरा लगा था और न पीछे चलते हुए वच्चो की ओर ही उनका ध्यान था।

× × ×

रूपकुण्डली अभी घर पहुँची ही थी कि एक वीतराग साधु पुरुष की निन्दा के महान् पाप के कारण उसका सुन्दर शरीर उदम्वर कोढ से ग्रसित होगया। अव नगर का साधारण कुरूप युवक भी उसकी ओर देख कर घृणा से मुँह फेर लेता था। सखिया चिढाकर कहती—"कामदेव को मात पर मात देती रहना रूपकुण्डली!" और उपवन मे पर्यटन को आने वाले युवा तुर्क कह रहे थे —

वडा शोर सुनते थे, हाथी की दुम का
देखा तो पीछे रस्सी वधी थी!

वडे-वडे हकीम और राजवैद्य रूपकुण्डली के उदम्वर कोढ को जव अच्छा न कर सके तव वह उन्ही मुनिराज के चरण कमलो पर गिर कर वोली —

"महाराज! दया के सागर! मुझ सेविका को रूप-दान दीजिये, रूप के मद मे मदान्ध मुझ पापिनी ने आपकी निन्दा का घोर पापार्जन किया है। उस महान् पाप से छुडाइये!"

महामुनिराज को मालूम ही नही था कि उनके कारण किसी को तकलीफ हुई है। धैर्य देते हुए कहा—"देवि! महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के २८वें श्लोक का वारम्वार स्मरण करने मात्र से इस भयङ्कर रोग से मुक्ति मिल सकती है।"

कुरूपकुण्डली समदर्शी मुनिराज से जैनधर्म का उपदेश श्रवण कर वहुत आनन्दित हुई और वह मुनिश्री को नमस्कार करके अपने घर लौट आई।

कुरूप कुण्डली ने लगातार तीन दिन और तीन रात भक्तामर का अखंड पाठ किया और २८ वें श्लोक के मंत्र की साधना की। फलस्वरूप उसका सारा शरीर पुनः कुन्दन सा चमक उठा। राजमहलों तक जब यह खबर पहुँची तो राजा पृथ्वीपाल सपत्नीक अपनी पुत्री रूपकुण्डली के समीप पहुँचे और उसे पहिले की अवस्था मे देख आनन्द विभोर हो उठे। राजा ने इस खुशी मे जैनधर्म की प्रभावना हेतु जैनमन्दिर का निर्माण कराकर उसमें अति मनोज्ञ भगवान आदिनाथ की आदमकद प्रतिमा को प्रतिष्ठित कराया।

कुछ काल बाद राजा पृथ्वीपाल ने अपनी रूपवती पुत्री रूपकुण्डली का ब्याह गुणशेखर के साथ कर देना चाहा किन्तु अब वह नाशवान् शरीर का सही सदुपयोग समझ चुकी थी, और इसीलिये उसने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके आर्यिका की जिन्दगी बिताने का कठोर संकल्प कर लिया।

●●●

मुखड़ा क्या देखे दरपन मे ?

"यह नङ्गा, जंगली, असभ्य यहाँ कहाँ से आ टपका ? थोड़ी भी लज्जा नहीं इसे ! बेशरमी की पराकाष्ठा को भी लाँघकर आगे बढ़ा चला आ रहा है ! लोक व्यवहार से कोसों दूर रहने वाले इस मलिन वेषधारी दीन दरिद्री को एक फटी हुई कोपीन भी नहीं जुट सकी इतने विराट् ऐश्वर्य युक्त विश्व मे ? ... धिक्कार है इसके क्षुद्र जीवन को !! इसका बदसूरत बदन तो देखो ... परतें की परतें चढ़ रही हैं मैल की ? ... मानो वर्षों से पानी के दर्शन ही नसीब न हुए हों—नहाने के लिए ! ... और दांत ... ऊबड़ खाबड़—पीले रंग के बदबूदार ... क्या यह कभी दाँतों को साफ नहीं करता ? मंजन नहीं लगाता ? ...यह अलौकिक जीव इस लौकिक जगत का प्राणी बनकर क्यों इसके लिए भार स्वरूप बना हुआ है ? ...इसे देखकर तो मेरा जी मिचलाता है। ... और इसके खाने पीने का तरीका तो देखो ! ... भला मनुष्य बैठकर भी नहीं खा सकता ! ... जङ्गली असभ्य कहीं का। एक भिखारी भी होता है, तो वह सकोरे—मिट्टी के ठीकरे या हरे पत्तल मे ले खाता है परन्तु

दुर्गन्ध युक्त गलित कोढ फूट निकला ! इतनी बुरी तरह कि बदबू के मारे सिवा मक्खियो के कोई पास भी नही फटकता था। सारी चमचमाती कचन काया धूल मे मिल गई। इसीलिए तो कहा गया कि रूप-मद मे आकर मुनि-निन्दा नही करनी चाहिये।

× × ×

जब ससारी जीव शास्त्रोपदेश या सदगुरु के उपदेश द्वारा कुछ नही सीखता तो उपर्जित कर्मो के अनुरूप दण्ड पाकर उनसे भयभीत हुए वे स्वय सत्पथ पर आजाते हैं। अब समझ मे आया जयसेना को कि मेरे मुनि-निन्दा के भाव कर्मो का ही यह कु-फल है—विष-फल है !

"बोये पेड बबूल के, आम कहाँ से होय ?"

अब तो इस दुखद व्याधि से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय यही है कि पुरुषोत्तम सत की शरण मे जाया जावे। वे अवश्य ही कुछ उपचार बतला देंगे। और उसने ऐसा ही किया। समदर्शी योगिराज ज्ञान-भूषण जी महाराज ने उसे महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के २९-वें श्लोक के मत्र को विधि पूर्वक अनुष्ठान करने की प्रेरणा की। फलस्वरूप उसका शरीर पूर्ववत् सुन्दर गुलाब सा होगया। ठीक वैसा ही जैसा कि श्रेष्ठिवर्य श्रीपाल का श्रीसिद्धचक्र के अनुष्ठान से।

●●●

ग्वाल-बाल का राज्याभिषेक

निर्धन गोपाल दरिद्रता के शिकजे मे भलीभाँति जकड चुका था। लगातार तीन वर्ष की फसलें अनाज खाकर निर-केवल भूसा उगल रही थी। साहूकार का सूद मूल-धन से दूना हो रहा था और इधर तीन-तीन अविवाहित लडकियाँ थी जो निर्दय-निर्मम साहूकार के सूद से भी अधिक घास-फूस की तरह बढ रही थी। किसानी धधा जब मँहगा पडा तो राजा के यहाँ चरवाहे का काम शुरू किया पर थोडी सी आमदनी के कारण हफ्तो उपवास का

प्रात काल गोसली से निवट कर, पशुओ के साथ गोपाल ग्वाल जगल मे गया, और एक स्वच्छ शिलाखड पर बैठ कर भक्तामर महाकाव्य के ३० वें और ३१ वें श्लोक को पढना आरम्भ किया। यद्यपि वह नेत्र बन्द करके बैठा था, फिर भी वीच-वीच मे आँखें खोलकर देख लेता था कि कही कोई देवी तो नही आगई है। साथ ही घास चरते हुए पशुओं को भी एक दृष्टि से देख लेता था ताकि कोई भाग न जाये—उजाड में न पहुँच जाये। सुबह से रटते हुए सायँकाल आगया पर गोपाल ग्वाल को कोई लाभ दृष्टिगोचर न हुआ। इतना अवश्य हुआ कि दो चार उजरा जानवर पशु समूह से विलग होकर बहुत आगे निकल गये। जिनको ढूढने तथा स्वामी की फटकार सुनने का भार अनायास शिर पर आ पडा।

पड़े की पेट पूजा और पीर पैगम्वर की भभूत के समान ही भक्तामर मत्र को समझकर गोपाल स्थिर चित्त से उस पर विश्वास न कर सका। भक्तामर की सस्वर पद्य रचना उसे मोह अवश्य लेती थी और यही कारण था कि वह जव इन श्लोको को कोकिल कठ से पढता रहता था—गुनगुनाता रहता था। अन्य ग्वाल वृन्द जहाँ कल-कल निनादिनी सरिता के तट पर बैठ कर विरह के लोकगीत अलापा करते थे वहाँ गोपाल ग्वाल अपने वेसुरे गले से भक्तामरस्तोत्र के श्लोक गुनगुनाया करता था।

हरीपुर नरेश की मृत्यु के उपरान्त हाकिम लोग आपस मे लड झगड कर राज्य की सत्ता को हथियाने की भरपूर कोशिस कर रहे थे। नगर के सरपच ने तव मत्रणा करके राजा का हाथी सजाया और उसे पुष्प माला दी। हाथी द्वारा माला को ग्रहण करने वाला व्यक्ति ही राज्यगद्दी का सर्वतोमान्य उत्तराधिकारी होगा—यह घोषणा भी नगर भर मे कर दी गई थी।

घोषणा को सुनते ही नगरवासी हाथी के साथ-साथ चलने लगे। मदिर मे पूजा करने वाले पुजारी हाथी के आगे शिर कर रहे थे। पिता अपने पुत्र और स्त्री को साथ लेकर घर से निकल रहे थे। माताएँ दो-दो महिने के दुधमुहे बच्चों को उठाकर ला रही थी। इन सव का ख्याल था कि शायद हाथी उन्हें ही माल्यार्पण कर कृतार्थ करे।

सायँकाल गोपाल ग्वाल जगल से जानवरो सहित लौट रहा था। नगर मे भारी कोलाहल सुनकर श्लोक गुनगुनाता हुआ उत्सुकता वश उसी ओर आ पहुँचा तो देखा एक मदोन्मत्त हाथी उसी की ओर दौडता हुआ आरहा है।

तीसरा और भी आगे बढ चुका था—बोला—"पुत्र जन्म के समय हम गरीब सहपाठियो को याद कर लीजियेगा।"

× × ×

रत्नशेखर के पिता बडी धूमधाम से शादी का इरादा करके आये थे। राजा का वह एकलौता पुत्र जो था। राज्य मंत्रियो को आज्ञा दी गई थी कि वैवाहिक सामग्री आवश्यकता से अधिक रखली जावे। भाट लोग वाद्य-यंत्र बजा रहे थे। वाद्ययंत्रो की सुरीली ध्वनि नगर भर मे गूंज रही थी। नर्तकियाँ जनवासे मे सामन्तो का मनोरंजन कर रही थी। सुरा और सुंदरी का अपूर्व संगम सुसज्जित मंडप मे दृष्टिगोचर हो रहा था। चारों ओर उल्लास और उमंग का वातावरण था।

हर्षोल्लास के बीच विवाह का कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। वर ने वधू को अग्नि और पंचपरमेश्वरो के समक्ष अर्द्धाङ्गनीरूप मे स्वीकार किया। बारात घर लौट चुकी थी। रात्रि के समय राजकुमार रत्नशेखर ने उत्सुकता वश —नवलवधू मदन—सुन्दरी का घूंघट-पट हटा दिया। सोच रहा था वह कि स्वर्ग लोक की अप्सरा के दर्शन करने जा रहा है—पर इधर माजरा ही दूसरा था।

मदन-सुन्दरी को उसका स्वयं का नाम लज्जित कर रहा था। सिर पर खडे छोटे-छोटे काले भूरे बाल, कम चौडा ललाट, चपटी जल स्त्रोत वत् बहती हुई नाक, अपनी सीमा से बाहर निकले हुए खिडबिड्डे दांत, मोटी कमर, पतली जँघायें, बिवाई फटी भद्दी एडियाँ, हाथी के समान कडे सर्वाङ्ग मे छितरे हुए रोम, फूली हुई ग्रीवा, और मवाद बहते हुए कान उसकी विद्रूपता मे चार चाद लगा रहे थे, इतने पर भी गलित कुष्ट के धब्बे, खासी-दमा उसकी दम लिये डालते थे।

राजकुमार रत्नशेखर कुछ क्षण हतप्रभ सा होकर अवाक् रह गया। उसके संजोये हुए सारे स्वप्न एक के बाद एक ढह गये उन्नत ललाट को टटोलते हुए रुँधी हुई आवाज से बोला—देवि! मैंने अग्नि के समक्ष तुम्हे अर्द्धाङ्गिनी के रूप मे अपनाया है, स्वीकार किया है। अतएव इस रूप मे पाकर भी तुम्हारा आजीवन शुभचिन्तक रहूँगा। तुम्हारे शारीरिक कठिन कष्ट को अपने आधे शरीर की पीडा जानकर उसे दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

राजकुमार के पूंछने पर फटे गले से मदन मुन्दरी ने कहा—"वर्तमान मे उसे गलित कुष्ट की मक्रामक बीमारी है। खासी और दमा उसकी दम लिए डालते है।" अत्यन्त दुखी अपने मे सिमटी मदनमुन्दरी की इस फटी फटी सी दर्द भरी आवाज को सुनकर रत्नशेखर शय्या-स्थल पर न रह सका और भावो के पखो पर बैठ कर उडता हुआ उस काली अधेरी रात मे एकाकी राज्य की सीमा से दूर, बहुत दूर जा पहुँचा।

× × ×

मुनिश्रेष्ठ श्री धर्मसेन के प्रधान शिष्य रत्नशेखर थे। उनके आत्मिकज्ञान की सुदूर प्रदेशो तक विशेप चर्चा थी। रत्नशेखर को ससार से वास्तविक विरक्ति होगई थी और यही कारण था कि वे धार्मिक क्रिया कलापो को विश्वास ही नही गाढ श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। प्रतिदिन वह जैन स्तोत्र पटा करते थे।

एक दिन तपस्वी राजकुमार रत्नशेखर ध्यान मग्न थे तथा महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के काव्यो को तन्मय हो पढ रहे थे। स्तोत्र के ३२-३३वें काव्य को उनकी जिन्हा घटो दुहरा रही थी कि तभी जैन शासन की अधिष्ठात्री पद्मावती देवी ने प्रकट होकर कहा—कि "वत्स! तुम्हारी उम्र अभी तपस्या के योग्य नही है। तुम्हारे वृद्ध पिता तुम्हारी याद मे मृत्यु-शय्या पर अन्तिम श्वासे गिन रहे हैं और तुम्हारी विदुषी पत्नि मदनसुन्दरी अपने श्वसुर की सेवा मे रत रहती है।

राजकुमार रत्नशेखर अपनी पत्नि के विषय मे जानने को उत्सुक था। पूंछने लगा—देवि! मदन सुन्दरी का रोग कैसा है?

"वत्स!" पद्मावती देवी ने कहा—"जब तुम दो दिन पूर्व भक्तामर स्तोत्र का अखड पाठ कर रहे थे तब ही उसका कुष्ठ युक्त शरीर दिव्य-स्वर्ण देह मे परिणत हो चुका है।"

देवी के अमृत वचन सुनकर राजकुमार रत्नशेखर प्रमुदित मन होकर गुरुदेव के समक्ष गया तथा आर्शीवाद लेकर राजधानी की ओर चल पडा।

राजकुमार के राजमहल मे प्रवेश करते ही वृद्ध पिता ने उसे गले लगा लिया तथा उनकी विदुषी पत्नी पैरो पर गिर कर आनन्दाश्रुओ से राजकुमार के पाँव पखार रही थी।

●●●

(२८७)

प्रभुता से प्रभु दूर

प्रभुत्व एक महाशक्ति है, जिसके आवरण मे व्यक्ति स्वय को अति उच्च मान बैठता है। राजा भीमसेन बनारस के महाराजाधिराज थे। आस पास के क्षेत्रो मे स्थित अन्य छोटे-छोटे जागीरदार उनका लोहा मानते थे तथा खुशामदी-चापलूस उनको हमेशा चारो ओर से घेरे रहते थे।

राजा भीमसेन ने धर्म के विविध सम्प्रदायों का अध्ययन किया था और उनका यही निजी मत था कि वे ऐसा धर्म सस्थापित करें जिसमे समस्त धर्मों का सत्व शामिल हो। कई विद्वानो ने इस कार्य को अपने हाथ मे लिया किन्तु धर्म की यह खिचडी वे पका न सके। अन्ततोगत्वा भीमसेन ने ही धर्म के सिद्धान्तो का सकलन किया तथा उनके द्वारा सस्थापित धर्म का पालन प्रत्येक नागरिक को आवश्यक कर दिया गया।

मदिर, मठ और मस्जिद को छोड कर राजमहल के पास वाले "नवीन धर्म-सस्थापक-देवालय" में जाना जब अनिवार्य होगया तब कई धर्म प्रेमी राज्य छोड कर अन्यत्र जा बसे तथा कई शक्तिशाली व्यक्ति शासन के विरुद्ध गुप्त षडयन्त्र रचाने लगे। तब राजा भीमसेन ने कुपित होकर मन्दिरो और मस्जिदो को तुडवा कर उनकी नीव पर अपने देवालय स्थापित करवाना आरम्भ कर दिया।

नवीन धर्मोत्साही इन पैगम्बर महोदय को छह मास के भीतर ही कुष्ट रोग होगया। उनका बलिष्ठ सुन्दर सांचे मे ढला शरीर अत्यन्त दुर्बल और घिनावना होगया था। कान्ति कपूर की भाँति विलीन होगई थी। अस्थि-चर्म मास सब सूख गये थे। पटरानी सुदर्शना उनको देखकर डरती थी। भीमसेन की उपस्थिति उसे दुखित प्रतीत होती थी। प्रेमपूर्वक वार्तालाप करने वाली अन्य सभी रानियाँ भी उनकी छाया से बचने लगी।

भीमसेन की प्रत्येक आज्ञा प्रजा को ईश्वर की आज्ञा के समान मानना पडती थी किन्तु इस दुरावस्था मे सभी कर्मचारी उनकी अवज्ञा कर रहे थे। नगर निवासी जो धर्म विच्छेदन पर मन ही मन गालियाँ दिया करते थे अब खुश होकर कहते थे कि धर्म पर आघात करने वालों को प्रत्यक्ष फल मिलता है।

× × ×

जगह-जगह वीर-वाणी का प्रचार करते हुए मुनिश्री बुद्धिकीर्ति जी महाराज वाराणसी नगरी में आये। राजा भीमसेन उन्हें देखकर मुनिश्री के पादारविन्दों पर लेट गए और अपनी बदकिस्मती—कमनसीबी का कच्चा चिट्ठा कह सुनाया। विवेकी परम सन्तोषी मुनिश्री बुद्धिकीर्ति जी महाराज अपनी दिव्यदृष्टि से कुछ क्षण सोचते रहे—फिर बोले —

"किसी भी धर्म की निन्दा करना एक महान् दुष्कार्य है, जिसको करने वाला महापाप का भागी होता है। मद से चूर हाथी नागरिकों को हानि पहुँचाता है, किन्तु उसका ध्यान उसे शक्ति हीन अवस्था में आता है। यौवन के भार से उन्मत्त युवक अपनी सचित शक्ति का दुरुपयोग करते हैं किन्तु उसका पश्चाताप उन्हें वृद्धावस्था में होता है। "राजन्! इसी प्रकार आपने भी सत्ता के मद में आकर धर्मों पर आघात प्रतिघात किया किन्तु इसके दुष्परिणाम पर अब आप दुखित हो रहे हैं।"

राजा भीमसेन ने कभी स्वयं की निन्दा न सुनी थी और वे विश्वास भी नहीं करते थे कि धर्म निन्दा के फल स्वरूप उन्हें अचानक यह बीमारी हुई है। रुष्ट होकर बोले —"महाराज! मैं कारण नहीं पूछ रहा हूँ। सिर्फ यदि इसका कोई सफल उपचार हो तो बतलाइये?" बुद्धिकीर्ति मुनिराज को सहसा कुछ याद न आया अतएव साम्यभाव से कहा—कि कल बतलाऊँगा।

राजा भीमसेन ने लगातार तीन दिन तक बडी कठिन तपस्या की। मुनिराज द्वारा सिखलाये गये महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के ३४ और ३५ वें काव्यों का अखण्ड पाठ किया। और उनके मन्त्रों की साधना में ऐसा लवलीन हुआ कि स्वयं जैन शासन की अधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी ने प्रकट होकर कहा—उठो वत्स! तुम्हारी मनोकामना सफल होगी। भगवान् आदिनाथ का अभिषेक कर गन्धोदक से शरीर पवित्र करो—कह कर देवी अन्तर्धान होगई।

दूसरे दिन सभी रानियों ने राजा भीमसेन के सुदर शरीर की आरती उतारी और मगल गीतों से राज-भवन के कोने को गुंजा दिया।

सुरसुन्दरी से शिवसुन्दरी

गगनचुम्बी अट्टालिका की सातवीं मजिल पर राजकुमारी सुरसुन्दरी अपनी सखियों के साथ बैठी अठखेलियाँ कर रही थीं। बीच-बीच में होने वाले

हास-परिहास और अट्टहास से शान्त करने वाले रागियों की ऐसी नजरें अपने आप ऊपर उठ जातीं और यद्यपि वे अपने गन्तव्य की ओर आगे कदम बढ़ाते, तथापि उनकी आँखें बरबस पीछे ही अटककर स्थिर रहना चाहती हैं। आकर्षण-मोह एवं प्रलोभन ने ही तो इन जीवात्मा के गन्तव्य स्थान — मोक्ष और ऊर्ध्वगमन स्वभाव अर्थात् प्रगति-पथ पर आगे बढ़ने की सत्प्रेरणा को अपनी संकुचित गली में फँसा कर पथभ्रष्ट कर रखा है।

पर्वत की ऊँची चोटी पर बैठे हुए व्यक्ति को धरती पर रेंगने वाले सभी जीव जन्तु क्षुद्र दिखाई देते हैं। और अपना 'अहम्' विराट्। परन्तु उस मूढ़ को पता नहीं कि सारी दुनिया को वह भी तो क्षुद्र दिखाई देता होगा? कदाचित् कदाचित् यदि वह चोटी पर से गिर पड़े तो उसके अस्तित्व का ही लोप हो जावे। नामोनिशान भी न मिले। वह यह नहीं सोचता कि धरती वाले कदाचित् गिरें भी तो उन्हें कितनी क्षति उठानी पड़ेगी? धरती पर चलने वाले इन गगनचुम्बी अट्टालिका वालों से कहीं ज्यादा सुखी रहते हैं।

गुलाबी लावण्य से भरपूर और जवानी के उन्माद मद से चूर, राजकुमारी के पैर अब तक तो ऐसे ही धरातल पर न पड़ते थे और आज तो फिर वह अपनी सखी सहेलियों और हमजोलियों का केन्द्र बिन्दु बनी हुई अट्टालिका की सातवीं मंजिल पर बैठी हुई इठला रही थी। संयोगवश उस मदान्धा ने पान की पीक वहाँ से विचरते हुए एक आत्मलीन — आध्यात्मिक निरम्बर दिगम्बर साधु पर थूक दी। पर उसका क्या बिगड़ा? नैतिक पतन तो हुआ सुर सुन्दरी का ही न? जब नैतिक पतन हुआ तो भौतिक पतन के होने में क्या सन्देह? लाड़-प्यार-दुलार और राजसी वैभव में पली-पुसी इसलिए राजकुमारियों में अहंकार की वह भावना किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। राज महलों में पलती हुई ये बालिकाएँ क्या समझें वीतरागता के मूल्य को? भोग व योग का क्या सम्बन्ध?

× × ×

पानी का बुलबुला कब तक अपनी पर्याय पर टिक सकेगा? सौन्दर्य की हाट कितने दिन चलेगी? पुद्गल परमाणुओं से बना हुआ यह गलित नाशवान् औदारिक शरीर कितने दिन कीमती सेन्ट-फुलेल, स्नो पाउडर और खुशबूदार लेवण्डरों से अपनी कान्ति को बनाये रख सकेगा? बुढ़ापे की मार से कमर झुक जायगी। पर सुरसुन्दरी की भरी पूरी जवानी में ही बुढ़ापे का यह

मजा देने मे दैव ने बिलम्ब नही किया। "इस हाथ दे उस हाथ ले"। कल की उसकी काली करतूत—उसका दुष्कर्म, आज दुर्भाग्य बनकर उसके आडे आ ही गया।

भाग्य या कर्म क्या है ? कल की गलती या सही का परिणाम। आगे पुरुषार्थ क्या करना है ! कल की गलती मे आज सचेत और विवेकी रहना। परन्तु आज का आदमी इतना प्रत्यक्षवादी, भौतिक और वर्तमान मे ही भूला-फूला रहने वाला होगया है कि उसे अपने उस परोक्ष भावी जीवन की खबर नही कि उसका अगला कदम अब पतन के ऐसे गड्ढे में गिरने वाला है —जहाँ से उद्धार होना नितान्त कठिन ही नही वरन् असभव भी है। वस्तुत सब कुछ प्रत्यक्ष यानी वर्तमान, परोक्ष यानी भविष्य (होनहार) पर ही टिका हुआ है। जैनधर्म के कर्म सिद्धान्त का यह रहस्य कितना स्पष्ट है, कितना खुलासा है।

× × ×

कल की रूपवती सुरसुन्दरी आज रुग्ण और कुरूपा थी। दुनिया उसके शरीर को देखकर जितना अधिक नाक भौं सिकोडती उतना ही अधिक उसका नाम उसकी मखौल उडाने के लिए उस पर अट्टहास करता था। दूसरो पर हँसने वाली आज स्वय हँसी का पात्र बनी हुई थी। दूसरो पर पान की पीक थूकने वाली पर आज दुनिया थूक रही है—धिक्कार रही है। कर्मों का नाटक यही तो है।

रोग है, तो इलाज भी है। बन्धन है तो मुक्ति भी है। आवश्यकता है, तो केवल प्रयत्न करने की।

पटना नरेश धारिवाहन ने अपनी इकलौती बेटी के इस दुर्भाग्य को सौभाग्य मे बदलने हेतु कुछ भी उठा नही रखा था। समय आने पर सयोग मिल ही जाता है। कर्मरोग से मुक्ति पाने मे सयोग (निमित्त) क्या हो सकता है ? 'भेत्तार कर्म भूभृताम्' निर्ग्रन्थ नि स्पृही स्वपर कल्याणकारी मुनियो के सिवाय और कौन हो सकता है ? राजा धारिवाहन का साक्षात्कार जब एक जैन तपस्वी से हुआ तो उन्होने एक घडा जल भर कर मगवाया और महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का ३६ वां काव्य ऋद्धि-मत्र सहित पढा और राजा को देते हुए कहा—

यह किसी जलाशय में डालना, प्रतिदिन उसी जलाशय में स्नान करने से राजकुमारी आज से ३६ दिन के बाद अपने सुर सुन्दरी नाम को पूरा सार्थक करेगी। परन्तु यह मंत्रित जल मैं तुम्हें इस शर्त पर दे सकता हूँ कि यह अब तुम्हारी ममता न रह कर स्वयं क्षमता एवं समता की सफलताभिका आशिषा बनेगी—इसकी होनहार इसे सुर सुन्दरी बनाकर ही चुप न रहेगी वरन् इसकी निकट भव्यता तो इसे 'शिव-सुन्दरी' ही बनाने का आमन्त्रण दे रही है।

राजा ने मुनिश्री के चरणों में आत्मसमर्पण करते हुए कहा—महाराज! ऐसा ही होगा!

और फिर हुआ भी वैसा ही अक्षरशः!!

दिवाली की रात

दौलत के बारे में एक कहावत मशहूर है कि जब वह किसी मनुष्य के पास आती है, तो उसकी पीठ पर एक लात मारती है। जिससे उसका सीना तन जाता है, उसमें अकड़ आ जाती है और दौलत जब उसके पास से जाने लगती है तो दूसरी लात उस तनी हुई छाती पर इतने जोर से लगाती है कि झुक जाती है। दौलत की इन्हीं दो लातों के मारे दो मानवीय वर्ग सदैव से चले आये हैं। एक बिगड़े रईस, दूसरे अकड़े रईस! ऐसे ही एक बिगड़े रईस अपनी पीली पगड़ी बांधे और तेलिया जैसे वस्त्र पहिने अपने गत वैभव को याद करते तथा जल्दी जल्दी कदम बढ़ाते हुए चले आ रहे थे। व्यापार में होने वाले जबरदस्त घाटे ने उनकी कमर तोड़ दी थी। उसी एक चिन्ता से व्यग्र आशा की भूमिका पर पुनः अपना स्वर्णिम महल बनाने का अरमान लेकर आज पहिली बार उन्होंने करोड़पति सेठ गुदत्त जी की देहली पर पैर रखा और विनम्र अभिवादन कर बैठने ही वाले थे कि गुदत्त जी का सौजन्य मय शिष्टाचार यों मुखरित हुआ—

"आइये, सेठ जिनदास जी! विराजिये, बहुत दिनों बाद दर्शन हुये।" मुंह में लगे हुए हुक्के की नली को एक तरफ रख कर तथा गाव तकिया का

ने सुना तो उनकी विवेक की आँखें खुल गईं, और वे वहां से उठकर जाने ही वाले थे कि रुपयों और मोहरों से भरी एक थैली सुदत्त श्रेष्ठि ने उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"लीजिए, इस रकम से पुन व्यापार प्रारंभ कीजिये। लाभ-हानि की चिन्ता न कर आप तो काम करने मे जुट जाईये। मुझे इस रकम की अधिक चिन्ता नही, वह तो कभी भी मिलती रहेगी।"

सुदत्त श्रेष्ठि के सौजन्य की मन ही मन सराहना करते हुए जिनदास ने धन्यवाद देकर वह थैली सहर्ष ग्रहण कर ली और वहां से अपने निवास स्थल की ओर चल पड़े।

× × ×

अपनी राह से जिनदास जा रहे थे कि अकस्मात् सडक पर सारी मुहरें और रुपये बिखर गए। खन-खन की आवाज से अपार जन समूह एकत्रित हो गया और बात की बात मे मुहरें और कल्दार उनके हाथों मे चले गए जिनको कि वे बदे थे।

आप सोचेंगे कि आखिर हुआ क्या? क्या थैली मे छेद होगया था?... हां थैली मे तो नही, किस्मत मे छेद अवश्य होगया था। इतना ही इस दुर्घटना के बारे मे कहना पर्याप्त होगा। वैसे तो कहने को लोगों को यह कहते भी सुना गया कि यदि केले का छिलका सडक पर न डाला जाता तो बेचारे सेठ जिनदास जी की यह हालत काहे को होती? सो केले के छिलके का तो निमित्त था। मूल मे तो उनके भाग्य मे ही मुनाफा न था। अस्तु अब सपत्ति के इस असह्य वियोग से जिनदत्त के परिणाम आकुलित नही हुए क्योंकि वे माया प्राप्ति के अपूर्व रहस्य को समझ गए थे, कि यह अगर बदी होगी तो जावेगी कहाँ? अपना काम भर किये जाना चाहिए। ऐसा सोचकर वे सीधे उसी नगर में स्थित श्री अभयचन्द मुनिराज के चरणो मे आ गिरे और उनके उपदेशानुसार उन्होंने दीपावली के दिन महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के ३७ वें काव्य की उसके मंत्र सहित साधना की, फल स्वरूप जैनशासन की अधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवी ने प्रकट होकर एक रत्न-मुद्रिका भेंट की।

अमावस्या की रात्रि को झिलमिल झिलमिल करते असंख्य दीपो की जगमगाहट में सेठ जिनदत्त जी का भवन इतना देदीप्यमान होरहा था कि कौशाम्बी नगरी मे उससे होड लेने वाला मकान मानो है ही नही।

बल्कि अपने पिता के साम्राज्य को भी तीन तेरह करके उन्हे दर-दर का भिखारी बना दिया। कपूत पुत्र के कारण सोमदत्त बहुत ही चिन्तित थे—उन्होने वीरपुर का परित्याग कर दिया और हस्तिनापुर जा पहुँचे वहाँ रहकर उन्होने न केवल अपने ही साम्राज्य को वापिस पाया बल्कि अनिद्य सुन्दरी राजकुमारी मनोरमा के परिणय के साथ दहेज मे विजय नगर का राज्य भी हस्तगत किया, परन्तु यह सब हुआ किसकी अनुकम्पा से ?—दयाधाम वर्द्धमान मुनि की दया से ही। जिन्होंने कि उसे महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र का उपरोक्त ३८ वाँ काव्य मत्र ऋद्धि सहित सिखला दिया था और जो कि उसके दुर्दिनो मे आडे वक्त काम आया।

वास्तव मे यह काव्य है भी हाथी के वशीकरण का एक मात्र अस्त्र। जगली खूंख्वार और निरकुश पशु तो इस काव्य की ऋद्धि यत्र मत्र समेत जपने से वश मे होते ही है, परन्तु साम्राज्यवाद की लिप्सा मे आज जिन नर-पशुओ ने अपनी बर्बरता और खूंख्वारपन का परिचय दे रखा है। उन्हे भी यह मत्र अनोखा सबक सिखाने मे सफल सिद्ध होगा।

●●●

मत्र-शक्ति

सरकसो मे कौशल के जितने भी कार्य दिखाये जाते है, उनमें सब से अधिक जोखिम का दृश्य होता है—सिंहो-बब्बरी शेरों-चीतो और बाघो के बीच रह कर उन पर कठोर नियत्रण रखना यह कार्य जहाँ एक ओर मानव के अदम्य साहस का द्योतक है, वहाँ दूसरी ओर प्राणि जगत मे उसे सर्वशक्तिमान भी घोषित करता है। प्रकृति पर विजय पाने के लिए मनुष्य ने अभी तक जितने भी कदम सफलता की मजिल की ओर बढाये है वे सब भौतिकता को लक्ष्य करके ही उठाये गये हैं। और यही कारण है कि उसकी चेतना की पुकार—उसकी आत्मा का तकाजा अभी भी उसे ऐसा कुछ करने के लिये आह्वान करता है, जिससे इनके पुदगल कृत चमत्कारो की चकाचौध से बचकर आध्यत्मिकता के अलौकिक आलोक का दर्शन कर सकें।

सरकस का खेल देखते समय हम दाँतो तले अँगुली दवाना तो जानते हैं, पर क्या कभी यह भी सोचा है कि सफलता का क्या रहस्य है ? वर्वर-खूख्वार शेरो के साथ खिलवाड करना क्या अपने जीवन से खिलवाड करना नही है ? गभीरता पूर्वक मनन करने से ज्ञात होगा कि वचपन से ही इन जगली जानवरो पर निरन्तर ऐसे सस्कार डाले जाते हैं कि वे एकदम मानवीय नियत्रण मे आजाते हैं और फिर उन्हें मनचाहा प्रशिक्षण देकर जड जनता को विमोहित किया जा सकता है। कोमल शाखा को जैसा चाहो वैसा मोड दो पर कठोर शुष्क-सख्त काठ को नही !

तत्र विद्या क्या है ? दूसरो को जड वनाने के लिए स्वय चैतन्य वनकर उनके समस्त शासन तत्र-उनकी सारी वागडोर अपने हाथ मे ले लेना। और कठपुतलियो की भाँति उस जडीभूत जनता को मनमाने रूप से अगुलियो पर नचाना—यही सब तत्र विद्या है। परन्तु मत्र-विद्या का सम्वन्ध चेतना से रहता है। तुम्हारे मत्रो के शब्दो मे यदि किंचित् भी चेतना की पुट है, तो अवश्य ही सफलता तुम्हारे चरण चूमेगी।

"अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैरत्याग"

यह महर्षि पातजलि का एक सूत्र है। उसके अनुसार उन्होंने सिद्ध किया है कि हिंसक जीव भी अपने परस्पर के वैर-विरोध को भूल कर उसमे शाति की श्वास लेते है।

भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध आदि अनेक महान् योगियो के तपस्या काल मे सिंह और वकरी एक घाट पानी पीते थे। आधुनिक सरकसो की भाँति उस विद्युत हटर के आतङ्क से वर्वर सिंहो पर नियत्रण नही किया जाता था, वरन् अहिंसा के परमाणुओ मे हिंसक से हिंसक—निर्दय से निर्दय जीवो के परिवर्तित करने की अनुपम शक्ति होती थी।

आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व की सत्य घटना है। राजस्थान मे दीवान अमरचन्द जी का नाम आज भी वडे गौरव के साथ लिया जाता है। क्यो ? इसलिए कि एक वार उनके कुछ ईर्ष्यालु सहयोगियो ने राजा से चुगली की कि दीवान अमरचन्द जी अहिंसा धम की वडी डीग हाका करते है और कहते हैं कि अहिंसक के सामने शेर भी कूकर जैसा आचरण करने लगता है। क्यो न उनकी परीक्षा ली जाय ? निदान वे शेर के कठघरे मे नि शस्त्र अकेले छोड दिये गये। दीवान अमरचन्द की अहिंसा पर दृढ आस्था थी। सिंह के कठघरे मे प्रवेश करने के पूव उन्होंने ताजी गरम जलेवियो का एक थाल अपने साथ ले लिया था। वे दहाडते हुए शेर के सामने पहुँचे और उससे मानवीय भाषा मे वोले —

"स्वयमेव मृगेन्द्रता के साक्षात प्रतीक ! तुम एक आदतन मासाहारी जीव हो, परन्तु क्या तुम्हारा पेट केवल ताजे माम से ही भरा जा सकता है ? अन्य शाकाहारियो की तरह दूसरी खाद्य वस्तुओ से नही ? जरा अपनी लोलुपता को कम करो, अपनी दृष्टि बदलो और आत्म-कल्याण करो ।"

दीवान अमरचन्द के ये चेतन स्फूर्त शब्द कुछ ऐसी करुण भाषा मे कहे गये थे कि बर्बर सिंह की आंखो मे टप-टप आंसू गिरने लगे और उसी भावुकता मे उसने थाल की जलेबियां खाकर अपना पेट भर लिया । इस अहिंसा के अलौकिक चमत्कार को देखकर सभी दग रह गये । तो क्या दीवान अमरचन्द जी के इन शब्दो मे कोई मत्र की महाशक्ति थी या उन्हे सिंह के वशीकरण का कोई मत्र याद था ?· ·नही, कोई भी शब्द यदि उन्होने थोडा भी करुणा अहिंसा आदि तत्त्वो को छुआ है और उनमे किंचित् भी यदि चेतना की पुट है तो वही शब्द मत्र का रूप धारण कर लेते है ।

श्रीमन्मानतुंगाचार्य के इस ३९ वें काव्य के पीछे उनकी कुछ ऐसी दीर्घ साधना है कि उपर्युक्त काव्य के शब्दो मे आज भी वह चेतनता विद्यमान है और सिंहादिक हिंसक पशुओ को बातो ही बातो मे वश मे किया जा सकता है। जैसा कि श्रीपुर नगर के सेठ देवराज जी ने इस काव्य को ऋद्धि मत्र सहित सिद्ध कर लाभ उठाया ।

व्यापार को जाते समय सेठ जी के सम्मुख दहाडता गुर्राता शेर आया तो उन्होने महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र के ३९वें काव्य व उसके मत्र का आराधन विधि पूवक किया और सफलता प्राप्त की ।

●●●

जंगल की आग

देखते ही देखते करोडो की सपत्ति स्वाहा हो गई। प्रचण्ड अग्नि की लपलपाती हुई जिह्वा ने क्षण मात्र मे लक्ष्मीधर जी की समस्त विभूति राख मे परिणत कर दी । डेरे मे जितने भी तम्बू लगे थे—सब के सब अग्नि देवता की भेंट चढ गये । माल-असबाब से लदी हुई बैलगाड़ियां उस दावानल

मे होम हो चुकी। गनीमत रही कि किसी चर प्राणी की आहुति उसकी वलिवेदी पर न चढ पाई।

चारो ओर जोर शोर का कोलाहल मच गया।" पानी लाओ— पानी लाओ" चिल्लाने वालो की सख्या जितनी ही अधिक थी, लाने वालो की सख्या उतनी ही कम थी। सेठ लक्ष्मीधर के सहयोगी व्यापारी वन्धु मानो घर फूक तमाशा देख रहे थे। उनकी तो जैसे अक्ल मे गोदरेज का ताला ही लग गया था। अग्नि को वुझाने के लिये डाला गया पानी भी उस समय घी का काम कर रहा था। ज्यो-ज्यो वह डाला जाता त्यो-त्यो उसकी लपटें और अधिक भभकती तथा आकाश को छूने की होड लगाती।

अग्नि-शामक यत्र तो उस समय थे नही कि गैस छोड कर वात की वात मे अग्नि की विकरालता को समाप्त किया जाता। हाँ अग्नि-शामक मत्र जरूर था उस जमाने मे। आस्तिक एव श्रद्धालु लोग उसी का सहारा लेकर प्रकृति के इस रुद्र रूप पर विजय प्राप्त करते थे। जव सती सीता की सतीत्व परीक्षा के लिए रचाया गया अग्निकुड जैनधर्म के प्रभाव से एक लहराता हुआ सरोवर वन सकता है, तो कोई कारण नही कि जैनधर्म श्रद्धालु सेठ लक्ष्मीधर जी उसे शान्त करने मे सफल न होते। उन्होने अपने अमूल्य जीवन मे विपय-वासनाओ की होली जलाकर न जाने कितने पापो को भस्म किया था। वे धीरता पूर्वक इस होली काण्ड को उसी तरह देखते रहे जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान अष्ट कर्मों का ईधन बना कर उन्हे अपनी आँखो भम्मीभूत होते देखते हैं।

सेठ लक्ष्मीधर जी इस विकट सकट काल मे किंचित भी न घवराए। वे सोचने कि —अशुभ कर्मोदय से क्या नही होता ? रावण की तो सोने की लका ही जल कर राख होगई थी, फिर मेरी सपत्ति तो किस गिनती मे है ? निदान वे एकाग्रचित से ऋद्धि और मत्र सहित "कल्पान्तकाल पवनोद्धत-वन्हिकल्प ।" का पाठ मधुर स्वर मे जोर-जोर से करने लगे। आस-पास के लोग सेठ जी का यह कृत्य देखकर उन पर कस-कस कर पानी के छीटे मारते हुये दात निकाल कर विद्रूप हँसी हँसती हुये कह रहे थे—सेठ जी ! ! कुछ पानी का प्रवन्ध करो। भक्ति-भावना यहाँ काम आने वाली नही है। आग लगने पर कुँआ खोदना ही वेकार है। सेठ जी उन्हे सीधा-सादा सा उत्तर देकर अपनी साधना मे तल्लीन हो जाते !

× × ×

सरकारी सविधान मे देर-अधेर चाहे भले ही हो, परन्तु विधाता के विधान मे विलम्ब नही। यहाँ धर्म श्रद्धालु सेठ लक्ष्मीधर जी ने महाप्रभावक भक्तामर जी के ४० वें काव्य का ऋद्धि-मंत्र सहित जाप्य किया कि वहाँ जैन शासन की अधिष्ठातृ चक्रेश्वरी देवी हाथ जोड़े सामने खड़ी थी। अब जरा सरकारी सविधान के अनुसार चलने वाली व्यवस्था पर एक नजर डालिये।

एक बार किसी सरकारी इमारत मे अकस्मात् आग लग गई। उसे बुझाने का प्रयत्न करने के बजाय वहाँ के अधिकारियो ने अग्निशामक विभाग के पास कागजी घोड़े दौडाने प्रारम्भ किये कि अमुक भवन मे आग लग गई है, अविलम्ब उसे बुझाने का प्रबन्ध किया जावे। सो लीजिये पाठक गण! कोई ६ महीने के बाद उस विभाग से उत्तर आता है कि उसे शीघ्र बुझा दिया जाय।

बस यही हाल आज हमारा है। हम थोथे प्रयत्न तो बहुत करते हैं, परन्तु चेतना से सम्बन्ध रखने वाले सारभूत प्रयत्नो से सदैव दूर भागते हैं। अस्तु, हमें पुन अपने प्रसग पर आजाना चाहिए। पाठक वृन्द कदाचित् बहुत देर से इन प्रश्नो को अपने मे सजोये हुए होंगे कि यह लक्ष्मीधर कौन थे ? आग कैसे लगी ? कहाँ पर लगी ? आदि! तो सबका समाधान निम्न पक्तियो से हो जावेगा।

× × ×

लक्ष्मीधर जी पोदनपुर के एक धनिक श्रेष्ठी थे। दीपावली के दिन शुभ वेला मे व्यापर के निमित्त अपने कई साथियो के साथ उन्होने सिंहलद्वीप की ओर प्रस्थान किया। रास्ते मे एक जगह डेरे डाले गये। सध्या के समय सेठ जी ने सोचा कि आज त्यौहार का पवित्र दिन है। लक्ष्मी पूजन कर ली जावे तो ठीक रहे। यह सोच कर उन्होंने भौतिक लक्ष्मी की उपासना करने के लिए आरती का एक दीपक जलाया। भौतिक लक्ष्मी की चकाचौंध मे वे भूल गए कि दीपावली का त्यौहार इस भौतिक लक्ष्मी की पूजन का दिन नही वरन् मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त करने का है। श्री भगवान् महावीर स्वामी की पूजा का पावन दिवस। सेठ जी भौतिक लक्ष्मी की पूजन-अर्चन के बाद सो गये। एक घन्टे के बाद शोरगुल से उनकी आँख खुल गई– तब वे देखते क्या है, कि आज की दीवाली तब तक होली मे परिणत हो चुकी थी।

जैन शासन की अधिष्ठातृ चक्रेश्वरी देवी ने जिन प्रतिमा का न्हवन जल (गधोदक) लाकर सेठ जी को दिया। वह जहाँ सींचा गया, पावक तत्काल शीतल होती गई—शान्त होती गई।

भगवान् महावीर स्वामी की जय-जयकार से सारा जगल गूंज उठा।

●●●

तत्काल ही वह नाग हुआ रत्न की माला

धर्म और सदाचार की नेमि पर आधारित चक्र-युगल ही गृहस्थ जीवन के रथ को प्रगति पथ पर द्रुतगति से सचालित कर गन्तव्य स्थान तक सफलता पूर्वक पहुँचा सकते हैं। यदि दोनो पहियो मे समान गति अथवा यति है, समान ही आकार-प्रकार एव सौष्ठव है तो पथ कितना ही ऊबड-खाबड, पथरीला क्यो न हो, मद अथवा तीव्रगति से गृहस्थ जीवन का यह रथ अपने पथ पर वेरोकटोक आगे बढता ही जावेगा। परन्तु यदि किसी चक्र मे ही विषमता या असमानता है तो समझिये वही गत्यवरोध होगया।

गार्हस्थिक जीवन-रथ के ये चक्र युगल पति और पत्नी हैं। इनमे समान गति-यति-मति और रति गुणो का होना उतना ही आवश्यक है जितना कि हवा और पानी किसी भी प्राणी को। दम्पत्ति मे परस्पर निश्चय और व्यवहार अथवा निमित्त और उपादान जैसा अविनाभावी सम्बन्ध अनिवार्य है।

सेठ सुदत्त जी के गार्हस्थिक जीवन की गाडी चूँ चरर-मरर करती हुई आगे येन-केन प्रकारेण बढ रही थी—टिकल रही थी। ढिकल क्या रही थी? कभी एक चक्र चलता था तो दूसरा गति हीन हो जाता, कभी-कभी तो गाडी टूट जाने का सन्देह होने लगता था। इसका एक कारण तो यह था कि पत्नि की दैनिक चर्या यदि जैन धर्मानुमोदित थी तो पति महोदय की उससे सवथा विपरीत। पति को यदि रात्रि का भोजन होना तो पत्नी को उसका प्रवल विरोध प्रकट करना। स्वभावत आये दिन तू-तू—मैं-मैं होती ही रहती और दम्पत्ति के मन एक दूसरे से ३६ का रूप धारण कर लेते थे। सप्ताह में अधिक से अधिक तीन दिन चूल्हा सुलगता, चार दिन तो अनशन मे ही व्यतीत होते थे। सभवत इन अकाम निर्जरा मे वे दाम्पत्य आनन्द के अतिरिक्त किसी अन्य अलौकिक आनन्द की प्रतीक्षा मे रहते थे। चूकि पत्नि-सुपत्नी थी—पतिव्रता थी—सदाचारिणी थी—पति परायणा थी और थी सब गुण सम्पन्ना। इसीलिए वह अपने पति को सन्मार्ग पर लाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहती थी। अतएव उसे दोष देना अन्याय होगा। क्योकि उसने धर्म और सत्य की सुरक्षा के लिए ही गृहस्थी मे बगावत का झडा खडा कर दिया था। पति को सन्मार्ग पर लाने वाली कितनी स्त्रियाँ ऐसा साहस करती हैं? भले ही गृह-कलह प्रतिदिन उसी को लेकर होती हो और उसकी सास इस कलह की आग को भडकाने मे घी का काम करती हो, परन्तु तो भी वह

एक आदर्श सच्चरित्रा और पतिव्रता थी।

सासुओं का स्वभाव प्रायः वधू पर शासन करने का रहता है। भारतीय परम्परा में उन्हें यह शिक्षा संस्कार स्वरूप विरासत में मिली प्रतीत होती है। सासुएँ जब स्वयं वधुओं के रूप में होती थीं तो वे देखती रहती थीं, कि किस प्रकार वहू पर शासन करना, उससे अपनी सेवा सुश्रूषा करवाना, किस प्रकार झूठे सच्चे रूप से अपने लड़के के कान भरकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना। सासुओं को भय होता है कि कहीं लड़के का अगाध प्रेम पत्नि पर इतना तीव्र से तीव्रतर न हो जाय कि मेरा अधिकार ही इस पर से उठ जायें। अपना अधिकार और शासन जताने के लिए ही सास अपनी वहू पर बुरे से बुरा अत्याचार करने में भी नहीं चूकतीं। वास्तव में इनका खरा-खोटा कथन करने के लिए तो एक स्वतन्त्र 'सासु-पुराण' ही चाहिए। इस कथा प्रसंग में तो यह बताना ही प्रसंगानुकूल है कि वधू के विरोध में उसकी सास तथा पति ने क्या षड्यन्त्र रचा था और महाप्रभावक श्री भक्तामर स्तोत्र के ४१ वें काव्य से वह किस प्रकार विफल हुआ।

× × ×

सुसज्जित शयन-कक्ष में सुन्दर एक पलंग रखा हुआ है। उस पर सेठ सुदत्त अपनी अर्द्धाङ्गिनी दृढ़व्रता सहित आसीन हैं। अपेक्षाकृत आज पति की ओर से मोह और प्रेम की कृत्रिमता अधिक थी—मानो वे अपनी इस प्रेयसी पर आज सब कुछ न्यौछावर कर देने को तत्पर हों। परन्तु सच पूछा जावे तो उनके मन की कुटिलता पर वाचनिक एवं कायिक मधुरता का पालिश मात्र था।

"मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम्।" के अनुसार मानो साक्षात् 'विष-रस भरा कनक-घट जैसे" का पार्ट अदा कर रहे थे। इन दोनों पात्रों के अतिरिक्त उस शयन-कक्ष में उनकी इस नाट्य लीला को देखने वाला अन्य कोई दर्शक नहीं था। हाँ, एक स्वर्ण-कलश विविध रंग की पुष्प मालाओं, श्रीफल एवं मङ्गल पत्रों से विभूषित साक्षी स्वरूप वहाँ अवश्य रखा हुआ था। यद्यपि वह घट किसी सुनिश्चित योजनाबद्ध षड्यन्त्र को आधार बनाकर स्थापित किया गया था तथा सत् की सुरक्षा के लिए वह अपने सम्पर्क से दृढ़व्रता जैसा उपादान पाकर एक अपूर्व निमित्त सिद्ध हुआ। बातों ही बातों में सेठ सुदत्तकुमार स्वर्ण कुम्भ की ओर इंगित कर बोले—

"प्रिये! हमारा तुम्हारा प्रेम गंगा-जल सा निर्मल और पवित्र है। वास्तव में तुम्हारे जिनेन्द्र प्रभु की आराधना से मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ

हूँ। चाहता हूँ कि आज ही अपने पैतृक धम का परित्याग कर मैं अर्हत् धर्म अङ्गीकार करलू। फल स्वरूप आज मैं तुम्हे अपना दीक्षा गुरु बनाने जा रहा हूँ और उसी के उपलक्ष्य मे मै तुम्हारे लिए जो अमूल्य रत्न जटित उपहार लाया हूँ वह उस स्वर्ण-कुम्भ मे सुरक्षित है। आशा है तुम निसकोच इसे अपने कठ मे धारण कर मेरे नेत्र युगलो को तृप्त करोगी।"

"पतिदेव की आज्ञा शिरोधार्य है।"—कहती हुई दृढव्रता बडे ही आत्म-विश्वास के साथ उस स्वर्ण-कलश के पास पहुँची और उसमे से रत्नजटित स्वर्णहार निकाल कर पति के समीप लाते हुए बोली —मेरे हृदयेश्वर! यह अनुपम हार मेरे कण्ठ की शोभा नही बढा सकता यह अमूल्य हार तो आप के ही विस्तृत वक्ष स्थल पर लहराते हुए देखना चाहती हूँ, क्योकि अपने पति परमेश्वर मे मेरी श्रद्धा-मेरी आस्था आज इसलिए द्विगुणित होकर उल्लास मयी हो रही है कि आज मेरे सर्वस्व आर्हत् धर्म अङ्गीकार करने जा रहे हैं।" कहते हुए उस हार को दृढव्रता ने अत्यन्त आदर भाव से सुदत्तकुमार के गले मे पहिना दिया और यह देखने के लिए कि हार कैसा लगता है—एक कदम पीछे हटी, परन्तु देखा तो हार की जगह काला-नाग गले मे लहरा रहा था।

कुछ क्षणो के उपरान्त सेठ सुदत्तकुमार जी पलग पर मूर्छित पडे थे और उनके चारो ओर तान्त्रिको-झाडने-फूंकने वालो का जमघट लगा था। सास अपनी वधू को पानी पी-पी कर कोस रही थी कि इस डायन कलमुँही की भूख आज अपने ही पति का भक्षण कर शान्त हुई है। यहाँ पति की यह अवस्था देख दृढव्रता एकाग्रचित हो भक्तामर स्तोत्र के ४१ वें श्लोक—

रक्तेक्षण समद कोकिल कण्ठ नील का पाठ वार-वार दुहरा रही थी। वह ४१ वें काव्य के मन्त्र साधन मे ऐसी तल्लीन थी कि सास के विष बुझे बाणो का उसके कानो मे कोई असर नही हो रहा था।

एकाएक जैन शासन की अधिष्ठात्री पद्मा नाम की देवी ने प्रकट होकर कहा—"दृढव्रते! आँखे खोलो और उस कुम्भ के जल को पतिदेव के शरीर पर छिडको"—इतना कहकर वह अन्तर्धान होगई।

दृढव्रता ने उस स्वर्ण कलश मे भरे हुए जल को पतिदेव पर छिडका तो सुदत्त ऐसे उठ बैठा जैसे सोकर उठा हो। नागो को वश मे करने वाले सँपेरो और विषधर का विष उतारने वाले तान्त्रिको ने जब यह चमत्कार देखा तो दग रह गये और उनके मुख से बार-बार ये शब्द निकल रहे थे—

जो तोकू काटा बुवे, ताहि बोऊ तू फूल।
तोहि फूल के फूल हैं, बाको हैं तिरसूल॥

●●●

इतिहास अपने को दुहराता है

मनुष्य को कभी भी कान का कच्चा नहीं होना चाहिए। प्रत्येक परिस्थिति को अपनी विवेक-तुला पर तौल कर ही अपने कर्त्तव्य स्थिर करना चाहिए। बुन्देलखण्ड में एक कहावत प्रसिद्ध है कि, "सुनने वाला सावधान हो तो कान भरने वाले का जादू टोना छूमन्तर हो जाता है।" आये दिन हमारे पारिवारिक गृहस्थ जीवन में 'तू-तू-मैं-मैं' हुआ करती है। कारण की तह तक पहुँचा जावे तो इन काण्डों की निर्मात्री स्त्रियां ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। अपने पति देवताओं के कान में न जाने वे क्या जादू फूंकती हैं—कि सहोदर भाई भी जो कल तक परस्पर गले मिलते थे—आज कहीं या वे एक दूसरे के खून के प्यासे हो जावें। परन्तु यह सब कब होता है? जब कि पति विवेकी नहीं है उसमें स्वयं की अपनी कुछ अक्ल नहीं है।

× × ×

बीते युग की बात है।

गुणवर्मा ने देवालय से आकर महल की संगमरमर जड़ित देहली पर पग रखा ही था कि बड़े भाई सा० ने लाल लाल अँगारे सी आंखें निकालीं और जोर से चिल्ला कर कहा—खबरदार! जो देहली पर पैर रखा। रे मूर्ख! तू मुझ जैसे राजा के भाई होने के योग्य कदापि नहीं? मैं, तेरा मुंह देखना भी पाप समझता हूँ। चला जा उलटे पैरों यहां से, अन्यथा याद रख, कर्मचारियों से तेरी दुर्दशा कराई जावेगी। '

परिस्थिति से अनजान अपने में लीन बेचारा गुणवर्मा अपने अग्रज की यह कठोर आज्ञा सुनकर क्षण भर तो अवाक् रहा। परन्तु बाद में उसे ध्यान आया कि यह केवल अग्रज की नहीं वरन् राजाज्ञा है। वह राजाज्ञा जिसे सेना और सम्पत्ति एवं राजकीय वैभव का अहंभाव है—अभिमान है। सच है—

"प्रभुता पाय काहि मद नाहीं?"

शासन करने वालों में—सत्ताधीशों में, स्वाभावतः घमंड आही जाता है और उसको—उसके मद को चूर करने के लिए कुछ ऐसी विभूतियों की आवश्यकता युग के लिए बनी ही रहती है। ये विभूतियां अपने सुखों को लात मार कर अपने भोगों की होली को जलाकर "परोपकाराय सत्तां—विभूतय" का पाठ जगत को निरन्तर सुनाती रहती है। ऐसे ही महा पुरुषों से सन्मार्ग

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् ।"

यद्यपि गुणवर्मा के दयालु हृदय में बदले की दुर्भावना किंचित् भी न थी, तो भी दैव को तो अपना प्रयोजन इन्हें निमित्त बनाकर सिद्ध करना ही था। इसलिए एक दिन जब गुणवर्मा महाप्रभावक श्री भक्तामर स्तोत्र के ४२-४३वें काव्यों का ऋद्धि मंत्र सहित आराधन कर रहे थे कि साक्षात् रणचण्डी सेनाध्यक्ष के वेष में अपनी चतुरङ्गिणी सेना का नेतृत्व करती हुई उन्हें शुभ संवाद सुना रही थी—

"स्वामिन् रत्नकेतु रणाङ्गण में पीठ दिखाकर भाग ही रहा था कि मेरे सिपाहियों ने उसकी मुश्कें बांध लीं।"—कह कर सेना और सेनापति तत्काल ही अदृश्य होगए।

गुणवर्मा ने अपने ज्येष्ठ अग्रज को बन्धनमुक्त कर दिया और स्वयमेव जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर आयु के अन्त में समाधिमरण करके स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया।

●●●

समुद्र-यात्रा

दक्षिण भारत का तत्कालीन प्रसिद्ध बन्दरगाह 'ताम्रलिप्ति'-सम्भवत जिसका आधुनिक नाम तामली है—अपने युग का एक ऐसा बन्दरगाह था जहाँ से सामुद्रिक व्यापार के सभी मार्ग खुलते थे। समुद्रों द्वारा व्यापार यहाँ बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। भौगोलिक अध्ययन करने वालों को परिज्ञात है कि दक्षिणी तट की निर्यात सामग्री जहाँ प्रारंभ से ही लवंग, इलायची, सोंठ, सुपारी, काजू, पिस्ता नारियल आदि वस्तुएँ रही हैं, वहाँ आयात सामग्री के रूप में हीरा, जवाहिरात, मणि, माणिक्य आदि बहुमूल्य रत्नों के द्वारा जहाजों के जहाज भर कर यहाँ लाए जाते थे। कहाँ से लाए जाते थे—इसका ठीक-ठीक ऐतिहासिक पता नहीं लगता है। यद्यपि रत्नद्वीप का उल्लेख कई प्राचीन पुराणों में मिलता है। आधुनिक भू-ज्ञान वेत्ताओं ने इस रत्न द्वीप को वर्तमान प्रवाल द्वीप माना है, जो कि लाक्षाद्वीप के ही आस-पास विद्यमान

है। लक्षाद्वीप समुदाय वर्तमान सरकार द्वारा केन्द्र शासित राज्यों में से एक है। जिस काल से इस घटना का सम्बन्ध है—उस समय कहते हैं कि सारा समुद्रीय वाणिज्य वणिकजनों के हाथ में था। उन वणिकों में सेठ ताम्रलिप्त का नाम प्रमुख था। आधे से अधिक व्यापार तो उस समय आप अकेले ही हथियाये हुए थे। व्यावसायिक दृष्टि से सारे हिन्द महासागर पर उनका एकाधिपत्य था। जिस समय सामने बन्दरगाह पर स्वस्तिक चिन्हांकित केशरिया ध्वजों से लहराते फहराते हुए उनके जहाजों का काफिला आता दिखाई देता तो उस समय जैनधर्म की अद्वितीय प्रभावना का एक अजीबोगरीब सा समा बँध जाता था। वणिक् श्रेष्ठि ताम्रलिप्त के इस प्रत्यक्ष वैभव के परिणाम पर जब अन्य पुरुषार्थी विचार करते थे, तो उन्हें केवल उसका एक ही कारण मिलता था और वह था "जैनधर्म का पुण्य-प्रताप।" वास्तव में ताम्रलिप्तजी थे तो एक कुशल व्यापारी परन्तु उनका लक्ष्य अर्थ पुरुषार्थ से पहिले धर्म पुरुषार्थ पर ही रहता था। उनका अपना विश्वास था कि 'जिसने धर्म पुरुषार्थ का साधन यथाविधि कर लिया उसके द्वारा ही अर्थ पुरुषार्थ सरलता तथा सफलता पूर्वक सम्पादित हो सकता है। धर्म और अर्थ वाले ही काम पुरुषार्थ के परिणाम का उपभोग कर सकता है और फिर पुरुषार्थी परम्परया मोक्ष पुरुषार्थ को भी साध सकता है।" वास्तव में देवदर्शनादि षट् आवश्यक पालन तथा महाप्रभावक भक्तामरस्तोत्र की भक्ति पूर्वक आराधना उनका नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्य था। किसी भी अवस्था में वे इतना करना कदापि नहीं भूलते थे।

आप में से जिन लोगों ने समुद्रों की यात्राएँ की हैं—वे जानते हैं कि किन-किन मुसीबतों का सामना उन्हें करना पड़ता है। तूफान का खतरा तो जैसे चौबीसों घन्टे नगी तलवार के समान सिर पर लटकता रहता है। उत्ताल तरगों के बीच में यदि जहाज फँस जाय तो लेने के देने पड जावें। समुद्री जीव-जन्तुओ के धावा बोलने की भी वहाँ कम सभावना नहीं रहती। ऐसे दुखद भयावह प्रसगो पर कोई अक्ल या विद्या काम नहीं आती। सब की सब बुद्ध तो पानी में जाती ही है—हमें भी ले डुबती है। पावन हृदय से भगवान का स्मरण करने के सिवाय वहाँ उस समय कोई दूसरा चारा नहीं रहता।

व्यन्तर जाति के देव जिनका आधिपत्य जल थल और नभ में सब जगह रहता है—अपना बदला लेने अथवा अपनी पूजा प्रतिष्ठादि कराने के लिए चलती हुई जहाजो को कील देते हैं और इस प्रकार जगत में वे मिथ्यात्व एव असत् की दुष्प्रभावना कराने की कुचेष्टा करते हैं। हिंसा पूर्ण बलिदानों की

मांग करते हैं। सद्धर्म से डिगाने के लिए यात्रियों को नाना प्रकार की यातनाएँ देते हैं। जिनकी श्रद्धा सत्य धर्म पर नहीं होती वे नर बलि या पशुबलि देकर उस कुदेव को सतुष्ट करते हैं। और इस प्रकार हिंसा का बोलबाला बढ़ता चला जाता है। परन्तु सेठ ताम्रलिप्त जो पूर्ण अहिंसक थे अपनी वणिक् मडली के साथ जब अपने जहाज मे हीरा जवाहिरात भर कर स्वदेश को प्रत्यावर्तित हो रहे थे तो एक जलवासिनी देवी ने उनके जहाज को बीच समुद्र मे कील दिया। फल स्वरूप वह किंचिन्मात्र भी आगे न बढ सका।

जलवासिनी देवी की मांग थी—कि बिना पशुबलि दिये जहाज का आगे बढ़ना असभव है। परन्तु सेठ ताम्रलिप्त भी एक ही दृढ निश्चयी सम्यक्त्वी व्यक्ति थे। उन्हें विश्वास था कि भला सत् कहीं असत् से मात खा सकता है? क्या हिंसा कभी अहिंसा पर विजय प्राप्त कर सकता है? क्या सृजन और निर्माण की अपेक्षा विनाश इतना सस्ता है? कभी नहीं। मैं ऐसा कभी नहीं होने दूंगा। अपने मुर्दों के पीछे मैं इस राक्षसी देवी को सतुष्ट करने के लिए कभी भी बेकसूर मूक प्राणियो की बलि न दूंगा। चाहे यह सौदा मुझे कितना ही महँगा क्यों न पड़े? ताम्रलिप्त जलवासिनी देवी से कड़ककर बोले—"दुष्टे! तू सीधी तरह से मेरे मार्ग से एक तरफ हट जा, अन्यथा मेरे धर्म की शासन देवी तेरा नामोनिशान भी न रहने देगी। मैं वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती तो हूँ नहीं, जिसने सच्चे जिनधर्म मे अश्रद्धा करके णमोकार मत्र को पानी मे लिखकर लात से मिटाया था और फिर उस जल व्यन्तर के हाथों से बचने के बजाय समुद्र में ही डुबो दिया गया था और जो आज तक नरक मे सड रहा है। मैं तो अहिंसा धर्म का आस्थावान अनुयायी हूँ, तू मेरा क्या बिगाड़ सकती है? क्या तुझे नहीं मालूम कि मारने वाले की अपेक्षा बचाने वाले की भुजाएँ ज्याद लम्बी होती हैं। इतना कहने के उपरान्त ताम्रलिप्त जोर-जोर से

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषण-नक्रचक्र—
पाठीनपीठ भयदोल्वण वाडवाग्नौ।
रगत्तरग शिखरस्थित-यानपात्रा—
स्त्रास विहाय भवत स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥

का जाप्य ऋद्धि मत्र सहित करने लगे। आँखें उनकी बद थी, परन्तु अन्त करण जागृत था।

आँखें खोलने पर कुछ देर बाद देखते क्या हैं—कि जहाज आगे बढ़ रहा है तथा आगे-आगे एक दिव्य रूपधारिणी चक्रेश्वरी देवी जलवासिनी देवी की लम्बायमान चोटी को पकडे हुए पानी मे घसीटती हुई बढी जा रही है।

जहाज मे बैठे हुए वणिकजनो की आवाजें समुद्र की उत्ताल तरङ्गो तथा लहराती लहरों और आकाश की हवा को भेद कर थल की ओर बढती हुई गूंज रही थी—

अहिंसा धर्म की जय ।

अहिंसा परमो धर्म यतो धर्मस्ततो जय

●●●

कर्म के फेरे

"क्यो भाई ! तुम कौन हो ? क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मैं उज्जयनी नरेश नृपशेखर का इकलौता पुत्र युवराज हसराज हूँ ।"

"फिर तुम्हारा यहाँ नागपुर आना कैसे हुआ ?"

"दुर्भाग्य का सताया हुआ कही भी जा सकता है राजन् ! दैवाधीन मनुष्य का उसके अपने हाथ मे क्या है ? उदयागत कर्मों की प्रबल-पवन उसे जिस दिशा मे भी उडा ले जाय, विवश होकर उसे वहाँ जाना ही पडता है। यही हाल मेरा भी समझिये ।"

"वत्स ! तुम्हारी वार्तालाप की शैली से तो प्रकट होता है, कि तुम वास्तव मे कोई युवराज हो, परन्तु क्या इतना और बतलाने का कष्ट करोगे कि एक अनाथ की भाँति तुम इस वृक्ष के नीचे पडे हुए क्यो कराह रहे हो ? क्या तुम्हे कोई बीमारी है ? सारा का सारा शरीर भी तुम्हारा पाण्डुवण दिखाई दे रहा है ।"

"हाँ, महाराज ! आपका अनुमान ठीक है । मैं वात-पित्त और कफ की विषमताओ से प्रपीडित हूँ । अन्नादि ग्रहण न करने पर भी यह पेट गरीब के व्याज की भाँति दिन दूना रात चौगुना बढता जा रहा है। राज्यवैद्य ने इसका निदान 'जलोदर' किया था । पर उपचार के नाम पर अपनी असमर्थता प्रकट करदी ।"

"घुटनो मे पीडा होती है, मानो गठियावात के लक्षण भी प्रकट होने लगे हो ! कफ, खाँसी को तो आप प्रत्यक्ष देख ही रहे है कि आप से बात

करना भी कठिन होगया। जहाँ तहाँ ये कोढ के धब्बे भी दिखाई देने लगे हैं। इतना ही नही, उस कोढ मे भी यह खाज हो रही है। जैसे तैसे मौत की घड़िया गिन रहा हूँ। पर वह निगोडी आती ही नही। वह तो न जाने किस स्वस्थ और सुन्दर युवक की तलाश मे है। आप ही देखिये न कि क्षणिक ससार की विनाश लीला के सारे दृश्य मेरे शरीर के परदे पर ही दिखाये जा रहे हैं। मैं चाहता हूँ, कि बस मृत्यु के पर्दे का पटाक्षेप हो और मेरे जीवन-नाटक का यह वीभत्स दृश्य शीघ्र ही समाप्त हो।"·· कहते-कहते युवराज हसराज की आँखो मे सावन की झडी लग गई। उसका कठ रुँध गया और वह आगे एक शब्द भी न बोल सका।

अपने साथियो सहित भ्रमण को आये हुए वहाँ के राजा मानगिरि युवराज की यह करुण कहानी सुनकर एव उसकी यह नारकीय दारुण पीडा देखकर अविचलित न रह सके। यद्यपि वे कठोरता और निष्ठुरता के साक्षात् अवतार थे।

× × ×

राजकुमारी कलावती दुलहिन के रूप मे सुसज्जित विवाह मडप के मध्य मे खडी है और युवराज हस भी उसी वेष मे दूल्हा बन कर खडा हुआ है—गठ बन्धन की क्रिया की जा चुकी है—भाँवरें पडने भर की देर है। पडित पुरोहित, विप्र, मत्री आदि बार-बार राजा को रोक रहे हैं, मना कर रहे हैं कि क्यो आप अपनी एकलौती लाडली कोमलाङ्गी कन्या का अमूल्य जीवन अपने ही हाथो विनष्ट करने पर तुले हुये है ? क्यो एक सडी गली मुर्दा लाश से इस रूपवती बाला के सुकुमार यौवन को बाध रहे हैं ? ऐसा करने से नरक मे भी जगह न मिलेगी। · पर राजा मानगिरि तो ऐसे आपे से बाहिर हैं कि किसी की सुनते ही नही। आँखें उनकी अगार की तरह लाल-लाल हो रही हैं। दभ और अहम् का कोई ठिकाना नही है। उनका तो विश्वास है कि जब यह लडकी हमारा दिया हुआ खाती है, हमारे आश्रित रह कर यह इतनी बडी हुई है तो फिर क्यो कर कर्म-कर्म चिल्लाती है ? बार-बार उनकी दुहाई देती है। कर्म के आगे वह मेरा अस्तित्व भी नही मानती। मेरे उपकार की कोई कद्र भी नही करती। देखें, इसका ये कर्म कब तक साथ देते है। कर्मों का सताया हुआ युवराज ही इसका सर्व श्रेष्ठ योग्य वर है।

विवाह मे उल्लास का नहीं, मातम सा करुण वातावरण छाया हुआ था। माता की ममता दीवार से सिर फोड रही थी। परन्तु उस मदान्ध क्रोधी को

कुछ नहीं सूझता था। भारतीय नारी कलावती कैसे अपने पति के विरोध में एक भी शब्द कह सकती थी? पातिव्रत्य धर्म की सु-शिक्षा तो यहाँ की नारियों को जन्मघुटी के साथ ही मिली है। वह बेचारी तो धीरता पूर्वक अपने कर्मों का यह तमाशा देखती रही। भावी सु-दिन की आशाओं के सहारे उसने अपने को बांधकर विष का यह कडुवा घूंट पी लिया। पर चूं तक न की।

और इस प्रकार राजकुमारी कलावती एवं हंसराज का जीवन एक परिणय सूत्र में बंध गया।

× × ×

जिस दिन युवराज हंसराज को कलावती पाणिग्रहण में प्राप्त हुई उसी दिन से उसका प्रत्येक दिन सोने का और प्रत्येक रात मानों चांदी की बनती गई। जिस प्रकार विपत्तियां कभी अकेली दुकेली नहीं आतीं वैसे ही सौभाग्य भी जब आता है तो वह अपने साथ स्वर्गलोक का पूरा वैभव लाता है। निमित्त मिलते जाते हैं—कार्य होता जाता है। बात यह हुई कि एक दिन उपर्युक्त दोनों दम्पत्ति को एक परम निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिश्री द्वारा महा प्रभावक श्री भक्तामर स्तोत्र का ४५ वाँ श्लोक का निमित्त मिल गया। उनके ७ दिन तक निरन्तर अखण्ड जाप्य से युवराज हंस की वह घिनौनी काया कंचन काया होगई। और युवक कामदेव को लज्जित करने लगा।

मुनिराज ने बतलाया कि कुमार की यह दयनीय हालत उसकी विमाता कमला द्वारा दी गई मिठाई के कारण हुई है। यह अच्छा हुआ कि युवराज ने वह राजमहल तत्काल ही छोड़ दिया अन्यथा जीवन-दान देने का यह परम सौभाग्य मुझे कभी भी प्राप्त नहीं होता। वास्तव में मनुष्य को कदापि एक पत्नी के स्वर्गवासी हो जाने पर अपना पुनर्विवाह नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसके ऐसे ही अनेकों भयङ्कर दुष्परिणाम देखे और सुने जाते हैं।

●●●

कनेक्शन : आत्मा से परमात्मा तक

मध्ययुगीन इतिहास के पन्नों में जहाँ भारत की सांस्कृतिक गौरव-गरिमा का सूर्य अस्ताचल की ओर ढलता हुआ दिखलाई देता है, वहीं उसमें कुछ

ऐसे स्वर्णिम अध्याय भी हैं जिनमे भक्ति-काल का उदीयमान मार्तण्ड अपनी प्रखर रश्मियो से राजा-प्रजा दोनो को चमत्कृत कर रहा था।

मध्ययुग के इसी भक्तिकाल मे मीरा ने हँसते-हँसते विष का प्याला पिया, तुलसी ने पवनपुत्र हनुमान का साक्षात्कार किया, सूर ने कृष्ण की बाहे पकडी, गुरुनानक ने जिस ओर पैर पसारे उसी तरफ मन्दिर मस्जिद पहुँच गई। तारणतरण स्वामी ने शास्त्रो को आकाश मे उडते हुए दिखलाया। पूज्य प्रात स्मरणीय मानतुङ्गाचार्य जी ने कठोर कारावास के एक के बाद एक अडतालीस ताले अपनी समाधि स्तुति द्वारा तोडे और स्वामी हेमचन्द्राचार्य, शकराचार्य, एव श्री भट्टाकलक देव आदि ने अपने युगो मे जो-जो चमत्कार दिखलाये वे उनकी आध्यात्मिक प्रतिभा के ज्वलन्त प्रतीक है—योग विद्या के उदाहरण है।

× × ×

राजपूताने का जैन वीर युवराज रणपाल एक सुन्दर, स्वस्थ, सुशील, सुशिक्षित किशोर था। पिता उरपाल राज दरबार मे सिंहासनासीन थे कि उसी समय पडोसी मित्र राज्य वासुपुर के नृपति का उनके राजदूत द्वारा एक गुप्त-पत्र प्राप्त हुआ।

महा मान्यवर, नृपतिवर।

उभयत्र कुशल! अपरच जोगिनपुर के नवाब शाह सुलतान आप पर आक्रमण करने की योजना बना रहे है। मित्र राज्य होने के नाते मेरा यह राज्यधर्म है कि आपको इस सदर्भ की अग्रिम सूचना देकर सचेत कर दूं। शेष शुभ। आदेश की प्रतीक्षा मे—

विनयावनत —
वासुपुर नरेश

पत्र पढकर अजमेर नरेश 'उरपाल' प्रथम तो कुछ गभीर हुए परन्तु क्षण भर मे ही साहस और शूरवीरता का ऐलान करके बोले—

"कोई ऐसा बहादुर इस भरी सभा मे है जो शाह सुलतान को जीवित पकड कर ला सके?"

"मैं ला सकता हूँ"—बुलन्द आवाज मे युवराज रनपाल ने हाथ उठाकर सक्षिप्त सा उत्तर दिया।

× × ×
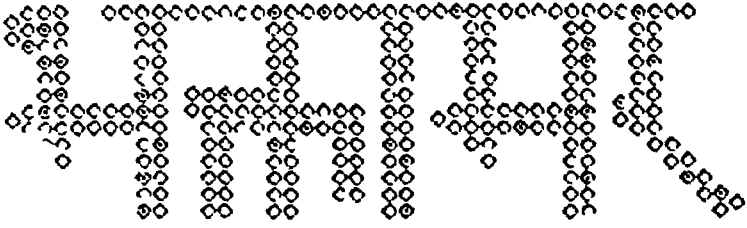
दिव्य-मन्त्रालोक

(तृतीय-खण्ड)

भक्तामर स्तोत्र नित्य पाठ-विधि

भक्तामर स्तोत्र की महिमा अपूर्व है, महाप्रभावक है। जो पुरुष श्रद्धा पूर्वक नित्य-नियमित इस महान् स्तोत्र का पाठ करता है उसके हृदय रूपी कमल की पांखुड़िया प्रस्फुटित होने लगती हैं, उसमें दिव्य-प्रकाश की किरणें फूटने लगती है और उस आराधक के आध्यात्मिक विकास के पथ को प्रशस्त करने लगती हैं। दूसरे शब्दों में मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट एव मधुर फल मोक्ष-सुख भक्तामरस्तोत्र के आराधक को अवश्य ही प्राप्त होता है और वह अपने को कृतकृत्य अनुभव करने लगता है।

अद्यावधि पर्यन्त अनेक आराधकों ने इस प्रकार का सुखद अनुभव किया है और हम भी अगर चाहें तो उस प्रकार का अनुभव प्राप्त कर सकते ह, परन्तु व्यावहारिक विविध प्रकार के जटिल जजालो में फंसे हुये हम इस प्रकार की कामना ही कहाँ करते हैं? शुभ सुन्दर प्रशस्त कार्य या प्रवृत्ति की इच्छा होना एक मगलमय ध्येय है, इसे हमें कभी भी नही भूलना चाहिये इच्छाओं में से सकल्प जागता है और वह सकल्प पूरा होते ही हमारे जीवन मे एक नई रोशनी प्रकट होती है। अतएव हमें इस महान्—अद्वितीय महा-प्रभावक स्तोत्र का नित्य-नियमित पाठ करने की अभिलाषा रखनी चाहिये। अस्तु—

सद्गुरु के पादमूल में ही इस स्तोत्र की साधना किया जाना श्रेयस्कर है। सस्कृत के ४८ श्लोक किस प्रकार कठस्थ होंगे? ऐसा विचार कदापि नही करना चाहिये। पुरुषार्थ करने वाले जब अनेक शास्त्रो को याद रखते हैं तो ४८ श्लोक मुखाग्र याद करना कोई कठिन कार्य नही है। प्रतिदिन एक श्लोक कठस्थ करे तो ४८ दिन मे ४८ श्लोक कठस्थ हो जावेंगे और अगले भव का भव्य कलेवा साथ बध जावेगा। जिस व्यक्ति से इतना भी न बने तो वह प्रतिदिन आधा श्लोक कठस्थ करके तीन माह मे इस अमूल्य पावन वस्तु को अपना बना सकता है। एक बार अशुद्ध श्लोक आपके मुख लग गया तो उसकी

शुद्धि होना वडा ही कठिन कार्य होगा, इसलिए सद्गुरु के सानिध्य मे बैठ कर भक्तामरस्तोत्र के ४८ काव्यो को शुद्ध कठाग्र कर लेवे। ताकि भविष्य मे किसी अनिष्ट की आशका ही न रहने पावे।

भक्तामरस्तोत्र के नित्य नियमित पाठ से अनेको व्यावहारिक लाभ होते है। जैसे आती हुई अनेको मुसीबतें टलती है, भय दूर भागते है, उपसर्गो का निवारण होता है, विविध प्रकार की व्याधिया नष्ट हो जाती है, धन-धान्यादि सपत्ति-सौभाग्य की वृद्धि होती है, हर काम मे यश मिलता है, राजा-प्रजा मे लोकप्रिय होता है, इत्यादि।

साराश यह है कि भक्तामरस्तोत्र के नित्य नियमित पाठ करने से मुक्ति और भुक्ति दोनो प्रकार के सुख मिलते है अतएव विज्ञजनो को इस ओर विशेष लक्ष्य देने की जरूरत है। कितने ही व्यक्ति यह स्तोत्र वाच कर, पढकर उसका पाठ करते हैं, परन्तु कठस्थ श्लोको के पाठ करते समय जो भावोल्लास जागता है और आनन्द आता है वह पढकर पाठ करने मे नही आता इसलिए इस स्तोत्र को कठस्थ करने की तरफ विशेष लक्ष्य देना चाहिये।

श्री मानतुगाचार्य जी ने "धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्र" इन शब्दो मे उसको कठस्थ करने की सूचना दी है और इस प्रकार उसका पाठ करते ही लक्ष्मी विवश होकर उसके समीप आती है ऐसा अन्तिम श्लोक मे बताया गया है।

विशेषतया इस अनुपम स्तोत्र का अर्थ जानने से भाव-वृद्धि और भाव-विशुद्धि मे बहुत अधिक सहायता मिलती है अत प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रथम खण्ड बहुत ही उपयोगी है। उसका स्थिर चित्त से वाचन-मनन करना हम सबके हित में उपादेय है।

इस स्तोत्र के नित्यपाठ को कब प्रारभ करना चाहिये इसके उत्तर मे विज्ञ पुरुषो ने कहा है कि—

"सत्रारम्भस्य चैत्रस्य, बहु दुखस्य दायक" तथा "ज्येष्ठे च मरण ध्रुवम" एव "आषाढे कलहश्चैव" अर्थात् चैत्र, जेष्ठ तथा आसाढ मास मे इसका प्रारभ न करे शेष महिनो मे इसको प्रारभ करना चाहिये। उसका फल निम्न प्रकार वर्णित किया गया है—

कार्तिक	स्वर्ण-लाभ	मगसिर	महोदय
पौष	धन-लाभ	माघ	मेधवृद्धि
फाल्गुन	धान्य-लाभ	वैशाख	रत्नलाभ
श्रावण	पूर्णार्थ-प्राप्ति	भाद्रपद	सुखवृद्धि

आसोज मास मे—पुत्र धन लाभ

इस शास्त्र में शुक्ल पक्ष और पूर्ण तिथि को पाठ प्रारम्भ करने का निर्देश किया गया है अर्थात् सुदी ५, १०, १५, के दिन प्रारम्भ करना चाहिये। नन्दा तथा जया तिथियों को भी योग्य गिना गया है अतः १, ३, ६, ८, ११, और १३ के दिन भी इसका पाठ प्रारम्भ कर सकते हैं। यह पाठ दिन में बारह बजे के पूर्व कर लेना चाहिये। सूर्योदय से पूर्व पाठ किया जावे तो वह सर्वोत्तम है। पाठ करते समय पूर्व या उत्तराभिमुख पद्मासन लगाकर बैठना चाहिये सामने भगवान ऋषभदेव की मूर्ति या फोटो ऊँचे स्थान पर विराजमान कर लेना चाहिये। भक्तामर का पाठ एकाग्रचित्त से करना चाहिये।

●●●

अखण्ड-पाठ-विधि

अकस्मात् महान् उपद्रवो के प्रसग मे जैन शान्ति, तुष्टि-पुष्टि के लिए इस महाप्रभावक स्तोत्र का अखण्ड पाठ किया जाता है, तदनुसार आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि परमात्मा के पवित्र अनन्त गुणो का सतत् चिन्ता-मनन तथा स्तवन कर उन्हे आत्मा मे व्यक्त और विकसित करने का प्रयास किया जावे इसी आन्तरिक शुद्ध भावना से भक्तामर स्तवन द्वारा परमात्मा की आराधना से आत्मविकास की परम्परा—जैन सम्प्रदाय में शताब्दियों से योजनाबद्ध तरीके से प्रचलित है।

जगद्धितैषी वीतराग सर्वज्ञ जिनवरेन्द्र के समक्ष स्तोत्रराज भक्तामर के "अखण्ड पाठ" का क्रम या विधि-विधान निम्न प्रकार है—

पाठ प्रारम्भ करने के एक दिन पूर्व एक बडे चौकोर तख्त पर पाच प्रकार के रगो से रगे हुए तन्दुलो से "भक्तामर-मण्डल" (माडना) बनाया जाय।

दूसरे दिन प्रातः काल स्नान करके धुले हुए धवल वस्त्र धारण कर पूजन सामग्री तैयार कर मडल के ऊपर मध्य मे उत्तर या पूर्वाभिमुख उच्चासन पर सुन्दर सिंहासन मे श्री १००८ श्री आदिनाथ भगवान की दो मनोज्ञ मूर्तिया तथा सामने दूसरे सिंहासन पर सिद्धचक्र यन्त्र स्थापित करना चाहिये, चारो

कोणो मे श्रीफल युक्त चार कलश रख कर मडल की शोभा हेतु अष्ट मगल-द्रव्य, तीनछत्र और अष्टप्रातिहार्य यथास्थान स्थापित करना चाहिये। मडल के ऊपर चन्दोवा लगाकर चमर भी लटका देवें।

सिंहासन से कुछ नीचे एक छोटी चौकी पर श्रीजी के बाई ओर एक अखण्ड दीपक जो (निर्विघ्न कार्य समाप्ति पर्यन्त प्रज्ज्वलित रहे) रखा जावे। विविध जय घोषो के पश्चात्" भक्तामर महामण्डल विधान" की जय बोलें। मगलाचरण तथा मगलाष्टक के पश्चात मे हर्ष विभोर हो चारो ओर पुष्प वर्षा करें। इसके बाद भावशुद्धि, रक्षासूत्रबन्धन, तिलककरण, रक्षाविधान, दिग्बधन कर भव्य मगल-कलश की स्थापना करना चाहिये। कलश मे हल्दी सुपारी रजत स्वर्णादिक डाल कर ऊपर सीधा श्रीफल रखकर पीतवस्त्र और पचवर्ण सूत्र से उसे बाधना चाहिये। उसमें प्रासुक जल भी भरकर लवगचूर्ण डाल देना चाहिये। मगलकलश श्रीजी की बाई ओर स्थापित करना चाहिये।

विधि पूर्वक जलधारा शान्ति-धारा करके २४, ४८, या ७२ घन्टे तक अखण्डपाठ करने का सकल्प कर जयध्वनि पूवक श्री भक्तामरस्तोत्र पाठ का शुभारम्भ करना चाहिये। यह अखण्डपाठ प्रतिमा के सामने बैठकर समान स्वर मे एक स्थल पर अनेक व्यक्ति सकल्पित समय तक करें। यदि बीच मे पाठकर्ता बदले जावें तो जब तक नवीन पाठकर्त्ता पाठ प्रारभ न करदें तब तक पूर्व पाठकर्त्ता अपना स्थान नही छोडे।

सकल्पित समय पूर्ण होने पर मगलाष्टक तथा शान्तिपाठ पढ कर चौकी पाटे उठाकर उचित स्थान पर टेबिल जमाकर पुन आदीश्वर भगवान् का अभिषेक एव यन्त्र पर शान्तिधारा की जावे। उपरान्त—

विधिपूर्वक नित्यपूजा कर भक्तामर महामण्डल पूजा-विधान किया जावे। पूजा समाप्ति पर शान्ति कलशाभिषेक (पुण्याहवाचन) शान्ति-विसर्जन आरती भक्तामर महिमा परिक्रमादि यथाविधि किये जावें। यदि पाठ के साथ जाप्य भी किया गया हो तो विधि पूर्वक हवन भी करना चाहिये।

●●●

भक्तामर के प्रत्येक पद का विशेष प्रभाव

भक्तामर स्तोत्र का प्रत्येक पद्य प्रभावशाली है। जो आराधक उसकी विशिष्ट रीति से साधना करते हैं तो वह अपना प्रभाव अवश्य दिखलाता है।

जिज्ञासुओ को इस वस्तु की प्रतीति कराने के लिये पूर्व महर्षियो ने अधिकाश पद्यो की महिमा दर्शक कथाओं का सकलन किया है और वह हमने प्रस्तुत ग्रन्थ मे भक्तामर कथालोक के नाम से प्रकट किया है।

वर्तमान समय मे भी कितने ही पडितो—मत्र विशारदों ने अमुक पद्य तथा उसकी ऋद्धि-मत्र का सुनिश्चित सख्या मे शुद्ध परिणामो से स्मरण करके अमुक व्यक्ति पर प्रयोग किया तो वे भूत-प्रेत व्यन्तरादिक के कष्टो से मुक्त होगये, रोगो से छुटकारा पागये और उन्हें इच्छित फल की प्राप्ति सुलभ होगई। हम स्वय एक ऐसे व्यक्ति से परिचित हैं जिन्हे अमुक अपराध मे कारावास मे जाना पडता किन्तु भक्तामर की आराधना से वह सजा से वहाल होगये।

तात्पर्य यह है कि भक्तामर के प्रत्येक पद्य मे अद्भुत शक्ति विद्यमान है। जिसके वल पर वह आपदाओ से छुटकारा पा लेता है।

जो व्यक्ति वैंक मे खाता खोलकर रुपया-पैसा जमा करता है, वही व्यक्ति चेक द्वारा पैसा निकाल सकता है। तात्पर्य यह कि जो इस स्तोत्र का नित्य नियमित पाठ करने से आध्यात्मिक अर्थ जमा करता है वही आपत्ति के समय काम आता है और अपने को शोक सताप से मुक्त करता है।

विशेष प्रयोजनो के सम्वन्ध मे जव इस स्तोत्र के एक या उससे अधिक पद्यों का स्मरण करना हो तव वह पद्य या पद्यो की एक पूरी माला सूर्योदय के पहिले फेर लेना चाहिये। ऐसे समय स्नान करने का योग न हो तो हाथ पैर मुँह धोकर शुद्ध वस्त्र पहिन कर भी किया जा सकता है। इन पद्यो के साथ तत्सम्वन्धी मत्रो का जाप करने से उनका फल शीघ्र और तत्काल सामने दृष्टिगोचर होता है।

●●●

मत्र साधक की अर्हताएँ

कार्य सिद्धि या अन्यान्य उपायों के लिए मत्र साधना या मत्राराधना भी एक उपाय है, जिसके द्वारा देवी_देवताओ को वश मे कर सकते है। जो कार्य

अशक्य एवं असम्भव हो उनकी भी सिद्धि इनके द्वारा की जा सकती है। मंत्र साधना द्वारा आराधक अपने मन, वचन, काय की शक्ति का विकास कर सकता है। और इस प्रकार महत्वपूर्ण व्यक्तित्व अर्जित किया जा सकता है। परन्तु एक बात निश्चित है कि जब शुभ कर्मों का उदय हो तब मंत्र तंत्र यंत्र लाभदायक सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत अशुभ कर्मोदय के समय उनका विशिष्ट फल नहीं मिलता। अतएव मंत्र साधकों को दान, दया, परोपकार सदाचार आदि शुभ कर्मों द्वारा शुभ कर्मों का संचय करते रहना चाहिये।

आराधक का अभीष्ट तो यह होना चाहिये कि सांसारिक विषय वासनाओं को छोड़ने तथा कर्मबन्धन से मुक्त होने के लिये मंत्राराधन करे परन्तु यदि इस भूमिका को प्राप्त न कर सके और मात्र सांसारिक मुसीबतों के छुटकारे के लिये—इष्ट मनोरथ सिद्धि के लिये ही मंत्राराधन का आश्रय ले तो उसे इतना लक्ष्य अपने सामने अवश्य रखना चाहिये कि हमारे इस कृत्य से किसी के प्राणों का हनन न हो, कोई दुखी न हो। मंत्र साधकों को अपने हित के लिये मुख्य रूप से शान्ति, तुष्टि, पुष्टि के लिए इनका आश्रय लेना चाहिये। और अत्यधिक आवश्यकता हो तो

वश्यकर्म—दूसरों को वश में करने की क्रिया।

विद्वेषणकर्म—दो मित्रों के मध्य मैत्री भंग हो जाय और उनका संगठन टूट जाय ऐसी क्रिया।

स्तम्भनकर्म—आक्रमणकारी मनुष्य पशु वगैरह को रोक देने की क्रिया का आश्रय लेना चाहिये किन्तु —

उच्चाटनकर्म—स्थान धन्धा आदि से भ्रष्ट करने रूप क्रिया।

मारणकर्म—प्राण हनन रूप क्रिया, जैसे उग्र कर्म का आश्रय कदापि नहीं लेना चाहिये। क्योंकि ऐसे कृत्य करने से मंत्र साधक को भविष्य में बहुत दु ख सहन करने पड़ते हैं। और कितने ही बार ऐसे अधम प्रयोग करते समय यदि साधक से कोई भूल होजावे तो उसे तत्काल बहुत बड़ा दंड प्राप्त होता है।

यह बात सही है कि मंत्र शास्त्र में उच्चाटन मारण आदि प्रयोग बताये हैं परन्तु उसका प्रयोग देश, समाज, धर्म की रक्षा के प्रसंग में आ पड़ी मुसीबत से छूटने के लिये है। निजी स्वार्थ साधन के लिये नहीं।

मंत्र सिद्ध करने का मूल उपाय श्रद्धा है। जो साधक मंत्र देवता, मंत्र तथा मंत्र दाता गुरु के प्रति पूर्ण आस्थावान् होता है उसीकी मंत्र-साधना सफल होती है। जो डगमगाते हृदय से अथवा शंकाशील मन से मंत्र-साधना प्रारंभ

करते हैं उनको कभी भी सिद्धि नही होती। मन्त्र साधना को सफल बनाने के लिये बाह्य तथा अभ्यन्तर शुद्धि की परम आवश्यकता होती है। बाह्य शुद्धि अर्थात् स्नानादि और अभ्यन्तर पवित्रता काम क्रोधादि मलिन विचारो के परित्याग से आती है। इस प्रकार की पवित्रता प्राप्त करने के लिए खान-पान तथा दिनचर्या मे जितना अधिक बन सके उतनी शुद्धि अवश्य करनी चाहिये। ऐसे व्यक्ति ही मन्त्र-साधना मे सफलीभूत होते है। मन्त्र साधना के लिये यह और भी अधिक परमावश्यक है कि किसी मन्त्र विशारद सद्‌गुरु की देखरेख में यह कार्य आरम्भ करना चाहिये—क्योंकि मन्त्र सिद्ध करना कोई मामूली कार्य नही है। मन्त्र सिद्ध करते समय कई भयप्रद दृश्य उपस्थित होते हैं। यदि उस समय साधक डर गया तो स्थिति भयकर रूप धारण कर लेती है—डरपोक व्यक्ति को कदापि मन्त्र-साधन का प्रयास नही करना चाहिये। जिस प्रकार सिंहनी का दूध कनक-पात्र में ही ठहर सकता है उसी प्रकार निर्भय हिम्मत वाले मनुष्य ही मन्त्र साधना करके सफलता को पा सकते हैं।

मन्त्र साधना एक विज्ञान है। अस्तु मन्त्र साधक को मन्त्र साधने के पूर्व तत्सम्बधी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेना चाहिये। ताकि वह अपने कार्य मे सफल हो सके।

दीपनादि-प्रकार-यन्त्र

कार्य-नाम	वशीकरण	स्तम्भन	आकर्षण	शान्तिक	पौष्टिक	मारण	विद्वेषण	उच्चाटन	सिद्धि
समय	पूर्वाह्ण	पूर्वाह्ण	पूर्वाह्ण	अर्धरात्रि	प्रभात	सायकाल	मध्याह्ण	अपराह्ण	
ऋतु	वसन्त	वसन्त	वसन्त	हेमन्त	शिशिर	शरद	ग्रीष्म	वर्षा	
हस्त	बामहस्त	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	
अंगुलि	अनामिका	तर्जनी	कनिष्ठा	मध्यमा	मध्यमा	तर्जनी	तर्जनी	तर्जनी	
मुद्रा	सरोजमुद्रा	शखमुद्रा	अकुशमुद्रा	ज्ञानमुद्रा	ज्ञानमुद्रा	वज्रासन	प्रवाल	प्रवाल	
आसन	स्वस्तिकासन	वज्रासन	दडासन	पद्मासन	पद्मासन	मुद्रासन	कुक्कुटासन	कुक्कुटासन	
ध्यान-वर्ण	रक्त	पीत	अरुण	चन्द्रकान्त	चन्द्रकान्त	कृष्ण	धूम्र	धूम्र	
तत्व-ध्यान	जल	पृथ्वी	अग्नि	जल	पृथ्वी	व्योम	वायु	वायु	
माला	प्रवाल	सुवर्ण	प्रवाल	स्फटिक	मुक्तामणि	पुत्रजीवनी	पुत्रजीवनी	पुत्रजीवनी	
पल्लव	वषट्	घे घे	वौषट्	स्वाहा	स्वाहा	घे घे	हु	फट्	
मुख	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	नैऋत्य	ईशान	आग्नेय	वायव्य	

स्वाहा" "ॐ नमो भगवते परमतत्त्वार्थ भावकार्यसिद्धि ह्रा ह्रीं ह्रूं ह्र असरूपाय (अस्वरूपाय ?) नम ।"

यन्त्र—वलयाकारमध्ये श्रींकारोपरि श्रींकार लिखित्वा तेषामुपरि चतुर्दश क्लींकारान् वेष्टयेत् । अनन्तर वलय कृत्वा ऋद्धिमन्त्रे स्थापयेत् पश्चात् वर्गाकारे चतुर्मुदिक्षु "ॐ नमो भगवते परमतत्त्वार्थ भावकार्यसिद्धि ह्रा ह्रीं ह्रूं ह्र असरूपाय (अस्वरूपाय ?) नम इति मन्त्रेण विलिख्य यन्त्र परिपूरयेत् ।

विधि—पद्मबीज (कमल गट्टा) की माला से ऋद्धि और मन्त्र का ७ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार स्मरण करना चाहिये । होम के लिए सुगन्धित दशागधूप हो और चढाने के लिए खिले हुए गुलाब के फूल ।

गुण—अजुलि भर जल को उक्त मन्त्र से मन्त्रित कर २१ दिन तक मुख पर छीटें देने से सब लोग प्रसन्न होते हैं । यन्त्र को पास मे रखने तथा ३रा काव्य, ऋद्धि मन्त्र स्मरण करने से शत्रु की नजर बन्द हो जाती है । दृष्टि दोष भी दूर होता है ।

◇ इति तृतीय काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ४—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि-जिणाण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जल-यात्रा जलदेवताभ्यो नम स्वाहा ।

यन्त्र—प्रथम वर्गाकृतिमध्ये क्लींकारोपरि क्लींकार स्थापयेत् । तस्योपरि चतुर्सुदिक्षु चतुर्विंशति ग्लो(ग्लौं ?)कारान् स्थापयेत् । तेषामुपरि ऋद्धिमन्त्रे लिखेत् । तस्योपरि परित अष्टाविंशति सौंकारैं सह यन्त्राकृतिं पूरयेत् ।

विधि—स्नान करके स्वच्छ सफेद वस्त्र पहिन कर यन्त्र स्थापित करे तथा यन्त्र की पूजा करे पश्चात् स्फटिक मणि की माला द्वारा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि तथा मन्त्र का जाप जपते हुए हर रोज १०८ सफेद फूल चढाना चाहिये, दिन मे एक वार भोजन और रात्रि मे पृथ्वी पर शयन करना चाहिये ।

गुण—यन्त्र को पास मे रख कर ४था काव्य ऋद्धि तथा मन्त्र द्वारा २१ ककरियो को लेकर प्रत्येक ककडी ७ वार मन्त्र कर जल मे डालने से मछलिया तथा जलजन्तु जाल मे नही फँसते । मन्त्र-आराधक जल मे नही डूवता और तेज वहाव वाले पानी मे वच निकलता है ।

◇ इति चतुर्थ काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ५—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणतोहि-जिणाणं) झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)"

मत्र—"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं (क्रों ?) सर्व सकट निवारणेभ्य सुपार्श्व यक्षेभ्यो नमो नम स्वाहा।"

यत्र—प्रथमे वर्गाकारे क्लौंकारोपरि क्लौंकार धारयेत्। द्वितीये च परित पचविंशति श्रौंकारान् धारयेत्। तेषामुपरि ऋद्धिमत्रे रक्षेत्। अनन्तर अन्तिमे वर्गे परित पचविंशति झ्रौंकारान् विलिख्य यत्राकृति सपादयेत्।

विधि—पवित्र होकर पीले वस्त्र पहिने, यत्र स्थापित कर पूजा करे पश्चात् पीले आसन पर बैठ कर पीले रग के पुष्पो द्वारा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि तथा मत्र का शुद्ध भाव से जाप जपे और हर बार कुदरू की धूप खेवे।

गुण—यत्र को पास मे रखने और काव्य ऋद्धि मत्र द्वारा मत्रित जल को कुएँ मे डालने से लाल रग के कीडे पैदा नहीं होते। जिनकी आंखो मे दर्द हो, भयानक पीडा हो उन्हें सारे दिन भूखा रख कर सायंकाल मत्र द्वारा २१ बार मत्रित कर बतासो को जल मे घोल कर पिलाने और आंखो पर छीटने से दुख दर्द दूर होता है।

○ इति पचम काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ६—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मत्र—ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रू श्र ह स य य (य य ?) य (य ?) ठ ठ सरस्वती भगवती विद्याप्रसाद कुरु कुरु स्वाहा।

यत्र—प्रथम वर्गाकृति मध्ये ल्वूंकारोपरि ल्वूंस्थापयेत्। पश्चात् द्वितीये वर्गे परित द्वात्रिंशत् औंकारान् लिखेत्। पुनश्च तृतीये वर्गे परित ऋद्धिमत्रे लेखितव्ये। तत चतुर्थे वर्गे परित पचविंशति ह्रौंकारै सयुक्ता यत्राकृति पूरणीया।

विधि—पवित्र होकर लाल वस्त्र पहिन, यत्र स्थापित कर पूजा करे पश्चात् लाल आसन पर बैठ कर २१ दिन तक प्रतिदिन ऋद्धि तथा मत्र का १००० बार जाप करे। हर बार कुदरू की धूप क्षेपण करे। दिन मे एक बार भोजन और रात मे पृथ्वी पर शयन करना चाहिये।

गुण—६वां काव्य तथा उक्त मत्र को प्रतिदिन स्मरण करने से तथा यत्र

को पास मे रखने से स्मरण-शक्ति बढती है, विद्या बहुत शीघ्र आती है तथा बिछुडे हुए व्यक्ति से मिलाप होता है।

◇ इति षष्टम् काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ७—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीज (बीअ ?) वुद्धीण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मत्र—"ॐ ह्रीं (श्रीं ?) ह स (सौं ?) श्रा श्रीं क्रौं (क्रो ?) क्लीं सर्व दुरित सकटक्षुद्रोपद्रवकष्टनिवारण कुरु कुरु स्वाहा।" "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नम।"

यत्र—षट्कोणाकृतियत्रमध्ये "क्ल्व्यूं" लिखेत्। यत्रस्य बाह्यकोणे क्रमश "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नम" इति षडाक्षरान् स्थापयेन्। पुन वर्गाकृति कृत्वा ऋद्धि मत्रे लिखेत्। पश्चात् षड्विशति नौंकारान् विलिख्य यत्र परिपूरयेत्।

विधि—पवित्र होकर हरे रग के वस्त्र धारण कर हरे रग की आसन पर बैठ कर हरी माला से २१ दिन तक प्रतिदिन १०८ बार सातवा काव्य, ऋद्धि तथा मत्र की जाप जपते हुए लोभान की धूप क्षेपण करना चाहिये।

गुण—भूर्ज पत्र पर हरे रग से लिखा यत्र पास मे रखने से सप विप दूर होता है। दूसरे विष भी प्रभावशील नही होते। ऋद्धि-मत्र द्वारा १०८ वार ककरी मत्रित कर सर्प के सिर पर मारने से नाग कीलित हो जाता है।

◇ इति सप्तम् काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ८—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहताण (ॐ ह्रीं अर्हं ?) णमो पादाणु सारिण (सारीण ?) (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मत्र—"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रू ह्र अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। पुन ॐ ह्रीं लक्ष्मणरामचन्द्र देव्यै (नमो ?) नम स्वाहा।"

यत्र—अष्टदलकमलाकृति कृत्वा कर्णिकामध्ये खम्ल्व्यूं स्थापयेत्। दले-दले क्रमश "ॐ ह्रीं श्रीं स वँ सिद्धेभ्य" इति बीजाक्षराणि लेखितव्यानि। कमल परित वर्ग कृत्वा ऋद्धिमत्रे लिखेत्। तस्योपरि परित एकोनविंशति यकारान् लिखित्वा यत्र पूर्णं कुर्यात्।

विधि—अरिष्ट (अरीठा) के बीज की माला से २९ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि तथा मत्र का जाप जपते हुए घृत मिश्रित गुग्गल की धूप क्षेपण करना चाहिये। नमक की डली से होम अवश्य करे।

गुण—यत्र को पास मे रखने से तथा आठवा काव्य ऋद्धि मत्र के आराधन

से नव प्रकार के अरिष्ट (आपत्ति-विपत्ति-पीडा आदि) दूर होते है। नमक के ७ टुकडे लेकर एक-एक को १०८ बार नव मन्त्र पीडित अंग को झाडने से पीडा दूर होता है।

○ इति अष्टम् काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ९—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताण णमो संभिण्ण-सोदराण (सोयाण ?) (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।" "ह्रां ह्रीं हू ह्र फट् स्वाहा।" "ॐ ऋद्धये नम ।"

मंत्र—'ॐ ह्रीं श्रीं क्रों (क्रो ?) क्ष्यौं (क्लीं ?) र र ह्र ह्र नम स्वाहा।" "ॐ नमो भगवते जय यक्षाय ह्रीं हू नम स्वाहा।"

यंत्र—षड्दलकमल रचयित्वा कर्णिका मध्ये म्ल्व्यूं स्थापयेत। ॐ ऋद्धये नम इति षडाक्षरं प्रतिदल पूरयेत्। तस्योपरि ऋद्धिमंत्रं वेष्टयेत्। तत पचविंशति ह्रींकारान् परित, विलिख्य 'ॐ नमो भगवते जय यक्षाय ह्रीं हू नम स्वाहा" इति मत्रेण यत्रमल्य परिवेष्टयेत्।

विधि—नौवाँ काव्य, ऋद्धि और मन्त्र का प्रतिदिन १०८ बार जाप जपना चाहिये।

गुण—इस काव्य, ऋद्धि और मंत्र से बार-बार स्मरण करने तथा यंत्र को पास मे रखने से मार्ग मे चोर डाकुओं का भय नहीं रहता। चोर-चोरी नही कर सकता। ४ कंकडियो को लेकर प्रत्येक ककरी को १०८ बार मंत्र कर चारो दिशाओं मे फेंकने से मार्ग कीलित हो जाता है।

○ इति नवम् काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य १०—ऋद्धि- "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सय-बुद्धीण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)

मंत्र—'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्र श्रा श्रीं श्रु श्र सिद्ध-बुद्ध कृतार्थो भय-भव वषट् सपूर्णं स्वाहा।"

(जन्मसख्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्ष-धृतावादिनोर्यानाक्षांता भावे प्रत्यक्षा बुद्धात्मनो।)

"ॐ ह्रीं अर्हं णमो शत्रुविनाशनाय जय-पराजय उपसर्गहराय नम ।"

यंत्र—दशदलकमलाकृति कृत्वा तन्मध्ये "ह्र म्ल्व्यूं" स्थापयेत्। प्रतिदल "ॐ ह्रीं विक्रमाधिपतये नम" इति मंत्रस्याक्षरान् लिखेत्। पश्चात् वलय कृत्वा ऋद्धिमंत्रं स्थापयेत्। तस्योपरि परित सप्तविंशति ह्रौंकारान् लिखित्वा

अवस्तन्मत्रेण परिधि कुर्यात् । (मत्रम्)—ॐ ह्रीं अर्हं णमो शत्रुविनाशनाय जय-पराजय उपसर्गहराय नम ।

विधि—पीले रग के वस्त्र पहिन कर, पीले रग की माला से ७ या १० दिन तक प्रतिदिन १०८ वार दशवा काव्य ऋद्धि तथा मत्र का आराधन करते हुए कुंदरू की धूप क्षेपण करना चाहिये ।

गुण—यत्र को पास मे रखने से कुत्ते के काटने का विप उतर जाता है। नमक की ७ डली नेकर प्रत्येक को १०८ वार मत्र कर खाने से कुत्ते का विप असर नही करता ।

◇ इति दशम् काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ११—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेय-वुद्धीण (वुद्धाण ?) (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मत्र—"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रा श्रीं कुमति-निवारिण्यै महामायायै नम स्वाहा । ॐ नमो भगवते प्रसिद्धरूपाय भक्ति-युक्ताय सा सीं सौं ह्रा ह्रीं ह्रौं क्रौं झ्रौं नम ।"

यत्र—द्वादशदलयुक्तस्य कमलस्य मध्ये "इ्म्ल्व्र्यूं" लिखितव्यम् । दले-दले ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रा भक्ति (स्व ?) रूपाय नम इति मत्रस्याक्षराणि क्रमश पूरितव्यानि । तदनन्तर वलय कृत्वा ऋद्धिमत्रे लिखेत् । पश्चात् परित "ॐ नमो भगवते प्रसिद्धरूपाय भक्तियुक्ताय सा सीं सौं ह्रा ह्रीं ह्रौं क्रौं झ्रौं नम" इत्यनेन मत्रेण आकृति परिपूरयेत् ।

विधि—पवित्र होकर सफेद वस्त्र पहिनकर मदिर मे शुद्ध भावो से पूजा करे । पश्चात् वही एकान्त भाग मे वैठकर या खडे होकर प्रसन्न चित्त से सफेद माला द्वारा या लाल रग की माला से २१ दिन तक प्रतिदिन ११वां काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का १०८ वार आराधन करते हुए कुदरू की धूप क्षेपण करते रहना चाहिये ।

गुण—यत्र को पास मे रखने से जिसे आप पास वुलाना चाहते हो वह आ जाता है । मुट्ठी भर सफेद सरसो को उक्त मत्र से १२००० वार मत्र कर ऊपर उछालकर फेंकने से निश्चय पूर्वक जल वृष्टि होती है ।

◇ इति एकादश काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य १२—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो वोहि (वोहिय ?) वुद्धीण (वुद्धाण ?) (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा) ।"

मंत्र—'ॐ आं आं अं अः सर्वराजा (राज ?) प्रजामोहिनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।" "ॐ नमो भगवते अतुलबलपराक्रमाय आदीश्वर यक्षाधिष्ठाय ह्रां ह्रीं नमः। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं निजधर्मचिताय क्ष्रौं क्रौं र ह्रीं नमः।"

यंत्र—षोडशदलकमलं विरच्य तस्मिन्मध्ये 'ह्म्ल्व्र्यूं' स्थापितव्यम्। प्रत्येक दले ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं निजधर्मचिताय क्ष्रौं क्रौं र ह्रीं नमः इति मंत्रस्याक्षराणि क्रमशः विलिख्य वर्गं रचितव्यः। तस्योपरि परितः ऋद्धिमंत्रं लिखेत्। पुनश्च परितः ॐ ह्रीं श्रीं नमो अनुदिनं मनुज स्यायान समीप्यायजामि श्रुत जलानि स्वरपस्याघेनैकं श्री देवापरपावितानि नादकनिनादेयकं चिज्वालघुमुमन सुप्तस्तान बोधितान बुधावान, इति मंत्र लिख्यताम्। पुनः परितः ॐ नमो भगवते अतुलबल पराक्रमाय आदीश्वर यक्षाधिष्ठाय ह्रां ह्रीं नमः इति मंत्र विलिख्य यंत्राकृति परिपूरयेत्।

विधि—स्नान करके लाल रंग के वस्त्र पहिनकर लाल रंग की माला द्वारा ४२ दिन तक प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि तथा मंत्र का आराधन करते हुए दशांग धूप खेना चाहिये।

गुण—बारहवां काव्य ऋद्धि तथा मंत्र स्मरण करने तथा यंत्र को पास में रखने से और १०८ बार तेल को उक्त मंत्र द्वारा मंत्र कर हाथी को पिलाने से उनका मद उतर जाता है। बार-बार मंत्र स्मरण से रूठकर पीहर गई पत्नी वापिस लौट आती है।

० इति द्वादश काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ०

काव्य १३—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीण (उजुमदीण ?) (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं हं सः ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहिनी सर्व (जन) वश्यं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ भा (भां ?) ना (भीं ?) अष्टसिद्धि क्रौं ह्रीं ह्म्ल्व्र्यूं युक्ताय नमः। ॐ नमो भगवते सौभाग्य रूपाय ह्रीं नमः।

यंत्र—षोडशदलकमलं कृत्वा मध्ये 'छ्म्ल्व्र्यूं' विलिख्य प्रतिदलं क्रमशः 'ॐ नमो भगवते सौभाग्यरूपाय ह्रीं नमः' एतानि अक्षराणि पूरितव्यानि। अनन्तर वलयं कृत्वा ऋद्धि मंत्राभ्यां वेष्टयेत्। पुनश्च वलयं कृत्वा "ॐ भा (भां ?) ना (भीं ?) अष्टसिद्धि क्रौं ह्रीं 'ह्म्ल्व्र्यूं' युक्ताय नमः" इत्यनेन मंत्रेण यंत्रस्याकृति परिपूर्णां कुर्यात्।

विधि—पवित्र होकर पीले वस्त्र पहिनकर पीली माला द्वारा ७ दिन तक

प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि तथा मंत्र का स्मरण करते हुए कुंदरु की धूप क्षेपण करे। दिन में एक बार भोजन व रात में पृथ्वी पर शयन करना चाहिये।

गुण—१३वाँ काव्य ऋद्धि तथा मंत्र के स्मरण से एवं यंत्र पास रखने और ७ ककरी लेकर हरेक को १०८ बार मंत्र कर चारो दिशाओं में फेंकने से चोर चोरी नहीं कर पाते तथा मार्ग में किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता।

○ इति त्रयोदश काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य १४—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीण (मईण ?) (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—ॐ (ह्रीं ?) नमो भगवती गुणवती महामानसी स्वाहा।

यंत्र—मुख्य तोरणद्वारस्य रचना क्रियताम्। शीर्षे च 'झ्म्ल्व्र्यूं' स्थापयेत्। तस्योपरि "ॐ ह्रीं अर्हं नमो महामानसी स्वाहा" इति मंत्र लेखनीयम्। पुनश्च सप्तविंशतिकोष्टयुक्त कपाट रचयेत्। प्रथमेषु पंचकोष्टकेषु पंच ओंकारान्, द्वितीयेषु पंच ह्रींकारान्, तृतीयेषु सप्त रकारान् चतुर्थेषु पंच श्रींकारान्, पंचमेषु कोष्टकेषु पंच क्लौंकारान् लिखेत्। पुनश्च परितः ऋद्धि मंत्राभ्यां द्वारं परिवेष्टतव्यम्।

विधि—पवित्र होकर सफेद वस्त्र धारण कर स्फटिक मणि की माला द्वारा प्रतिदिन तीनों काल १०८ बार चौदहवाँ काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र का आराधन करे, दीपक जलावे, धूप प्रक्षेपण करे। गुग्गुल, कस्तूरी, केशर, कपूर, शिलारस, रत्नाञ्जलि, अगर-तगर, धूप, घी आदि से प्रतिदिन होम करना चाहिये।

गुण—यंत्र पास रखने से तथा ७ ककरी लेकर प्रत्येक को २१ बार मंत्र कर चारो ओर फेंकने से आधि-व्याधि और शत्रु का भय नाश होता है। लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तथा बुद्धि का विकास होता है। सरस्वती देवी प्रसन्न होती है।

○ इति चतुर्दश काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य १५—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—"ॐ नमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्र-श्रृंखला मानसी महामानसी स्वाहा।" "ॐ नमो अचिन्त्यबल-पराक्रमाय सर्वार्थकामरूपाय ह्रां ह्रीं क्रों (क्रों ?) श्रीं नमः।"

यंत्र—दशदलसयुक्तमरविन्द विरच्य तस्याङ्के 'झ्म्ल्व्र्यूं' स्थापयेत्। दले-

दले प्रथम "ॐ अप्रतिचक्राय ह्रीं नम" लिखेत्। अनन्तर परिधि कृत्वा तदु-
परि ऋद्धिमत्रं लिखेत्। पुनश्च वलय कृत्वा "ॐ नमो अचिन्त्यबल-पराक्रमाय
सर्वार्थ कामरूपाय ह्रां ह्रीं श्री (क्रो ?) श्रीं नम" इत्यनेन मत्रेण यत्रस्याकृति
परिपूर्णा कुर्यात्।

विधि—स्नान करके लाल रंग के वस्त्र धारण कर लाल आसन पर बैठकर
मूंगा की लाल माला द्वारा १४ दिन तक प्रतिदिन १५वां काव्य, ऋद्धि तथा
मत्र का स्मरण करते हुए दशांग धूप क्षेपण करना चाहिये तथा प्रतिदिन एका-
शन करना चाहिये।

गुण—उपरोक्त ऋद्धि मत्र द्वारा २१ बार तेल मत्र कर मुख पर लगाने
से राज-दरबार में प्रभाव पड़ता है, सम्मान प्राप्त होता है, और लक्ष्मी की
प्राप्ति होती है। इस ऋद्धि मत्र के बारम्बार स्मरण से तथा भुजा पर यत्र
बांधने से वीर्य की रक्षा होती है और स्वप्नदोष कभी नहीं होता।

इति पचदश काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम्

काव्य १६—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीण (झ्रौं झ्रौं नम
स्वाहा ?)।"

मत्र—ॐ नम सु-मगला सुसीमा नामदेवी सर्वसमीहितार्थं वज्रशृंखलां
कुरु कुरु स्वाहा।

यत्र—चतुर्गोलाकारमध्ये 'जूम्ल्व्यू' लिखित्वा वर्गाकृति रचयेत्। पुन परित
क्रमश "ॐ व प ह्रीं" लिखेत्। पश्चात् उत्तरदिशि—"ॐ ह्रीं जयाय नम"
पूर्वदिशि—"ॐ श्रीं विजयाय नम" दक्षिणदिशि—"ॐ क्लीं अपराजिताय
नम" पश्चिमदिशि च "ॐ ब्लौं माणिभद्राय नम" इत्येतानि मत्राणि क्रमश
उपरि लिखित्वा पुनश्च वर्गाकृति कुर्यात् तथा च ऋद्धिमत्रं लिखेत्। अनन्तर
वर्गाकृतिना यत्र पूर्ण कुर्यात्।

विधि—स्नान द्वारा पवित्र होकर ६ दिन तक प्रतिदिन हरे रंग की माला
से १००० बार १६वां काव्य ऋद्धि तथा मत्र स्मरण करते हुए कुन्दरू की धूप
क्षेपण करना चाहिये।

गुण—यत्र को पास में रखने से तथा १०८ बार शुद्ध भावो से ऋद्धि मत्र
का स्मरण कर राज दरबार में पहुँचने पर प्रतिपक्षी पराजित होता है और शत्रु
का भय नहीं रहता। पुनश्च इसी ऋद्धि मत्र द्वारा जल मत्र कर छीटने से हर
प्रकार की अग्नि शान्त हो जाती है।

इति षोडश काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम्

काव्य १७—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठाग महानिमित्त-कुशलाण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मत्र —"ॐ णमो णमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्र विघट्ठे क्षुद्रपीडा जठरपीडा भञ्जय भञ्जय सर्वपीडा सर्वरोग निवारण कुरु कुरु स्वाहा ।" "ॐ नमो अजित शत्रु पराजय कुरु कुरु स्वाहा ।"

यत्र—प्रथम वर्गाकृति रचयेत् । सम्पूर्णो वर्ग षोडशवर्गेषु विभक्तव्य । प्रत्येककोष्ठमध्ये क्रमश "ॐ नमो अजित शत्रु पराजय कुरु कुरु स्वाहा" इति मत्रस्याक्षराणि विलिख्य वर्गोपरि परित ऋद्धिमत्रे लिखेत् आकृति च पूर्णां कुर्यात् ।

विधि—पवित्र भावो से ७ दिन तक प्रतिदिन सफेद माला द्वारा १००० वार १७वाँ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र स्मरण करते हुए चदन की धूप क्षेपण करना चाहिये ।

गुण—यत्र को बाँधने तथा अछूता शुद्ध जल ऋद्धि मत्र द्वारा २१ बार मत्र कर पिलाने से उदर की असाध्य पीडा वायुगोला, वायुशूल आदि रोग दूर होते हैं ।

◇ इति सप्तदश काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य १८—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयणयट्ठि (विउव्वणइट्ठि ?) पत्ताण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मत्र—"ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा । ॐ नमो शास्त्रज्ञानबोधनाय परमर्द्धि प्राप्तिजयकराय ह्रा ह्रीं क्रौं (क्रो ?) श्रीं नम । ॐ नमो भगवते शत्रुसैन्यनिवारणाय य य य क्षुर विध्वसनाय नम क्लीं ह्रीं नम ।"

यत्र—कलशाकार चित्र विरच्य तन्मध्ये ताराकृतिवत्षट्कोणान् निर्माययेत् । षटकोणमध्ये ॐ लिखितव्य । अनन्तर कोणे कोणे 'ह्रीं परमर्द्धये नम' इति अक्षराणि अकतव्यानि । कलशोपरि परित ऋद्धिमत्रे लिखेत् । उपरि च वलय कृत्वा ॐ नमो शास्त्र ज्ञान बोधनाय परमर्द्धि प्राप्तिजय कराय ह्रा ह्रीं क्रौं श्रीं नम । ॐ नमो भगवते शत्रुसैन्य निवारणाय य य य क्षुर विध्वसनाय नम क्लीं ह्रीं नम इति मत्रेण वेष्टयेत् ।

विधि—पवित्र होकर लाल रग की माला द्वारा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार १८वाँ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र स्मरण करते हुए दशाग धूप क्षेपण करना चाहिये । दिन मे एक बार शुद्ध भोजन करना चाहिये ।

गुण—यन्त्र को पास मे रखने से तथा १०८ बार ऋद्धि मन्त्र के स्मरण से शत्रु की सेना का स्तम्भन होता है। इस मन्त्र का आराधन करने वाले आराधक के मन मे व्यर्थ के सकल्प विकल्प पैदा नही होते। चिन्ता, कोप, दुर्ध्यान, मोह, मिथ्यात्व नाश होता है तथा धर्मध्यान मे स्थिर चित्त रहता है।

○ इति अष्टादश काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य १९—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराण (ह्रौं ह्रौं नम स्वाहा ?)।"

मन्त्र—"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रू ह्र य (य ?) क्ष (क्ष ?) ह्रीं वषट् नम स्वाहा।"

यन्त्र—धनुराकार यन्त्र रचयित्वा धनु प्रत्यचामध्ये पच ह्रीं समूह लिखेत्। धनुष्कोणे उत्तरस्या दिशि—ह्रकाराष्टौ, पूर्वस्या दिशि—रकाराष्टौ, दक्षिणाया दिशि यकाराष्टौ तथा पश्चिमाया दिशि क्षकाराष्टौ लिखितव्यम्। पुन वर्ग कृत्वा परित ऋद्धिमन्त्रे लिखेत्।

विधि—प्रतिदिन प्रात काल स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करे तथा मन को एकाग्र करके १९वां काव्य, ऋद्धि तथा मन्त्र का १०८ बार स्मरण करना चाहिये।

गुण—यन्त्र को पास मे रखने से आराधक पर प्रयोग किये हुए दूसरे के मन्त्र, विद्या, टोटका, जादू, मूठ आदि का प्रभाव नही पडता और नाही उच्चाटन का भय रहता है। यदि कोई भाग्यहीन पुरुष इस ऋद्धि मन्त्र का सतत स्मरण करे तो उसकी आजीविका सुचारु रूप से चलने लगती है। सभी सुख सुविधाएँ उपलब्ध होने लगती हैं।

○ इति एकोनविंशति काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य २०—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाण (ह्रौं ह्रौं नम स्वाहा ?)।"

मन्त्र—"ॐ श्रां श्रीं श्रू श्र शत्रु-भय-निवारणाय ठ ठ नम स्वाहा। ॐ नमो भगवते पुत्रार्थसौख्य कुरु कुरु स्वाहा, ह्रीं नम।"

यन्त्र—अर्द्धचन्द्राकारवर्ती आकृति रचयित्वा तस्या "ॐ नमो भगवते पुत्राय अर्थसौख्य कुरु कुरु स्वाहा, ह्रीं नम इति मन्त्र लिखितव्यम् अधश्च चतुर्विंशति यकारान् धारयेत्। अनन्तर चापकर्णोपरि ॐ ॐ श्रीं ॐ श्रीं ॐ ॐ इति बीजाक्षराणि स्थापयेत्। पश्चात् परित ऋद्धिमन्त्रे लिखेत्।

विधि—प्रात पवित्र होकर शुद्ध वस्त्र पहिनकर यन्त्र स्थापित कर पूजा करे

पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर नौ वार णमोकार मन्त्र पढ़े तदुपरान्त २०वाँ काव्य, ऋद्धि तथा मन्त्र का १०८ वार स्मरण करते हुए उतने ही सुगंधित सुमन प्रतिदिन चढाना चाहिये ।

गुण—यन्त्र को पास मे रखने मे तथा ऋद्धि मन्त्र का १०८ वार स्मरण करने से सन्तान की उत्पत्ति होती है, लक्ष्मी का लाभ, सौभाग्य की वृद्धि, विजय प्राप्ति तथा बुद्धि का विकास होता है ।

◇ इति विंशति काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य २१—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्ण-समणाण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मन्त्र—"ॐ नम श्रीमणिभद्र जय-विजय अपराजिते सर्वसौभाग्य सर्वसौख्य कुरु कुरु स्वाहा । ॐ नमो भगवते शत्रुभयनिवारणाय नम ।"

यन्त्र—वर्गाकृतिं पोडशोपवर्गेपु विभज्य प्रत्येककोष्ठे "ॐ नमो भगवते शत्रुभयनिवारणाय नम" इति मन्त्रस्याक्षराणि लेख्यानि । तदुपरि परित पच-विंशति क्षकारान् लिखेत् । पुनश्च वर्गं कृत्वा परित ऋद्धिमन्त्रे लिखित्वा यन्त्रा-कृतिं परिपूरयेत् ।

विधि—पवित्र होकर लाल वस्त्र धारण कर लाल माला द्वारा ४२ दिन तक प्रतिदिन १०८ वार २१वाँ काव्य, ऋद्धि तथा मन्त्र का स्मरण करते हुए १०८ पुष्प चढाना चाहिये ।

गुण—यन्त्र पास मे रखने तथा काव्य, ऋद्धि और मन्त्र का स्मरण करते रहने से सर्वजन, स्वजन और परिजन अपने अधीन होते हैं—वशीभूत होते हैं ।

◇ इति एकविंशति काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य २२—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगास-गामिण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मन्त्र—"ॐ नमो श्री वीरेहिं जृम्भय जृम्भय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय अवधारण कुरु कुरु स्वाहा ।"

यन्त्र—षड्कलिकायुक्त प्रसून विरच्य तस्य कर्णिकाया नव यकारान् विलिख्य कलिकासु श्रींकार, ह्लींकार, झ्रौंकार, क्ष्रौंकार, ब्रौंकार क्रमश प्रत्येक नव वार स्थापयेत् । तदुपरि वर्गं कृत्वा ऋद्धिमन्त्रे सस्थाप्य यन्त्राकृति पूरणीया ।

विधि—पवित्र होकर शुद्ध वस्त्र धारण कर यन्त्र स्थापित कर उसकी पूजा करे । मँगल कलश रखे, दीपक जलावे, पश्चात् पूर्वाभिमुख बैठकर प्रतिदिन

१०८ बार २२वाँ काव्य ऋद्धि तथा मंत्र का स्मरण करना चाहिये ।

गुण—यंत्र को गले में बांधने से तथा हल्दी की गांठ को २१ बार ऋद्धि मंत्र द्वारा मंत्र कर चबाने से डाकिनी, शाकिनी, भूत, पिशाच, चुड़ैल आदि की बाधायें दूर होती हैं ।

० इति द्वाविंशति काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ०

काव्य २३—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसी-विसाण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मंत्र—"ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थं मोक्षसौख्य कुरु कुरु स्वाहा । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्व सिद्धाय श्रीं नम ।"

यंत्र—विरच्यमाना वर्गाकृतिः द्वादशोपवर्गेषु विभाज्या । वर्गे वर्गे क्रमश "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वसिद्धाय श्रीं नम" इति मंत्रस्य बीजाक्षराणि लिखि-तव्यानि । तदुपरि वर्गं कृत्वा परित. द्वात्रिंशत् रकारान् लेख्यानि । पुनश्च परित· ऋद्धिमंत्रं विलिख्य यंत्राकृति पूरितव्या ।

विधि—शुभ योग में पवित्र हो सफेद वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर मंगलकलश रखे, दीपक जलावे, तथा यंत्र की पूजा करे पश्चात् सफेद माला द्वारा ४००० बार ऋद्धि मंत्र का आराधन करके मंत्र सिद्ध करना चाहिये ।

गुण—सर्वप्रथम स्वशरीर की रक्षा के लिये १०८ बार २३वां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र स्मरण कर पश्चात् जिसे भूत-प्रेत की बाधा हो उसे यंत्र बांधे तथा मंत्र द्वारा झाड़े तो प्रेत बाधा दूर होती है ।

० इति त्रयोविंशति काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ०

काव्य २४—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठि-विसाण (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?) ।"

मंत्र—"स्थावर जंगम वायकृतिम सकल विष यद्भक्ते अप्रणमिताय ये दृष्टि विषयान् मुनीन्ते वड्ढमाण-स्वामी सर्वहित कुरु कुरु स्वाहा । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्र अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा ।"

यंत्र—चतु कलिकायुक्त प्रसून रचयित्वा कर्णिकाया ॐ इति कलिकासु च क्रमश "ह्रीं क्लीं सौं नम" इति बीजाक्षराणि लेख्यानि । तदुपरि वर्गं कृत्वा परित ऋद्धिमंत्रं स्थापयेत् यंत्राकृति पूरणीया च ।

विधि—पवित्र होकर गेरुवा रंग के वस्त्र पहिने, यंत्र स्थापित कर पूजा

करे, दीपक जलावे, आरती उतारे पश्चात् प्रतिदिन १०८ वार अथवा ७ दिन तक प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मन्त्र का आराधन करना चाहिये।

गुण—२१ वार राख मन्त्र कर दुखते हुए शिर पर लगाने से और यन्त्र को पास मे रखने मे आधाशीशी, सूर्यवात, मस्तक का वेग आदि शिर सवधी सव तरह की पीडायें दूर होती है।

◇ इति चतुर्विशति काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य २५—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्ग-तवाण (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मन्त्र—"ॐ ह्रा ह्रीं ह्रौं ह्र अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐ नमो भगवते जय विजयापराजिते सर्वसौभाग्य सर्वसौख्य कुरु कुरु स्वाहा।"

यन्त्र—षड्कोणाकृति विरच्य प्रत्येककोणे "ॐ नम परम" इति मध्ये कर्णिकाया च 'पदाय' इति शब्द स्थापयेत्। तदुपरि वर्गं कृत्वा अष्टाविंशति ह्र्कारान् लिखेत्। पश्चात् परित ऋद्धिमन्त्रे लिखित्वा यन्त्राकृति पूरणीया।

विधि—स्नान करके लाल रग के वस्त्र पहिनकर यन्त्र स्थापित कर उसकी पूजा करे, आरती उतारे। रात्रि के समय किसी एकान्त स्थान मे निर्भय होकर ४००० वार ऋद्धि मन्त्र का स्मरण कर मन्त्र सिद्ध करना चाहिये।

गुण—२५वां काव्य ऋद्धि तथा मन्त्र के स्मरण एव यन्त्र के पास मे रखने से धीज उतरती है नजर उतरती है। दृष्टि दोप से बचता है, अग्नि का प्रभाव नही पडता तथा मारने के लिए उद्यत शत्रु के हाथ से शस्त्र गिर पडता है, वह वार नही कर पाता।

◈ इति पचविंशति काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ◈

काव्य २६—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो वित्त-सवाण (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मन्त्र—"ॐ नमो ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्लू ह्लू परजन-शान्ति व्यवहारे जय कुरु कुरु स्वाहा।"

यन्त्र—स्वस्तिकाकृति विरच्य पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिक्षु क्रमश मकार, यकार श्रींकार विकार सप्त सप्त सख्याभिः पूरयेत्। तदनन्तर स्वस्तिक वर्गेण वेष्टितव्य उपरि च परित ऋद्धिमन्त्रे विलिख्य यन्त्राकृति पूरितव्या।

विधि—स्नान करके लाल रग के वस्त्र धारण कर उत्तराभि मुख यन्त्र स्थापित करें, आरती उतारें, यन्त्र का पूजन करें पश्चात् अर्द्ध रात्रि से अपराह्न

काल तक १२००० वार ऋद्धि-मत्र की जाप जपकर मत्र सिद्ध करे।

गुण—यत्र को पास मे रखने से तथा ऋद्धि-मत्र द्वारा १०८ वार तेल मत्र कर शिर पर लगाने मे अर्धकपाली (आधे शिर की पीडा) नष्ट होती है। मत्रित तेल की मालिश तथा मत्रित जल को पिलाने से प्रसूता की पीडा दूर होती है। इस मत्र के प्रभाव से प्राणान्तक रोग उपस्थित नहीं हो पाते।

◇ इति षट्विंशति काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य २७—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्त-तवाण (ह्रौं ह्रौं नम स्वाहा ?)।"

मत्र—"ॐ नमो चक्रेश्वरीदेवी चक्रधारिणी चक्रेण-अनुकूलं साधय साधय शत्रून् उन्मूलय उन्मूलय (घे घे ?) स्वाहा। ॐ नमो भगवते सर्वार्थसिद्धाय सुखाय ह्रीं श्रीं नम।"

यत्र—विंशत्युपवर्गेषु विभज्यमाना वर्गाकृति विरचणीया। प्रत्येक वर्गे क्रमश "ॐ नमो, भगवते सर्वार्थ सिद्धाय सुखाय ह्रीं श्रीं नम" इति मत्रस्याक्षराणि लिखितव्यानि। तस्योपरि वर्गं कृत्वा परित विंशति जकारान् लिखेत्। पुन परित ऋद्धिमत्रे न्यस्याप्य यत्राकृति पूज्य।

विधि—पवित्र होकर काले वस्त्र पहिने, रक्त चन्दन से यत्र लिख कर स्थापित करे, यत्र की पूजा करे। पश्चात् २१ दिन तक प्रतिदिन काले रग की माला से १०८ वार २७ वाँ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का जाप करते हुए १०८ पुष्प चढ़ाना चाहिये। विना नमक का एक वार भोजन करना चाहिये। कालीमिर्च की धूप से होम करना आवश्यक है।

गुण—यत्र को पास मे रखने तथा ऋद्धि-मत्र का वार-वार स्मरण करते रहने से शत्रु मत्र आराधना मे कोई वाधा नहीं पहुँचा सकता। वह पराजित हो जाता है।

◇ इति सप्तविंशति काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य २८—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाण (ह्रौं ह्रौं नम स्वाहा ?)।"

मत्र—"ॐ नमो भगवते जय विजय, जृम्भय जृम्भय, मोहय मोहय, सर्व-सिद्धि-(सौभाग्य ?) सम्पत्ति-सौख्य कुरु कुरु स्वाहा।"

यत्र—षड्दलकमल विरच्य कर्णिकाया सौंकार स्थापयेत्। तदा दले

दले ह्रींकारान् लिखेत् । तस्योपरि वर्ग कृत्वा परित पोडश ह्रींकार लिखेत् । पुनश्च वर्ग कृत्वा ऋद्धिमत्रे विलिख्य यत्राकृति पूरणीया ।

विधि—पवित्र होकर पीले वस्त्र धारण करे, उत्तर या पूर्वाभिमुख यत्र स्थापित कर उसकी पूजा करे पश्चात् पीले आसन पर बैठकर पीली माला द्वारा प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि मत्र का आराधन कर १२००० जप पूरा करे। पीले फूल चढावे ।

गुण—यत्र पास मे रखने तथा प्रतिदिन अट्ठाईस वां काव्य ऋद्धि तथा मत्र के आराधन करते रहने से व्यापार मे लाभ, सुख-समृद्धि, यश, विजय, सन्मान तथा राजदरवार मे प्रतिष्ठा वढती है ।

◇ इति अष्टाविंशति काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य २९—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर-तवाण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मत्र—"ॐ णमो णमिऊण पासं विसहर फुलिंग (नामाक्षर ?) मतो विसहर नाम रकार मतो सर्वसिद्धि-मीहे इह समरताण मण्णे-जागई कप्पदुमच्च सर्वसिद्धि ॐ नम स्वाहा ।"

यत्र—त्रिकोणाकारस्य मध्ये यौंकारत्रय स्थापयेत् । वर्गं कृत्वा तस्योपरि परित वर्णमालाया षोडश स्वराणि क्रमश लेख्यानि । पुनरपि वर्गेण वेष्टित यत्र ऋद्धिमत्राभ्या पूरितव्यम् ।

विधि—स्नान करके आसमानी रग के वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यत्र स्थापित करे, आरती उतारे, मालती के फूल चढावे, पूजा करे, मत्र सिद्धि पर्यन्त प्रतिदिन १००० वार ऋद्धि-मत्र की आराधना करना चाहिये ।

गुण—यत्र पास मे रखने तथा २९वां काव्य ऋद्धि और मत्र द्वारा १०८ बार मत्र कर जल पिलाने से नशीले स्थावर पदार्थ जैसे भाग, चरस, धतूरा आदि नशे का प्रभाव दूर होता है तथा दुखती आँख की पीडा दूर होती है । बिच्छू का विष भी उतर जाता है ।

◇ इति एकोनत्रिंशत् काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ३०—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर-गुणाण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मत्र—"ॐ (ह्रीं श्री पार्श्वनाथाय ह्रीं धरणेन्द्र पद्मावती सहिताय ?) नमो अट्ठे मट्ठे (क्षुद्रविघट्ठे) क्षुद्रान् स्तम्भय स्तम्भय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ।"

यन्त्र—वृत्तमध्ये पंचकोष्ठकान् विरच्य तेषु पंच हूंकारान् स्थापयेत्। तदुपरि पंचदश कमलकर्णिका विरच्य तासु टकारान् लिखेत्। पुनश्च ऋद्धि-मन्त्रयो वलयं विरच्य यन्त्राकृति पूरणीया।

विधि—स्नान के बाद सफेद वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यन्त्र स्थापित करे, यन्त्र की पूजा करे, सफेद फूल चढ़ावे, आरती उतारे पश्चात् सफेद आसन पर पद्मासन बैठ कर स्फटिकमणि की माला द्वारा प्रतिदिन १००० बार ऋद्धि मन्त्र का आराधन कर उसे सिद्ध करना चाहिये।

गुण—उपरोक्त ऋद्धि मन्त्र के बारबार स्मरण करने तथा यन्त्र को पास मे रखने से शत्रु का स्तम्भन होता है। बियावान वन में चोर सिंहादिक हिंसक पशुओं का भय नहीं रहता। सब प्रकार के भय दूर भाग जाते हैं।

○ इति त्रिंशति काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ३१—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुण-परक्कमाणं (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मन्त्र—ॐ उवसग्गहर पासं, (पास ?) वंदामि कम्म-घण-मुक्कं। विसहर विसणिर्णासिणं (णिण्णासं ?) मंगल-कल्लाण-आवास ॐ ह्रीं नम स्वाहा।

यन्त्र—वर्गाकाररचनाया क्रौंह्रींकारस्य सप्त युग्मानि स्थापयेत्। परित. वर्गं कृत्वा द्वाविंशति शंकारान् विलिख्य तस्योपरि वर्गाकारे परित ऋद्धिमन्त्रे मस्थाप्य यन्त्राकृति पूरणीया।

विधि—पवित्र होकर रक्त वर्ण के वस्त्र धारणकर यन्त्र स्थापित करे, यन्त्र की पूजा करे, जल से परिपूर्ण कलश रखे, पश्चात् उत्तराभिमुख लाल आसन पर पद्मासन लगाकर प्रतिदिन ऋद्धि मन्त्र का जाप जपते हुए ७५०० सौ जाप पूरा करे।

गुण—प्रतिदिन १०८ बार ३१वां काव्य, ऋद्धि तथा मन्त्र स्मरण करने और यन्त्र को पास में रखने से राजदरबार मे सन्मान मिलता है—राजा वश मे होता है तथा सब तरह के चर्म रोगो से छुटकारा हो जाता है।

○ इति एकत्रिंशति काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ३२—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणबंभचारिण (बंभयारिण ?) (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मन्त्र—"ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्व-दोष-निवारणं कुरु कुरु स्वाहा। सर्व सिद्धि वृद्धि वांछां (पूर्णं ?) कुरु कुरु स्वाहा।"

यन्त्र—वलयमध्ये पञ्चकोष्ठकान् कृत्वा तेषु पंच ह्रौंकारान् स्थापयेत्। तदुपरि वलयं कृत्वा परितः पञ्चदश सौंकारान् विलिख्य पुनश्च वर्गं कुर्यात्। तस्योपरि परितः ऋद्धिमन्त्रे लिखित्वा पुनरपि वर्गेण वेष्टितव्यं यन्त्रम्।

विधि—पवित्र होकर पीत वर्ण के वस्त्र धारण कर यन्त्र स्थापित करे, पार्श्व भाग में मंगल-कलश रखे, यन्त्र की पूजा करे पश्चात् पूर्वाभिमुख पद्मासन लगाकर १००८ बार पीली माला से ऋद्धि-मन्त्र जपकर मन्त्र सिद्ध करना चाहिये।

गुण—अविवाहित कन्या द्वारा काते हुए कच्चे धागे को ३२ वाँ काव्य, ऋद्धि तथा मन्त्र द्वारा २१ बार या १०८ बार मंत्र कर उस धागे को गले में बाँधने से और यन्त्र को पास में रखने से संग्रहणी आदि उदर की सब तरह की पीडायें दूर होती हैं।

◇ इति द्वात्रिंशति काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ३३—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वो (आमो ?) सहि-पत्ताण (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं ध्यान—सिद्धि (सिद्ध ?) परम-योगीश्वराय नमो नमः स्वाहा।"

यन्त्र—वर्गाकारमध्ये दशसुत्रिकोणेषु क्लौंकारान् लिखित्वा मध्ये ॐकारं लिखेत्। परितः वर्गाकारं विरच्य षोडश ह्रौंकारान् स्थापयेत्। तदुपरि परितः ऋद्धिमंत्रे विलिख्य यन्त्राकृतिः पूरणीया।

विधि—पवित्र होकर धवल वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यन्त्र स्थापित करे, यन्त्र की पूजा-अर्चा करे पश्चात् सफेद आसन पर उत्तराभिमुख बैठ कर सफेद माला द्वारा घृत मिश्रित गुग्गुल की धूप क्षेपण करते हुए १००८ बार ऋद्धि-मन्त्र का जाप कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिये।

गुण—कुमारी कन्या द्वारा काते हुए कच्चे धागे का गंडा बनाकर और उसे ३३वें काव्य ऋद्धि तथा मन्त्र द्वारा २१ बार मन्त्र कर बाँधने झाडा देने तथा यन्त्र पास में रखने से एकांतरा, ताप-ज्वर, तिजारी आदि रोग दूर होते हैं।

◇ इति त्रयस्त्रिंशत काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ३४—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लो (खेलो ?) सहिपत्ताण (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—"ॐ नमो ह्रीं श्रीं (क्लीं ?) ऐं ह्रीं (ह् सौं ?) पद्मावत्यै देव्यै नमो नम स्वाहा। ॐ प च य म ह्रां ह्रीं नम.।"

यंत्र—नवोपवर्गेषु विभक्त एक वर्ग विरचनीयः। प्रति कोष्ठे "ॐ प च य म ह्रा ह्रीं नम" इति मन्त्रस्याक्षराणि क्रमश पूरणीयानि। तदुपरि वर्ग कृत्वा षोडश फकारान् लिखेत्। पुनश्च परित ऋद्धिमन्त्रे सस्थाप्य यन्त्राकृति पूरणीया।

विधि—पवित्र होकर सफेद रेशमी वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख मगल-कलश तथा यन्त्र की स्थापना कर यन्त्र पूजा करे पश्चात् सफेद आसन पर पूर्वाभिमुख पद्मासन लगाकर स्फटिक मणि की माला द्वारा १२००० वार ऋद्धि-मन्त्र जपकर सिद्धि प्राप्त करना चाहिये।

गुण—केशरिया रग मे रगे हुए धागे को १०८ वार ३४वें काव्य, ऋद्धि तथा मन्त्र से मन्त्रित कर गूगल की धूनी देकर गले मे या कटिप्रदेश मे बाधने और यन्त्र को पास मे रखने से गर्भ का स्तम्भन होता है—असमय मे गर्भ का पतन नहीं होता।

○ इति चतुस्त्रिंशति काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ३५—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लो-सहिपत्ताण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मन्त्र—"ॐ (ह्रीं अर्हं ?) नमो जय विजय अपराजिते महालक्ष्मी अमृत-वर्षिणी अमृतस्राविणी अमृत भव भव वषट् सुधायै (सुधाय ?) स्वाहा। ॐ नमो गजगमने सर्वकल्याणमूर्ते रक्ष रक्ष नम स्वाहा।"

यन्त्र—रचनीय द्वादशदलयुक्त कमल। कर्णिकाया ॐकार विलिख्य दले दले च ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रां ह्रीं ह्, ह ह र ह र इति मन्त्रस्याक्षराणि स्थापयेत्। कमल वलयेन वेष्टितव्यम्। तत "ॐ नमो गजगमने सर्व कल्याण-मूर्तये रक्ष रक्ष नम स्वाहा" इति मन्त्रस्याक्षराणि लिखेत्। पुनश्च वर्ग कृत्वा तदुपरि परित ऋद्धिमन्त्रे सस्थाप्य यन्त्र पूर्ण कुर्यात्।

विधि—पवित्र होकर पीले रग के वस्त्र धारणकर उत्तराभिमुख यन्त्र स्थापित करे-यन्त्र की पूजा करे, पीले फूल चढावे। दीप प्रज्वलित करे पश्चात् पीले रग की माला द्वारा ४००० वार ऋद्धि-मन्त्र की साधना कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिये पीछे प्रतिदिन १०८ वार जाप जपना चाहिये।

गुण—यन्त्र पास मे रखने और ३५वें काव्य ऋद्धि तथा मन्त्र की आराधना

से मरी, मिरगी, चोरी, दुर्भिक्ष, राज्य-भय आदि दूर होते हैं तथा व्यापार मे लाभ होता है राज्य मे मान्यता होती है, वचन प्रामाणिक माने जाते हैं।

◇ इति पचविंशति काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ३६—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पो-सहि-पत्ताण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मंत्र—"ॐ ह्रीं श्रीं कलिकुण्ड-दण्ड-स्वामिन् आगच्छ आगच्छ। आत्ममत्रान् आकर्षय आकर्षय। आत्ममत्रान् रक्ष रक्ष। परमत्रान् छिन्द छिन्द मम समीहित कुरु कुरु स्वाहा।

यत्र—विरच्यतामेको वर्ग विभक्त षोडशोपवर्गेषु पूर्वता "ॐ ह्रा ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रू ह र य म च म ह्रां ह्रीं ह्रू ह्र" इति मत्रन्य षोडशाक्षराणि क्रमश तेषु तदुपरि वर्ग कृत्वा परित ऋद्धि मत्रे विलिख्य यत्र पूर्ण कुर्यात्।

विधि—स्नान करके पीले वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यत्र स्थापित कर यत्र की पूजा पीले फूलों से करे, दीपक जलावे पश्चात् पीले आसन पर पद्मासन लगाकर पीली माला द्वारा १२००० जप पूर्ण कर मत्र सिद्ध करना चाहिये।

गुण—यत्र पास मे रखने तथा प्रतिदिन १०८ बार ३६वें काव्य ऋद्धि-मत्र के आराधन से सुवर्णादिक धातुओं के व्यापार मे लक्ष्मी का लाभ होता है। राज्य मे मान्यता प्राप्त होती है। पाच पचो मे बात प्रमाणिक मानी जाती है।

◇ इति षट्विंशति काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ३७—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि-पत्ताण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मत्र—"ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लू ॐ ह्रीं मनोवांछित-सिद्ध्यै नमो नम अप्रतिचक्रे ह्रीं ठ ठ स्वाहा।"

यत्र—वृत्तमध्ये चतुर्दल कमल विरच्य कर्णिकाया ॐकार तथा च दले दले "श्रीं ह्रीं क्रौं झ्रौं" इति बीजाक्षराणि लेख्यानि। तदुपरि त्रयोदश ह्रींकाराणा वलय विरच्यताम्। पुनश्च वर्ग कृत्वा परित ऋद्धिमत्रे विलस्य यत्र पूर्ण कुर्यात्।

विधि—स्नान करके सफेद वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यत्र स्थापित कर उसकी पूजा अर्चा करे पश्चात् धवलासन पर बैठ कर गुग्गुल कपूर केशर

कस्तूरी मिश्रित १००८ गोली बनावे और ऋद्धि-मन्त्र का जाप करते हुए एक एक गोली अग्नि मे छोडता जावे। इस प्रकार मन्त्राराधन कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिये।

गुण—यन्त्र पास मे रखने तथा ३७वें काव्य ऋद्धि तथा मन्त्र से २१ वार जल मन्त्र कर मुख पर छिडकने से दुष्ट पुरुषो के दुर्वचनो का स्तम्भन होता है, और दुर्जन पुरुष वश मे होता है कीर्ति तथा यश की वृद्धि होती है।

○ इति सप्तविंशति काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ३८—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीणं (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मन्त्र—"ॐ नमो भगवते (अष्ट ?) महा-नाग-कुलोच्चाटिनी काल-दष्ट्र-मृतको-त्थापिनी पर-मन्त्र प्रणाशिनी देवि शासनदेवते ह्रीं नमो नम स्वाहा। ॐ ह्रीं शत्रुविजयरणरणाग्रे ग्रां ग्रीं ग्रू ग्र नमो नम स्वाहा।"

यन्त्र—आयताकारमध्ये खड्गाकार रचनीयम्। तन्मध्ये "ॐ ह्रीं नमो नम स्वाहा" इति मन्त्रस्याक्षराणि विलिख्य तस्योपरि अधोभागे च "ॐ नमः शत्रुविजयरणरणाग्रे ग्रां ग्रीं ग्रू ग्र नमो नम" इति मन्त्र स्थापयेत्। पुन परित एकविंशत्झकारं पूर्यताम्। पुन वर्ग कृत्वा परित ऋद्धिमन्त्रं विलिख्य यन्त्र पूर्ण कुर्यात्।

विधि—पवित्र होकर पीले वस्त्र पहिनकर उत्तराभिमुख यन्त्र स्थापित कर यन्त्र की पूजार्चा करने के पश्चात् पीले आसन पर बैठकर पीली माला द्वारा १००८ वार ऋद्धि-मन्त्र का स्मरण करते हुए मन्त्र सिद्ध करना चाहिये।

गुण—३८वां काव्य ऋद्धि तथा मन्त्र का वारम्बार आराधन करने और यन्त्र को पास मे रखने से मदोन्मत्त हाथी वश मे होता है और अर्थ की प्राप्ति होती है।

○ इति अष्टाविंशत् काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ३९—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो वच (वयण ?) बलीण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मन्त्र—"ॐ नमो एषु वृत्तेषु (दत्तेषु ?) वर्द्धमान तव भयहर वृत्ति वर्णायेषु (ते ?) मन्त्रा पुन स्मर्तव्या अतो ना-परमन्त्र-निवेदनाय नम स्वाहा।

यन्त्र—एको वर्ग षोडशोपवर्गेषु विभाजनीय। ॐ नमो भगवते भय विध्वस ह्रां ह्रीं क्ष्रौं श्रौं इति मन्त्रस्याक्षराणि प्रत्येक उपवर्गे स्थापयेत्। चतुर्दश श्रौं-

कारान् च वर्गोपरि लिखेत्। पुनश्च तदुपरि परित ऋद्धिमन्त्रे मस्थाप्य यन्त्राकृति पूर्णा कुर्यात्।

विधि—पवित्र होकर पीले वस्त्र पहिनकर पूर्वाभिमुख यन्त्र स्थापित कर उसकी पूजा करे। पश्चात् पीले आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर पीत वर्ण की माला द्वारा १००८ वार ऋद्धि-मन्त्र का शुद्ध मन से आराधन करें तथा प्रत्येक मन्त्र के बाद गुग्गुल, केशर, कर्पूर, कस्तूरी, घृत मिश्रित धूप को खेते रहना चाहिये।

गुण—यन्त्र को पास मे रखने तथा ३९वें काव्य ऋद्धि और मन्त्र के स्मरण करने मे मार्ग मे सर्प, सिंह, वाघ आदि जगली क्रूर हिंसक पशुओ का भय नहीं रहता तथा विस्मृत रास्ता मिल जाता है और आराधक गन्तव्य स्थान को विना किसी कष्ट के प्राप्त कर लेता है।

◇ इति एकोनचत्वारिंशत् काव्य पचाग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ४०—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो काय-वलीण (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मन्त्र—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रा ह्रीं अग्निमुपशमन शान्ति कुरु कुरु स्वाहा। ॐ सौं ह्रीं क्रौं ग्लौं (ल्वौं ? ब्लौं ?) सुदरपाय (सुदरवाय ?) नम।"

यन्त्र—द्वादशदलयुक्त कमल विरच्य कर्णिकामध्ये ॐकार दले दले च "ॐ सौं ह्रीं क्रौं ग्लौं सुदरपाय नम" इति मन्त्रस्याक्षराणि लेख्यानि। तदुपरि वलय कृत्वा चतुर्दश सौंकारान् स्थापयेत्। पश्चात् वर्ग कृत्वा परित ऋद्धिमन्त्रं विलिख्य यन्त्र पूर्ण कुर्यात्।

विधि—पवित्र होकर लाल रग के वस्त्र पहिनकर पूर्वाभिमुख मगल कलश तथा उत्तराभिमुख यन्त्र स्थापित कर यन्त्र की पूजा करे। पश्चात् लाल आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर लाल रग की माला से ऋद्धि-मन्त्र का १२००० वार जप करके मन्त्र सिद्ध करना चाहिये।

गुण—यन्त्र को पास मे रखने मे तथा ४०वें काव्य ऋद्धि एव मन्त्र से २१ वार जल मन्त्र कर चारो ओर छिडकने से अग्नि का भय दूर होता है।

◇ इति चत्वारिंशत् काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ४१—ऋद्धि—'ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीर (खीरा ?) सवीण (सवाण ?) (झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा ?)।"

मंत्र—"ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रौं श्रः जलदेविकमले पद्मह्रद निवासिनी (नि ?) पद्मोपरि-सस्थिते सिद्धि देहि मनोवांछित कुरु कुरु स्वाहा । ॐ ह्रीं आदिदेवाय ह्रीं नमः ।"

यंत्र—सांगुलिहस्तं विरच्य अंगुष्ठभागे पंच ॐकार, तर्जनीमध्ये पंच ह्रींकार, मध्यमायां पंच श्रींकार, अनामिकामध्ये पंचक्लींकार, कनिष्ठकायां च पंचब्लौंकार, स्थापयेत् । अनन्तर कर तले "ॐ ह्रीं आदिदेवाय नमः" इति मंत्र विलिख्य वर्गं क्रियताम् । उपरि च परितः ऋद्धि-मंत्रं संस्थाप्य यंत्राकृति पूर्णां कुर्यात् ।

विधि—स्नान करके सफेद वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित कर उसकी पूजा करे, दीपक जलावे, आरती उतारे । पश्चात् सफेद आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर स्फटिकमणि की माला द्वारा ऋद्धि-मंत्र का १२००० वार आराधन कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये ।

गुण—यंत्र को पास में रखने से तथा ४१वां काव्य ऋद्धि तथा मंत्र का बारम्बार स्मरण करने से राज दरबार में सन्मान मिलता है, प्रतिष्ठा बढती है तथा इसी मंत्र के झाड़ने से विषधर का विष उतरता है । कांस्य-पात्र में जल भरकर १०८ बार मंत्र कर मंत्रित जल पिलाने से विष का प्रभाव दूर हो जाता है ।

० इति एकचत्वारिंशत् काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ०

काव्य ४२—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पि (सव्वोप ?) सवाण (सवीण ?) (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?) ।"

मंत्र—"ॐ नमो णमिऊण विषधर-विष-प्रणाशन-रोग-शोक-दोष ग्रह कप्प-दुमच्चजायई सुहनाम ग्रहण सकल सुहदे ॐ नमः स्वाहा ।"

यंत्र—द्वादशोपवर्गेषु विभक्ता वर्गाकृति विरचनीया । प्रत्येक कोष्ठे "ॐ ह्रीं श्रीं बलपराक्रमाय नमः" इति मंत्रस्याक्षराणि स्थापयेत् । तस्योपरि वर्गं कृत्वा परितः सप्तदश वकार धारयेत् । पुनश्च परितः ऋद्धिमंत्रं विलिख्य यंत्र पूर्णं कुर्यात् ।

विधि—पवित्र होकर धवल वस्त्र पहिनकर रक्तचंदन से लिखे यंत्र को पूर्वाभिमुख स्थापित करे, यंत्र की पूजा करे, दीपक जलावे, आरती उतारे । पश्चात् रक्त आसन पर उत्तराभिमुख बैठकर लाल रंग की माला द्वारा १२५०० बार ऋद्धि-मंत्र का जाप जपे तथा मंत्र सिद्ध करे ।

गुण—यंत्र को भुजा में बांधने तथा ऋद्धि मंत्र का स्मरण करते रहने से भयकर युद्ध में भी भय उत्पन्न नहीं होता। राजा का क्रोध शान्त होता है और वह पीठ दिखाकर भाग जाता है। चंदा की चांदनी-सी कीर्ति चारों ओर फैलती है।

○ इति द्विचत्वारिंशत् काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ४३—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाण (सवीण ?) (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—"ॐ नमो चक्रेश्वरीदेवी चक्रधारिणी जिन-शासन-सेवाकारिणी क्षुद्रोपद्रव-विनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी नमः शान्ति कुरु कुरु स्वाहा।"

यंत्र—विरच्यतां चतुर्दलकमलं। लिख्यतां कर्णिकायां च ॐकारः। तथा च दलेषु 'ह्रीं श्रीं नमः' इति लिख्यताम्। वलय वेष्टित पुष्पोपरि पचदश धूंकार लिखित्वा पुनश्च वर्ग कृत्वा तदुपरि परितः ऋद्धिमंत्रं संस्थाप्य यंत्राकृति पूरणीया।

विधि—स्नान करके शुद्ध स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजा करना चाहिये पश्चात् उत्तराभिमुख सफेद आसन पर बैठकर सफेद माला द्वारा १२५०० वार ऋद्धि-मंत्र का आराधन कर मंत्र सिद्ध करे।

गुण—४३वां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र के स्मरण करने और यंत्र की पूजा करने व उसे पास में रखने से सब प्रकार के भय दूर होते हैं। संग्राम में अस्त्र-शस्त्रों की चोटें नहीं लगतीं तथा राजा द्वारा धन लाभ होता है।

○ इति त्रिचत्वारिंशत् काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

काव्य ४४—ऋद्धि—'ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीयसवाण (अमिआसवीण ?) (झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—"ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुम्भकरणाय लंकाधिपतये महाबल पराक्रमाय मनश्चिन्तितं (कार्यं ?) कुरु कुरु स्वाहा।"

यंत्र—अष्टदलकमलं विरच्य कर्णिकायां ॐकारं लिखित्वा दलेष्वन्तः र्लौंकारं स्थापयेत्। पुनश्च वलयाकारं कृत्वा द्वादश ह्रींकारान् लिखेत्। पश्चात् पुनः वर्गं कृत्वा परितः ऋद्धिमंत्रं संस्थाप्य यंत्राकृतिं पूर्णां कुर्यात्।

विधि—स्नानानन्तर सफेद स्वच्छ वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजा करे, मंगल-कलश रखे, दीपक जलावे, आरती उतारे

पश्चात् धवलासन पर बैठकर स्फटिकमणि की माला द्वारा १००८ बार ऋद्धि-मंत्र का आराधन कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

गुण—४४वां काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र की आराधना से तथा यंत्र को अपने पास रखने से आपत्तियां दूर होती हैं। समुद्र में तूफान का भय नहीं होता। आसानी से समुद्र पार कर लिया जाता है।

◇ इति चतुश्चत्वारिंशत् काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ४५—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीण-महाण-साणं (सीण ?) (श्रौं श्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—"ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रव-शान्तिकारिणी रोगकष्टज्वरोपशमन शान्ति कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रीं भगवते भयभीषणहराय नमः।"

यंत्र—षोडशकोष्ठयुक्त वर्गाकार रचय। तन्मध्ये "ॐ ह्रीं भगवते भय-भीषण हराय नमः" इति मंत्रस्याक्षराणि लेख्यानि। अनन्तर वर्गं कृत्वा तस्यो-परि षोडश ठंकारान् विलिख्य पुनः वर्गं कृत्वा परितः ऋद्धिमंत्रं संस्थाप्य यंत्राकृति पूर्णां कुर्यात्।

विधि—पवित्र होकर पीले रंग के वस्त्र पहिनकर दक्षिण दिशा की ओर यंत्र स्थापित कर यंत्र की पूजा करे पश्चात् पीले आसन पर बैठकर पीले रंग की माला द्वारा १००८ बार ऋद्धिमंत्र का स्मरण कर मंत्र सिद्ध करना चाहिये।

गुण—४५वां काव्य ऋद्धि तथा मंत्र जपने और यंत्र को पास में रखने से तथा उसकी त्रिकाल पूजा करने से अनेक प्रकार की व्याधियों की पीड़ा शान्त होती है और महाभयानक मरण-भय-जलोदर, भगन्दर, गलित कोढ आदि शान्त होते हैं तथा उपसर्ग दूर होते हैं।

◇ इति पंचचत्वारिंशत् काव्य पंचांग विधि सम्पूर्णम् ◇

काव्य ४६—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढ-माणाण (श्रौं श्रौं नमः स्वाहा ?)।"

मंत्र—"ॐ नमो ह्रां ह्रीं श्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः (ठः ?) जः जः (जः ?) क्षां क्षीं क्षूं (क्षौं ?) क्षः क्षय स्वाहा।"

यंत्र—आयताकारमध्ये षट्कोणाकृति विरच्य तस्या मध्ये 'ह्म्ल्व्र्यूं' स्थापयेत्। कोणे कोणे च ॐकार लिखेत्। तथा आयताकारस्य चतुष्कोणे श्रीं-कारान् स्थापयेत्। पश्चात् वर्गं कृत्वा एकोनविंशत् ऐंकारान् विलिख्य तदुपरि परितः ऋद्धिमंत्रं संस्थाप्य यंत्राकृति पूरणीया।

काव्य ४८—ऋद्धि—"ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूण ॐ णमो भयवदो (भयव ?) महवि महावीर वड्ढमाण वुड्ढिरिसीण (ह्रौं ह्रौं नम स्वाहा ?) ।"

मत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रू ह्रौं ह्र अ सि आ उ सा ह्रौं ह्रौं स्वाहा। ॐ नमो बमचारिणे अट्ठारह सहस्र सीलांगरथधारिणे नम स्वाहा ।

यत्र—अष्टदलकमल विरच्य कर्णिकाया ॐकार लिखेत् । प्रत्येक दल मध्ये "ॐ ह्रीं लक्ष्मी प्राप्त्यै नम" इति मत्रस्याक्षराणि लेग्यानि । तदुपरि वलय पुनश्च षोडशदलयुक्तस्य कमलस्य रचना कुरुत । सर्वेषु दलेषु श्रींकारान् लिखत् पश्चात् वर्ग कृत्वा तदुपरि परित ऋद्धिमत्रे मस्थाप्य यत्राकृति पूरणीया ।

विधि—स्नान करके पीले रग के वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यत्र स्थापित कर पीले पुष्पो से यत्र की पूजा करके पीले आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ कर पीले रग की माला द्वारा ४५०० वार अथवा १००००० वार ऋद्धि मत्र का आराधन ७ महिने मे पूर्ण कर मत्र सिद्ध करना चाहिये ।

गुण—प्रतिदिन १०८ वार २१ दिन तक अथवा ४९ दिन तक ऋद्धिमत्र तथा ४८वां काव्य का स्मरण करने और यत्र को पास मे रखने से मनोवाछित कार्य की सिद्धि होती है । जिसको अपने आधीन करना हो उस व्यक्ति का नाम चिन्तन करने से वह व्यक्ति अपने वश में होता है ।

○ इति अष्टचत्वारिंशत् काव्य पचांग विधि सम्पूर्णम् ○

चौरड़िया चेरिटेबिल ट्रस्ट

उमरावमल चौरडिया	अध्यक्ष
शान्ती कुमार चौरडिया	मत्री
श्रीमती प्रेमलता चौरडिया	ट्रस्टी
श्रीमती नयनतारा चौरडिया	ट्रस्टी

प्राप्ति-स्थान

चौरडिया भवन, सोथली वालो का रास्ता,
एस०एम०एस० हाईवे,
जयपुर-३
फोन ५६०८९९, ५६३६५१ फैक्स ५६३६५२

मूल्य पन्द्रह रुपये मात्र

मुद्रक . प्रेमचन्द जैन द्वारा प्रेम इलैक्ट्रिक प्रेस
१/११, साहित्य कुज, महात्मा गाधी मार्ग, आगरा-२ मे मुद्रित

मन्त्रोद्गम

जितने भी हैं मन्त्र-शास्त्र सम्पूर्ण लोक में।
उन सब की उत्पत्ति हुई है णमोकार से॥
जितने भी अक्षर संख्या हैं श्रुतज्ञान की।
महामन्त्र में सभी निहित रह हर प्रकार से॥१॥

सप्त तत्त्व या नव पदार्थ या छह द्रव्यों का।
गुण पर्यायों सहित सार इसमें गर्भित है॥
बन्ध-मोक्ष नय निक्षेपादिक द्वादशांग का।
समयसार प्रामाणिक में सम्पूर्ण निहित है॥२॥

रहा सदा अस्तित्व इसी का धारावाही।
हर तीर्थंकर के शासन में, कल्पकाल में॥
काल दोष से हुआ कदाचित् क्वचित् लुप्त जो।
दिव्यध्वनि से पुनः प्रकट हो गया हाल में॥३॥

भस्मीभूत यही करता है सभी पाप-मल।
इसका भी है तर्क युक्त वैज्ञानिक कारण॥
होती हैं उत्पन्न धनात्मक और ऋणात्मक।
द्वन्द्व शक्तियाँ, करते ही इसका उच्चारण॥४॥

विद्युत् शक्ति प्रकट होती है ज्योतिर्मयी तब।
चेतन में चिनगारी जैसा चमत्कार ले॥
कर्म-कलंक जला देती है वह चिनगारी।
जो नियोग पूर्वक जीवन में यह उतार ले॥५॥

आत्मा का आदेश जनावे वही मन्त्र है।
या कि निजानुभव तक पहुँचावे वही मन्त्र है॥
मन् ज्ञाने में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय को लगाइये।
बन जाता व्याकरण रीति से शब्द मन्त्र है॥६॥

देवनागरी लिपि में जितने बीजाक्षर हैं।
उन सबकी ध्वनियों का उद्गम णमोकार है ॥
स्वर स्वतन्त्र हैं, इसीलिए तो, शक्ति रूप हैं।
व्यंजन बोये गये शक्ति मे बीज-सार हैं ॥७॥

महामन्त्र की सभी मातृका ध्वनियो मे हैं।
गर्भित व्यंजन एव स्वर सब वर्णमाल के ॥
ये अनादि हैं, ये अनन्त हैं, अक्षय अक्षर।
पर्यायवाची तीन लोक के, तीन काल के ॥८॥

मारण-मोहन-उच्चाटन ध्वनियो का क्रम है।
जो उत्पादक-ध्रौव्य और व्यय रूप सत्य है ॥
अष्ट कर्म का व्यय करके उपजाता वैभव।
ध्रौव्य रूप अव्यय पद देना परम कृत्य है ॥९॥

शक्ति रूप स्वर और बीज सज्ञक व्यजन है।
'अच्' एव 'हल' मिलकर बनते मन्त्र-बीज हैं ॥
चमत्कार दिखलाती उन पर मन्त्र-ध्वनियाँ।
जन्म जरा या मृत्यु-रोग के जो मरीज हैं ॥१०॥

स्वर अक्षरो की शक्ति

व्यजन और स्वरों से मिलकर मन्त्र-बीज बनते हैं।
बीज-शक्ति के ही प्रभाव से, मन्त्र-भाव छनते हैं॥
पृथ्वी-पावक-पवन-पय नभ, प्रणव बीज की माया।
सारस्वत-भुवनेश्वरी के बीजो को समझाया ॥

अ अव्यय सूचक, शक्ति प्रदायक, प्रणव बीज का कर्ता।
शुद्ध बुद्ध सद्ज्ञान रूप, एकत्व आत्म मे भर्ता ॥

आ सारस्वत का जनक यही है, शक्ति बुद्धि परिचायक।
माया बीज सहित होता है, यह धन-कीर्ति प्रदायक ॥

इ गति का सूचक, अग्नि-बीज का, जनक लक्ष्मी साधक।
कोमल कार्य सिद्ध करता है, कठिन कार्य में बाधक॥

ई अमृत-बीज यह स्तम्भक है, कार्य साधने वाला।
सम्मोहन, जृम्भण करता, "ई" ज्ञान बढ़ाने वाला॥

उ उच्चाटन का मन्त्र-बीज यह, बहुत शक्तिशाली है।
उच्चाटन का श्वास नली से शक्ति मारने वाली है॥

ऊ उच्चारण के सम्मोहन के बीजों का यह मूल मन्त्र है।
बहुत शक्ति को देने वाला, यह विध्वंसक कार्य तन्त्र है॥

ऋ ऋद्धि-सिद्धि को देने वाला, शुभ कार्यों में उपयोगी।
बीजभूत इस अक्षर द्वारा कार्य सिद्धि निश्चित होगी॥

ऌ वाणी का सहारक है यह, किन्तु सत्य का संचारक।
आत्म-सिद्धि में कारण बनता, लक्ष्मी बीज यही कारक॥

ए पूर्ण अटलता लाने वाला, पोषण मर्दन करता।
'ए' बीजाक्षर शक्ति युक्त हो सभी अरिष्ट हरण करता॥

व्यञ्जन अक्षरो की शक्ति

क् [व्यजन]+अ [स्वर]="क" वीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
भोग और उपभोग जुटावें, साधें यही काम-पुरुषार्थ ।
यही प्रभावक शक्ति वीज है, सततिदायक वर्ण यथार्थ ।।

ख् [व्यजन]+अ [स्वर]="ख" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
उच्चाटन वीजो का दाता, यह आकाश-बीज है एक ।
किन्तु अभाव कार्यों के हित, कल्पवृक्ष सम है यह नेक ।।

ग् [व्यजन]+अ [स्वर]="ग" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
पृथक पृथक यदि करना चाहो, तो इसका उपयोग करो ।
प्रणव और माया वीजों का, पर इससे सयोग करो ।।

घ् [व्यजन]+अ [स्वर]="घ" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
यह स्तम्भक वीज विघ्न का, मारण करने वाला है ।
सम्मोहक वीजों का दाता, रोक मिटाने वाला है ।।

ङ् [व्यजन]+अ [स्वर]="ङ" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
स्वर से मिलकर फल देता है, करता है रिपुओ का नाश ।
यह विध्वसक वीज जनक है, सभी मातृकाओ मे खास ।।

च् [व्यजन]+अ [स्वर]="च" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
उच्चाटन वीजों का दाता, खड शक्ति वतलाता है ।
अगहीन है स्वय स्वरो पर, अपना फल दिखलाता है ।।

छ् [व्यजन]+अ [स्वर]="छ" बीजाक्षर [मन्त्र-वीज]
छाया सूचक वन्धन-कारक, माया का सहयोगी है ।
जल वीजों का जनक यही है, मृदुल कार्य फल भोगी है ।।

ज् [व्यजन]+अ [स्वर]="ज" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
आधि-व्याधि का उपशम करके, साधें सारे कार्य नवीन ।
यह आकर्षक वीज जनक है, शक्ति वढाने मे तल्लीन ।।

झ् [व्यजन]+अ [स्वर]="झ" वीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
इस पर रेफ लगा दोगे तो, आधि-व्याधि हो जाय समाप्त ।
श्री वीजो का जनक यही है, शक्ति इसी से होती प्राप्त ॥

ञ् [व्यजन]+अ [स्वर]="ञ" वीजाक्षर [मन्त्र-वीज]
यही जनक है मोह वीज का, स्तम्भन का माया का ।
यही साधना का अवरोधक, वीजभूत है काया का ॥

ट् [व्यजन]+अ [स्वर]="ट" वीजाक्षर [मन्त्र-वीज]
अग्नि-वीज है अत अग्नि से, सम्वन्धित हैं जितने काय ।
इसके उच्चारण से पावक, जल्दी बुझती है अनिवार्य ॥

ठ् [व्यजन]+अ [स्वर]="ठ" वीजाक्षर [मन्त्र-वीज]
अशुभ कार्य का सूचक है यह, मजुल कार्य न सफलीभूत ।
शान्ति भग कर रुदन मचाता, कठिन कार्य को करै प्रसूत ॥

ड् [व्यजन]+अ [स्वर]="ड" वीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
शासन देवी की शक्ती को, यही फोडने वाला है ।
निम्न कोटि की कार्य सिद्धि को, यही जोडने वाला है ॥
जड की क्रिया साधना है यह, हो खोटे आचार-विचार ।
पच-तत्त्व के भौतिक सयोगों का करता है विस्तार ॥

ढ् [व्यजन]+अ [स्वर]="ढ" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
यह निश्चित है माया वीजक, एव मारण वीज प्रधान ।
शान्ति विरोधी मूल मन्त्र है, शक्ति वढाने मे वलवान ॥

ण् [व्यजन]+अ [स्वर]="ण" बीजाक्षर [मन्त्र-वीज]
नभ वीजो मे यही मुख्य है, शक्ति प्रदायक स्वय प्रशान्त ।
ध्वसक वीजो का उत्पादक, महाशून्य एव एकान्त ॥

त् [व्यजन]+अ [स्वर]="त" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
आकर्षक करवाने वाला, साहित्यिक कार्यो मे सिद्ध ।
आविष्कारक यही शक्ति का, सरस्वती का रूप-प्रसिद्ध ॥

थ् [व्यजन]+अ [स्वर]="थ" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
मगल कारक लक्ष्मी वीजो का, बन जाता सहयोगी ।
अगर स्वरो से मिल जाये तो, मोहकता जाग्रत होगी ॥

द् [व्यजन] + अ [स्वर] = "द" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
आत्मशक्ति को देने वाला, वशीकरण यह बीज प्रधान।
कर्म-नाश में उपयोगी है, करै धर्म आदान-प्रदान॥

ध् [व्यजन] + अ [स्वर] = "ध" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
धर्म साधने मे अचूक है, श्री क्ली करता धारण।
मित्र समान सहायक है यह, माया बीजो का कारण॥

न् [व्यजन] + अ [स्वर] = "न" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
आत्म-सिद्धि का सूचक है यह, वारि तत्त्व रचने वाला।
आत्म-नियन्ता वृष्टि सृष्टि मे, एक मात्र नचने वाला॥

प् [व्यजन] + अ [स्वर] = "प" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
परमातम को दिखलाता है, विद्यमान इसमे जल-तत्त्व।
सभी कार्यों मे रहता है, इसका अपना अलग महत्त्व॥

फ् [व्यजन] + अ [स्वर] = "फ" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
वायु और जल तत्त्व युक्त है, बड़े कार्य कर देता सिद्ध।
स्वर को जोडो रेफ लगा दो, हो प्रध्वसक यही प्रसिद्ध॥
इसके साथ अगर फट् बोलो, तो उच्चाटन हो जाएगा।
कठिन कार्य भी सफल करेगा, विघ्न शमन हो जाएगा॥

ब् [व्यंजन] + अ [स्वर] = "ब" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
अनुस्वार इसके मस्तक पर आकर विघ्न विनाश करै।
स्वय सफलता का सूचक बन, सबको अपना दास करै॥

भ् [व्यजन] + अ [स्वर] = "भ" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
मारक एव उच्चाटक है, सात्विक कार्य निरोधक है।
कल्याणो से दूर साधना, लक्ष्मी बीज निरोधक है॥

म् [व्यजन] + अ [स्वर] = "म" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
लौकिक एव पारलौकिकी सफलताएँ इससे मिलती।
यह बीजाक्षर सिद्धि प्रदाता, सतति की कलियाँ खिलती॥

य् [व्यंजन] + अ [स्वर] = "य" बीजाक्षर [मत्र-बीज]
मित्र मिलन मे, इष्ट प्राप्ति मे, यह बीजाक्षर उपयोगी।
ध्यान-साधना मे सहकारी, सात्विकता इससे होगी॥

र् [व्यंजन] + अ [स्वर] = "र" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
अग्नि-बीज यह कार्य-प्रसाधक अग्नि नशा देने वाला।
जितने भी हैं प्रमुख बीज यह उन सब को जनने वाला॥

ल् [व्यंजन] + अ [स्वर] = "ल" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
लक्ष्मी लावे, माल पावे, श्रीं बीज का सहकारी।
लाभ करावे, सुख पहुँचावे परम सगोत्री उपकारी॥

व् [व्यजन] + अ [स्वर] = "व" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
भूत पिशाचिन-शाकिन, डाकिन सबको दूर भगाता है।
ह् र् एव अनुस्वार से मिल जादू सा दिखलाता है॥
लौकिक इच्छा पूरी करता, सब विपत्तियाँ देता रोक।
मगल-साधक सारस्वत है, आकर्षित होता सब लोक॥

श् [व्यजन] + अ [स्वर] = "श" बीजाक्षर [मंत्र-बीज]
शान्ति मिला करती है इससे, किन्तु निरर्थक है यह बीज।
स्वय उपेक्षा धर्मयुक्त है, अति साधारण यह नाचीज॥

ष् [व्यंजन] + अ [स्वर] = "ष" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
आह्वान बीजों का दाता, है जल-पावक स्तम्भक।
आत्मोन्नति से शून्य भयकर, रुद्र-बीज का उत्पादक॥
रौद्र और वीभत्स रसो मे भी प्रयुक्त यह होता है।
ध्वनि सापेक्ष ग्रहण करता है, सयोगी सुख बोता है॥

स् [व्यजन] + अ [स्वर] = "स" बीजाक्षर [मंत्र-बीज]
सर्व समीहित साधक है यह, सब बीजों मे अति उपयुक्त।
शान्ति प्रदाता कामोत्पादक, पौष्टिक कार्यों हेतु प्रयुक्त॥
ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्म हटाता है।
क्लीं बीज का सहयोगी यह, आत्मा प्रकट दिखाता है॥

ह् [व्यंजन] + अ [स्वर] = "ह" बीजाक्षर [मन्त्र-बीज]
मगल कार्यो का उत्पादक, पौष्टिक सुख सन्तान करे।
है स्वतन्त्र पर सहयोगार्थी, लक्ष्मी प्रचुर प्रदान करे॥
अनुस्वार यदि इस पर होवे, तो फिर इसी बीज की छाप।
सब तत्त्वो से मिलकर धोता, पाप और कर्मों के श्राप॥
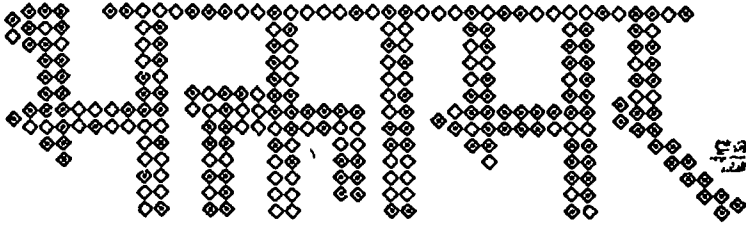
विविध यन्त्रालोक

(चतुर्थ-खण्ड)
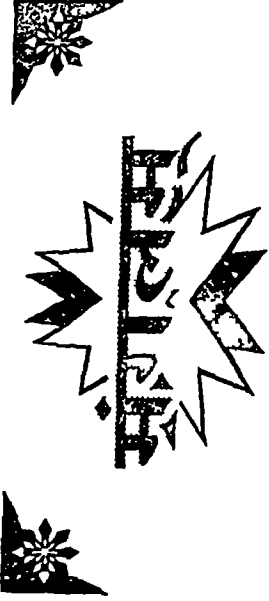
प्रेरणा

शासन प्रभाविका उज्ज्वल कुमारी जी म० सा०

की

सुशिष्या साध्वी डॉ० मुक्तिप्रभा जी म० सा०

सम्पादिका

डा० दिव्यप्रभा जी म० सा०

सह-सम्पादिका

डा० अनुपमा जी म० सा०

चौरड़िया चेरिटेबिल ट्रस्ट

१३, तख्तेशाही रोड,

जयपुर-३०२ ००४

पहला भक्तामर-यंत्र : सर्वोपद्रव-संहारक

दूसरा भक्तामर-यंत्र · सर्वविघ्न-विनाशक

तीसरा भक्तामर-यन्त्र शत्रुदृष्टि-बन्धक

चौथा भक्तामर-यन्त्र · जलजन्तु अभय-प्रदायक

पांचवां भक्तामर-यन्त्र : लोचनकष्ट-मोचक

छटवां भक्तामर-यन्त्र   वियुक्तव्यक्ति-संयोजक

सातवाँ भक्तामर-यन्त्र : भुजगविष-उपशामक

आठवाँ भक्तामर-यन्त्र सर्वारिष्ट-सहारक

ग्यारहवाँ भक्तामर-यंत्र : इच्छाप्राप्ति-आनंदक

बारहवाँ भक्तामर-यंत्र : मदोन्मत्त हस्तिमद-वारक

चौदहवाँ भक्तामर-यंत्र · बाल-व्याधि-विनाशक

पन्द्रहवाँ भक्तामर-यन्त्र : राज्य-वैभव-प्रदायक

सोलहवाँ भक्तामर-यन्त्र . प्रतिद्वन्द्वी प्रताप-अवरोधक

सप्तदशो भक्तामर-यन्त्र

अष्टादशो भक्तामर-यन्त्र

इक्कीसवाँ भक्तामर-यन्त्र · सर्वाधीन-कारक

बाईसवाँ भक्तामर-यन्त्र व्यन्तरादि-भय-नाशक

तेईसवाँ भक्तामर-यन्त्र   प्रेत-बाधा-पलायक

चौबीसवाँ भक्तामर-यन्त्र : शीर्ष-पीडा-निवारक

पच्चीमवाँ भक्तामर-यत्र : अग्निताप-शामक

छब्बीसवाँ भक्तामर-यंत्र प्रसूतिवेदना-विनाशक

सत्ताईसवाँ भक्तामर-यन्त्र मन्त्राराधक उपसर्ग-निवारक

अट्ठाईसवाँ भक्तामर-यन्त्र : इष्टकार्यसिद्धि-साधक

उन्तीसवाँ भक्तामर-यंत्र॥ वृश्चिक-विष-विदारक

तीसवाँ भक्तामर-यंत्र शत्रु सिंहादिक-भय-स्तम्भक

इकतीसवाँ भक्तामर-यन्त्र . यशस्कीर्ति विधायक

वत्तीसवाँ भक्तामर-यन्त्र : सग्रहणी-उदर-पीडा-सहारक

तेतीसवां भक्तामर-यन्त्र : तापज्वर-शमनकारक

चौंतीसवां भक्तामर-यन्त्र . भ्रूण-सरक्षक

पैंतीसवाँ भक्तामर-यन्त्र   प्रकृति-प्रकोप-प्रहारक

३६ उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती

पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ

पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति

ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ॐ ह्रीं

ॐ	ह्रां	ह्रीं	श्रीं
म	ह्रां	ह्रीं	क्लीं
च	ह्रः	ह्रू	ह्रूं
म	य	र	ह

छत्तीसवाँ भक्तामर-यन्त्र · सर्वसम्पत्ति लाभदायक

सैंतीसवाँ भक्तामर-यन्त्र : दुष्ट-वचन-अवरोधक

अड़तीसवाँ भक्तामर-यन्त्र . मदोन्मत्तगज-वशीकरण

उन्तालीसवाँ भक्तामर-यन्त्र : सन्मार्ग-दर्शक

चालीसवाँ भक्तामर-यन्त्र : अग्निप्रकोप-शामक

इकतालीसवाँ भक्तामर-यन्त्र   विष-प्रभाव-प्रतिरोधक

ब्यालीसवाँ भक्तामर-यन्त्र · युद्ध-अवरोधक

तेतालीसवाँ भक्तामर-यन्त्र अस्त्र-शस्त्र प्रभावहीन-कारक

चवालीसवाँ भक्तामर-यन्त्र प्रलय-तूफान भय-नाशक

पैंतालीसवाँ भक्तामर-यन्त्र · असाध्य रोगान्तक

छियालीसवाँ भक्तामर-यन्त्र : कारागार बन्ध विमोचक

संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्।

भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्।

सरस अर्चनालोक

(पचम खण्ड)

भक्तामर-महिमा

रचयिता—श्री हीरालाल जी जैन 'कौशल' देहली

श्री भक्तामर का पाठ, करो नित प्रात, भक्ति मन लाई।
सब सकट जायें नशाई।

जो ज्ञान-मान मतवारे थे, मुनि मानतुग से हारे थे।
उन चतुराई से नृपति लिया बहकाई।। सब सकट जायें०।।
मुनि श्री को नृपति बुलाया था, सैनिक जा हुकम सुनाया था।
मुनि वीतराग को आज्ञा नही सुहाई।। सब सकट जायें०।।
उपसर्ग घोर तब आया था, बल पूर्वक पकड मगाया था।
हथकडी बेडियों से तन दिया बधाई।। सब सकट जायें०।।
मुनि कारागृह भिजवाये थे, अडतालिस ताले लगाये थे।
क्रोधित नृप बाहर पहरा दिया बिठाई।। सब सकट जायें०।।
मुनि शान्त भाव अपनाया था, श्री आदिनाथ को ध्याया था।
हो ध्यान मग्न भक्तामर दिया बनाई।। सब सकट जायें०।।
सब बन्धन टूट गए मुनि के, ताले सब स्वय खुले उनके।
कारागृह से आ बाहर दिये दिखाई।। सब सकट जायें०।।
राजा नत होकर आया था, अपराध क्षमा करवाया था।
मुनि के चरणो मे अनुपम भक्ति दिखाई।। सब सकट जायें०।।
जो पाठ भक्ति से करता है, नित ऋषभ-चरण चित धरता है।
जो ऋद्धि-मत्र का विधि वत् जाप कराई। सब सकट जायें०।।
भय-विघ्न उपद्रव टलते हैं विपदा के दिवस बदलते है।
सब मन-बाछित हो पूर्ण शान्ति छा जाई।। सब सकट जायें०।।
जो वीतराग-आराधन है, आतम-उन्नति का साधन है।
उससे प्राणी का भव बन्धन कट जाई।। सब सकट जायें०।।
कौशल सु-भक्ति को पहिचानो-ससार-दृष्टि बन्धन जानो।
लो भक्तामर से आतम-ज्योति प्रकटाई।। सब सकट जायें०।।

यंत्र-प्राण-प्रतिष्ठा-मंत्र

ॐ आ क्रो ह्रीं अ सि आ उ सा य र ल व श ष स ह स (अमुष्य) त्वग्रमास्त्वमासमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणिधातव (अमुष्य) यन्त्रस्य कायवाङ्मनश्चक्षु श्रोत्र घ्राण मुख जिन्हा सर्वाणि इन्द्रायाणि शब्द स्पर्श रस गन्ध प्राणायानसमानोदानव्याना सर्वे प्राणा ज्ञानदर्शनप्राणश्च इहैव आशु आगच्छत २ सवौषट् स्वाहा। अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ ठ स्वाहा। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् स्वाहा। अत्र सर्वजनसौख्याय चिरकाल नन्दन्तु वर्धन्ता वज्रमया भवन्तु। अह वज्रमयान् करोमि स्वाहा।

भक्तामर-यंत्र-पूजा

करोमि विघ्नौघ विनाश हेतु, आह्वानन स्थापन सन्निधानम्।
यन्त्रस्य पूजा विधिनाय सर्व, रक्षाभिधानस्य मनोमुदे मे॥

ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौं ह्र अ सि आ उ सा रक्षय रक्षय यन्त्रराज एहि एहि सवौषट्॥इत्याह्वाननम्॥

ॐ ह्रा ह्री ह्रू ह्रौं ह्र अ सि आ उ सा रक्षय रक्षय यन्त्रराज एहि एहि अत्र तिष्ठ तिष्ठ॥ इति स्थापनम्॥

ॐ ह्रा ह्री ह्रू ह्रौं ह्र अ सि आ उ सा रक्षय रक्षय यन्त्रराज एहि एहि मम सन्निहितो भव भव वषट्॥ इति सन्निधिकरणम्॥

श्रीमत्कनककाञ्चन निर्मितोरु भृगार नालाद् गलितैं पयोभि।
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्व-रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम्॥

ॐ ह्रा ह्री ह्रू ह्रौं ह्र अ सि आ उ सा अर्हं नम। ॐ ह्रीं भगवते ह्म्ल्व्र्यूं क्षी ह्रौं यन्त्राधिपतये चोरारिमारिशाकिनी प्रभृति घोरोपसर्ग, दुष्ट

ग्रह राक्षस भूतप्रेत पिशाचादीन् अपनय अपनय सर्वरोगापमृत्यु विनाशनाय हूं फट् आयुष्य वर्धय वर्धय (देवदत्तनामधेयस्य) सर्वं रक्षा कुरु कुरु, लक्ष्मी प्रभावोदित तुष्टि पुष्टिम् आयुरारोग्यक्षेम कल्याण विभव वितरणोपेत वर प्रसाद सद्धर्म सिद्ध्यर्थं वृद्ध्यर्थं शान्त्यर्थं यन्त्रराजाय जलं समर्पयामि ।

पटीरपङ्कैर्घनसार सारैं सौरभ्य सम्प्रीणित विश्वलोकैः ।
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्वं, रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम् ॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ... यन्त्रराजाय गंधं समर्पयामि ।

शाल्यक्षतैं क्षीरपयोधि फेन पिण्डोपमैरक्षत मुक्तिलक्ष्म्यै ।
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्वं रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम् ॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः यन्त्रराजाय अक्षतं समर्पयामि ॥

मन्दारजाति वकुलाविमुक्तकुन्दादि पुष्पैं सुरभीकृताशैं ।
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्वं रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम् ॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ... ... यन्त्रराजाय पुष्पं समर्पयामि ॥

शाल्यन्नपक्वान्न समस्तशाकैं क्षीराज्ययुक्तैश्चरुभिर्विचित्रैं ।
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्वं रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम् ॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः यन्त्रराजाय नैवेद्यं समर्पयामि ॥

कर्पूरपारीज्वलितैं प्रदीपैंनिशोषिताशेष दिगन्धकारैं ।
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्वं रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम् ॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः यन्त्रराजाय दीपं समर्पयामि ॥

पापघ्नपुञ्जैर्घन धूपधूम्रैंर्धूपैं सुकालागरु चन्दनोघैं ।
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्वं रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम् ॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः यन्त्रराजाय धूपं समर्पयामि ॥

नारङ्गपूगाम्र सुमातुलुङ्ग कच्चारमोचादि फलैर्मनोज्ञैं ।
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्वं रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम् ॥
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ... यन्त्रराजाय फलं समर्पयामि ॥

नद्यम्बुगन्धाक्षतपुष्पमुख्यैर्द्रव्यै कृत चार्घ्यमिद ददेऽहम् ॥
यन्त्रस्य विघ्नौघशमाय सर्वं रक्षाभिधानस्य करोमि पूजाम् ॥
ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौं ह्र यन्त्रराजाय अर्घ्यं समर्पयामि ॥

भग्न - पृष्ठ - कटि - ग्रीवा वद्ध - दृष्टि रधोमुखम् ।
कष्टेन - लिखित - शास्त्र - यत्नेन - प्रतिपालयेत् ॥

— सम्पूर्णम् —

●●●

श्रीमन्महामुनि-सोमसेनप्रणीता

श्री भक्तामर-महाकाव्य-मण्डल विधान

ॐ जय जय जय

नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु

णमोअरिहंताणं

काम-क्रोध लोभादि शत्रुओ के महर्ता तीर्थङ्कर ।
करूँ प्रणाम आपको भगवन् ! आदीश्वर हे भवशङ्कर ॥

णमो-सिद्धाणं

मुक्त सदा जो जग प्रपच से, सिद्ध-शिला मे सुख आसीन ।
सिद्ध वृन्द की करूँ वन्दना, भक्ति-भाव मे होकर लीन ॥

णमो आयरियाणं

धर्म-तत्त्व समझाने वाले, आचार्यों को नमन करूँ ।
भक्ति भाव से श्रद्धापूर्वक, मोक्ष पथ मे गमन करूँ ॥

णमो उवज्झायाणं

उपाध्याय के श्री चरणों में, शीश झुकाता वारम्वार ।
भगवन् ! करदे पार जगत से, कृपा आपकी परम उदार ।।

णमो लोए सव्वसाहूणं

लोक पूज्य शुभ साधु वृन्द को, करूँ प्रणाम नत-सिर मैं दीन ।
पाप-ताप हर तारो मुझ को, तारण-विद्या परम प्रवीण ।।
ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्योनम (पुष्पांजलिंक्षिपेत्)

चत्तारि मंगलं

१—अरिहंता मंगल २—सिद्धा मंगल ३—साहू मंगल
४—केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगल

चत्तारि लोगुत्तमा

१—अरिहंता लोगुत्तमा २—सिद्धा लोगुत्तमा ३—साहू लोगुत्तमा
४—केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि

१—अरिहंते सरणं पव्वज्जामि २—सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
३—साहू सरणं पव्वज्जामि
४—केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि
ॐ नमोऽर्हते स्वाहा (पुष्पांजलिंक्षिपेत्)

नोट —इत्यादि "नित्य-पूजा" नामक पुस्तक में प्रकाशित "अपवित्र पवित्रो वा" से लेकर सिद्ध पूजा पर्यन्त नित्य-पूजा करने के उपरान्त यह—

सतत स्मरण करने योग्य, महा प्रभावक, महा महिमाशाली
"श्री भक्तामर महाकाव्य मण्डल-विधान"
प्रारम्भ करना चाहिये ।

●●●

पूर्व-पीठिका

श्रीमन्त-मानम्य जिनेन्द्र देव, पर पवित्र वृपभ गणेश ।
स्वाद्वादवारा निधिचन्द्रविम्व, भक्तामरस्यार्चनमात्मसिद्धयै ।।

वक्ष्ये सुवीर करुणार्णव च, श्रीभूपण केवलज्ञान रूप ।
अलक्ष्यलक्ष्य प्रणमाम्यलम्वै, भक्तामर सिद्ध वधू-प्रिय वै ।।

आदौ भव्यजने नैव, गत्वा चैत्यालय प्रति ।
प्रणम्य[1] परया भक्त्या, सर्वज्ञ शुद्ध लक्षण ।।

तत सद्गुरु - मानम्य, विनयानत - चेतसा ।
प्रार्थना सुकृता भव्यै, पूजार्थै भाव शुद्धित ।।

दीयता सुगुरो ! आज्ञा, पूजा कर्तु शुभा वर ।
इत्युक्ते गुरुणाभाणि, विधिर्भक्तामरस्य वै ।।

श्रीखण्डागुरु—कर्पूर, नारिकेल-फलानि च ।
प्रचुराक्षत—पुष्पौद्या, नक्षताचरु सचयान् ।।

मेलयित्वा प्रमोदेन, चन्द्रोपमछ्वजादिकान् ।
दीपान् धूपान् महावाद्य, गीतराव विराजितान् ।।

तोरणै र्मणि-सन्नद्धै— , रुज्ज्वलै-श्चामरैस्तथा ।
मण्डपै पचवर्णैश्च, द्रव्यै-र्मङ्गल सूचकै ।।

वसुदेव-मिते कोष्ठे, वर्तुलाकार - मण्डिते ।
रचयेद् वेदिका तत्र, श्री जिनार्चन - हेतवे ।।

नातिवृद्धो न हीनाङ्गो, न कोपी न च वालक ।
मलिनो न न मूर्खश्च, सर्व - व्यसन - वर्जित ।।

कला-विज्ञान-सम्पूर्णो, वाचाल शास्त्र वाक्पटु ।
पण्डितो मृज्यते तत्र, करुणा - रस - पूरित ।।

१—नन्तव्य इत्यपिपाठ ।

सर्वाङ्ग सुन्दरो वाग्मी, सकली-करण-क्षम ।
स्पष्टाक्षरश्च मन्त्रज्ञो, गुरुभक्तो विशेषत ।।

श्रावकान् श्राविकाश्चैव, योगिनश्चार्यिकास्तथा ।
चतुर्विधं पर सघ, समाह्वयेत् सुभक्तित ।।

पूजा करण - शुद्धेन, कार्या सर्वज्ञ-सद्मनि ।
ततोऽर्चनं श्रुतस्यापि, गुरो पादार्चनं तत ।।

कार्यं सर्वज्ञ - पूजाया , प्रारम्भे सर्वसिद्धिदम् ।
अनेन विधिना भव्यै , पूजा कार्या निरन्तरम् ।।

रच - यन्नर्हंता पूजा - पीठिका पुण्यमाप्नुयात् ।
फलन्ति सर्व-कार्याणि, विघ्नराशि क्षय व्रजेत् ।।

इति पीठिका समाप्ता

●●●

श्री वृषभदेव स्तुति

(स्रग्धरावृत्तम्)

श्रीमद्देवेन्द्र-वन्द्यौ, जिनवरचरणौ, ज्ञान-दीप प्रकाशौ ।
लोकालोकावकाशौ, भवजलधिहरौ, सतत भव्यपूज्यौ ।।
नत्वा वक्ष्ये सुपूजा, वृषभ जिनपते, प्राणिना मुक्तिहेतु ।
यस्मात्ससारपार, श्रयति स मनुजो, भक्तियुक्त सदाप्त ।।

(वसन्त तिलकावृत्तम्)

श्री नाभिराजतनुज शुभमिष्टि नाथ,
पापापह मनुजनाग सुरेश सेव्यम् ।
ससार - सागर - सुपोत सम पवित्र,
वन्दामि भव्य सुखद वृषभ जिनेश ।।

यम्यात्र नाम जपत पुरुषस्य लोके,
पाप प्रयाति विलय क्षणमात्रतो हि ।
सूर्योदये सति यथा तिमिरस्तथास्त,
वन्दामि भव्य सुखद वृषभ जिनेश ।।

सर्वार्थसिद्धि निलयाद्भुवि यस्य पुण्यात्,
गर्भावतार - करणोऽमर - कोटि वर्गै ।
वृष्टि कृता मणिमयी पुरुदेशतस्त,
वन्दामि भव्य सुखद वृषभ जिनेश ।।

जन्मावतारसमये सुरवृन्द वन्द्यै,
भक्त्यागतै परमदृष्टितया नतस्तै ।
नीत्वा सुमेरुमभिवन्द्य सुपूजितस्त,
वन्दामि भव्यसुखद वृषभ जिनेश ।।

षट्कर्म-युक्तिमवदर्श्य दया विधाय,
सर्वा प्रजा जिन धुरेण वरेण येन ।
सजीविता सविधिना विधिनायक त,
वन्दामि भव्यसुखद वृषभ जिनेशम् ।।

दृष्ट्वा सकारणमर शुभदीक्षिताङ्ग,
कृत्वा तप परममोक्षपदाप्ति हेतुम् ।
कर्मक्षय परिकृत भुवि येन त हि,
वन्दामि भव्य सुखद वृषभ जिनेशम् ।।

ज्ञानेन येन कथित सकल सुतत्त्व,
दृष्ट्वा स्वरूपमखिल परमार्थ-सत्य ।
तद्दर्शित तदपि येन सम जनेभ्यो,
वन्दामि भव्य सुखद वृषभ जिनेशम् ।।

इन्द्रादिभि रचितमिष्टिविधि यथोक्त,
सत्प्रातिहार्यममल सुखिन मनोज्ञ ।
यस्योपदेशवशत सुखता नरस्य,
वन्दामि भव्य सुखद वृषभ जिनेशम् ।।

पचास्तिकाय षड्द्रव्यसु-सप्त तत्त्व—,
त्रैलोक्यकादि विविधानि विकासितानि ।
स्याद्वाद रूप कुसुमानि हि येन त च,
वन्दामि भव्य सुखद वृषभ जिनेशम् ॥

कृत्वोपदेशमखिल जिन वीतरागो,
मोक्ष गतो गत विकार - पर - स्वरूप ।
सम्यक्त्व मुख्यगुण काष्टक सिद्धकस्त्व,
वन्दामि भव्य सुखद वृषभ जिनेशम् ॥

विविध-विभव-कर्ता, पाप-सन्ताप हर्ता,
शिवपद सुख-भोक्ता, स्वर्ग-लक्ष्म्यादि-दाता ।
गणधर-मुनि-सेव्य, 'सोमसेनेन' पूज्य,
वृषभ जिनपति श्री, वाछिता मे प्रदद्यात् ॥

इद स्तोत्र पठित्वा हृदयास्थित सिंहासनस्योपरि पुष्पाजलिंक्षिपेत् ।

●●●

अथ स्थापना

मोक्षसौख्यस्य कर्तृणा, भोक्तृणां शिवसम्पदाम् ।
आह्वानन प्रकुर्वेऽह, जगच्क्षान्ति - विधायिनाम् ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्री वृषभजितेन्द्रदेव ! ममहृदये अवतर अवतर सवौषट्-इत्याहृवाननम् ।

देवाधिदेव वृषभ जिनेन्द्र, इक्ष्वाकुवशस्य पर पवित्र ।
सस्थापयामीह पुर प्रसिद्ध, जगत्सुपूज्य जगतापतिं च ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्री वृषभजिनेन्द्रदेव ! ममहृदये तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ.-इति स्थापनम् ।

कल्याणकर्ता, शिवसौख्यभोक्ता, मुक्ते सु-दाता, परमार्थयुक्त ।
यो वीतरागो, गतरोपदोप, तमादिनाथ, निकट करोमि ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महाबीजाक्षरसम्पन्न ! श्री वृषभजिनेन्द्रदेव ! ममहृदयसमीपे सन्निहितोभव भव वषट् । इति सन्निधिकरणम् ।

अथाष्टकम्

मन्दाक्रान्ता वृत्तम्

गागेया यमुना हरित्सुसरिताम्, सीतानदीया तथा ।
क्षीराब्धि प्रमुखाब्धि तीर्थमहिता, नीरस्य हैमस्य च ॥
अम्भोजीय पराग वासित महद्गन्धस्य धारा सती ।
देया श्रीजिनपादपीठ कमलस्याग्र सदा पुण्यदा ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय जलम् ।

श्री खण्डाद्रिगिरौ भवेन गहने, ऋक्षै मुवृक्षैर्घनै ।
श्री खण्टेन सुगन्धिना भवभृता, सन्ताप-विच्छेदिना ॥
काश्मीर प्रभवैश्च कुकुमरसै, घृष्टेन नीरेण वै ।
श्री माहेन्द्र नरेन्द्र सेवित पद, सर्वज्ञदेव यजे ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय चन्दनम् ।

श्री शाल्युद्भवतन्दुलै सुविलसद्गन्धै जंगल्लोभकै ।
श्री देवाब्धि-सरूप-हार-धवलै नेत्रै र्मनोहारिभि ॥
सौधौतैरति शुक्ति जाति मणिभि, पुण्यस्य भागैरिव ।
चन्द्रादित्यसमप्रभ प्रभु महो, सचर्ययामो वयम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयास्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय अक्षतम् ।

मन्दाराब्ज - सुवर्ण - जाति - कुसुमै , सेन्द्रीयवृत्तोद्भवै ।
येषां गन्धविलुब्ध-मत्त-मधुपै , प्राप्त प्रमोदास्पदम् ॥
मालाभि प्रविराजिभि जिन ! विभोर्देवाधि देवस्यते ।
सचर्चे चरणारविन्द-युगल, मोक्षार्थिना मुक्तिदम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय पुष्पम् ।

शाल्यन्न घृतपूर्णसर्पिसहित, चक्षुर्मनोरजकम् ।
सुस्वादु त्वरितोद्भव मृदुतर, क्षीराज्यपक्व वरम् ॥
क्षुद्रोगादिहर सुबुद्धिजनक, स्वर्गापवर्ग प्रदम् ।
नैवेद्य जिन-पाद-पद्म-पुरत , सस्थापयेऽह मुदा ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय नैवेद्यम् ।

अज्ञानादि-तमोविनाशन-करै, कर्पूरदीप्तै वरै ।
कार्पासस्य विवर्तिकाग्रविहितै , दीपै प्रभाभासुरै ॥
विद्युत्कान्ति-विशेष-सशय-करै , कल्याणसम्पादकै ।
कुर्यादार्तिहरालिका जिन ! विभो ! पादाग्रतो युक्तित ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय दीपम् ।

श्रीकृष्णागरु-देवदारु-जनितै धूमध्वजोद्वर्तिभि ।
आकाश प्रति व्याप्त धूमपटलै आह्वानितै षट्पदै ॥
य शुद्धात्मविलुब्धकर्मपटलोच्छेदेन जातो जिन ।
तस्यैव क्रमपद्मयुग्मपुरत , सन्धूपयामो वयम् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय धूपम् ।

नारिंगाम्र-कपित्थ-पूग-कदली,—द्राक्षादि-जातै फलै ।
चक्षुश्चित्तहरै प्रमोदजनकै, पापापहै र्देहिनाम् ॥
वर्णाढ्यै मधुरै सुरेशतरुजै , खर्जूर पिण्डैस्तथा ।
देवाधीश-जिनेश-पाद-युगल, सम्पूजयामि क्रमात् ॥

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय फलम् ।

नीरैश्चन्दन-तन्दुलै सुसघनै, पुष्पै प्रमोदास्पदै ।
नैवेद्यै नवरत्नदीपनिकरै, र्धूमैस्तथा धूपजै ।।
अर्घ्यं चारुफलैश्च मुक्तिफलद, कृत्वा जिनाङ्घ्रि-द्वये ।
भक्त्या श्रीमुनिसोमसेनगणिना, मोक्षोमया प्रार्थित ।।

ॐ ह्रीं परमशान्तिविधायकाय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनचरणाय अर्घ्यम् ।

जिनेन्द्र पादाब्ज युगस्य भक्त्या, जिनेन्द्रमार्गस्य सुरक्षपाल ।
सम्यक्त्वयुक्त गुणरश्मिपूर्ण, गोवक्त्रयक्ष परिपूजयामि ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभदेवपादारविन्द सेवक गोवक्त्रयक्षाय
आगत विघ्ननिवारकाय अर्घ्यम् ।

चक्रेश्वरी जैनपदारविन्द - सहानुरक्ता जिनशासनस्थाँ ।
विघ्नौघहन्त्री-पुखधामकर्त्री, भक्त्या यजे ता सुखकार्य कर्त्रीम् ।।

ॐ ह्रीं जिनमार्गरक्षाकरायै दारिद्रनिवारिकायै
श्री चक्रेश्वर्यै अर्घ्यम् ।

भक्तामर स्तोत्र

अष्टदल कमल पूजा

नम्रासुरासुर - नृनाथ शिरासि यस्य,
सम्बिम्बितानि नखविंशति दर्पणेऽस्मिन् ।
त विश्वनाथ मभिवन्द्य सुपूजयामि,
पक्वान्न - पुष्प - जल - चन्दन तन्दुलाद्यै ।।

ॐ ह्रीं विश्वविघ्नहराय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय हृदयस्थिताय
श्री वृषभजिनाय अर्घ्यम् ।

रम्यै सुसस्तवन - कोटिभि - रादरेण,
देवैं,स्तुतो विविधशस्त्रयुतै जिनो य ।
ससार - सागर — सुतारण - नौसमान,
पूजामि चारुचरु - चन्दन - पुष्पतोयै ॥

ॐ ह्रीं नानामरसस्तुताय सकलरोगहराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्री वृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥२॥

युक्त्या क्रियास्तवनमादिजिनस्य मूढो,
मत्या विनापि बुधसेवित पादकस्य ।
सम्पादयामि मनसीह कृतो विचार,
पूजारत सुचिरत सुखदायकस्य ॥

ॐ ह्रीं मत्यादिसुज्ञानप्रकाशनाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्री वृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥३॥

चन्द्रस्य कान्तिसदृशान् परमान् गुणौघान्,
कोऽसौ पुमान् तव विभो ! कथितु समर्थ ।
तस्माद् विधाय जिनपूजनमेव कार्यम्,
मुक्ति व्रजामि वरभक्ति जवात् देव !

ॐ ह्रीं नानादुखसमुद्रतारणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्री वृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥४॥

मूढोऽप्यह जिनगुणेषु सदानुरक्त,
भक्ति करोमि मतिहीन उदार-बुद्धया ।
कार्यस्य सिद्धिमुपयाति सदैव पुण्यात्,
तस्माद्यजामि जिनराज पदारविन्दम् ॥

ॐ ह्रीं सकलकार्यसिद्धिकराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्री वृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥५॥

ये सन्ति शास्त्रसबला प्रहसन्ति ते मा,
भक्त्या तथापि जिनभक्तिवशात् करोमि ।
पूजाविधि जिनपते सुरचित्तचौर,
स्वर्गापवर्गसुखद परम गुणौघम् ॥

ॐ ह्रीं याचितार्थप्रतिपादनशक्तिसहिताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्री वृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥६।

स्तोत्रेण नाथ ! विलय क्षणमात्रतो यत्,
पाप प्रयाति पठता भवता नरस्य।
मुक्तै सुख स हि भुनक्ति निवार्य कुष्ट,
पूजा करोमि सतत च ततो जिनस्य ॥

ॐ ह्रीं सकलपापकुष्टनिवारणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्री वृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥७॥

ज्ञात्वा नया सुरचिता जिननाथ - पूज्या,
पूजा विधाय पुरुष शिवधाम याति।
सम्यक्त्वमुख्य - गुणकाष्टक - धारिसिद्ध ,
सिद्ध भवेत्स भविना भवतापहारी ॥

ॐ ह्रीं अनेकसकटससारदुखनिवारणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्री वृषभजिनाय अर्घ्यम् ॥८॥

जलकुमुम सुगन्धै - रक्षतै दीपधूपै ।
विविध - फलनिवेद्यै - रर्चयामीह देवम् ॥
सुरनरवरसेव्य दोहदाना वरेश ।
शिवसुखपदधाम प्राणिना प्राणनाथम् ॥

ॐ ह्रीं अष्टदलकमलाधिपतये श्रीवृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।

भक्तामर स्तोत्र

षोडस दलकमलपूजा

तव गुणावलि गान विधायिनो, भवति दूरतर दुरितास्पद ।
तव कथापि शिवाढ्य विधायिका, कुरु जिनार्चन शुभदायक ॥

ॐ ह्रीं सकलमनोवाछितफलदात्रे क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय हृदयस्थिताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥९॥

नहि विभोऽद्भुतमत्तसमप्रभो, भवति यो भविना भुवि भक्तिद ।
जिनवरार्चनतोऽर्चनतार्चित, फलमिद भविता कथित जिनै ॥
ॐ ह्रीं अर्हज्जिनस्मरणजितसम्भूताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१०॥

भवति दर्शनमेवमिते सति, भवति यादृश एव सुतोषक ।
न हि तथा परत क्वचिदेव तत्, सततनेव करोमि तवार्चनम् ॥
ॐ ह्रीं सकलतुष्टिपुष्टिकराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥११॥

जिन विभो! तव रूपमिव क्वचित्, न भवतहि जने विभवान्विते ।
भवति पापलय जिन दर्शनात्, जिन! सदार्चनता प्रकरोमि ते ॥
ॐ ह्रीं वांछितरूपफलशक्तये क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१२॥

सुरनरोरग - मान सहारक, सुवदन शशि तुल्य मत त्वक ।
जगति नाथ! जिनस्य तवात्र भो, परियजे विधिनात्र जिनमुदा ॥
ॐ ह्रीं लक्ष्मीसुखविधायकाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यम् । १३॥

तव गुणान् हृदि धारकमानवो, भ्रमति निर्भयतो भुवि देववत् ।
शशिसमै जलचन्दन मुख्यकै, परियजामि नतो जिनपादुकाम् ॥
ॐ ह्रीं भूतप्रेतादिभयनिवारणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१४॥

अमरनारिकटाक्षशरासनै - र्न चलितो वृषभ स्थिर मेरुवत् ।
शिवपुरे उषित च जिनैर्नुत, परियजे स्तवनैश्च जलादिभि ॥
ॐ ह्रीं मेरुवन्मनोबलकरणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥१५॥

जगति दीपक इव जिन! देवराट्, प्रकटित सकल भुवनत्रय ।
पद-सरोज - युग तु समर्चये, विमलनीर मुखाष्टविधैस्तव ॥
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यलोकवशङ्कराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थितमाय श्री वृषभदेवाय अर्घ्य ॥१६॥

त्वमिह देवहरि जिननायक, प्रभुवर यतिराज - मुनीश्वर ।
त्वदभिधानमहो जगता प्रभो ! प्रतिक्षण भवतु प्रतिमानसम् ॥
ॐ ह्रीं मनोवांछितफलदायकाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
हृदयस्थिताय श्री वृषभदेवाय अर्घ्यम् ॥२४॥

हत्वा कर्मरिपून् बहून् कटुतरान् प्राप्त पर केवल ।
ज्ञान येन जिनेन मोक्षफलद, प्राप्त द्रुत धर्मजम् ॥
अर्घेणात्र सुपूजयामि जिनप श्री सोमसेनस्त्वहं ।
मुक्ति श्रीप्त्वभिलाषया जिन विभो !, देहि प्रभो वांछितम् ॥

ॐ ह्रीं हृदयस्थितषोडसदलकमलाधिपतये श्री वृषभदेवायार्घ्यम् ॥

भक्तामर-स्तोत्र

चतुर्विंशति दल-कमलपूजा

बुद्ध प्रबुद्धो वरबुद्धराजो, मुक्ते र्विधानाद्धविना विधाता ।
सौख्य प्रयोगात् जिन ! शंकरोऽसि, सर्वेषु मर्त्येषु सदोत्तमस्त्वम् ॥
ॐ ह्रीं षड्दर्शनपारङ्गताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२५॥

लोकार्तिनाशाय नमोऽस्तु तुभ्य, नमोऽस्तु तुभ्य जिनभूषणाय ।
त्रैलोक्यनाथाय नमोऽस्तु तुभ्य, नमोऽस्तु तुभ्य भवतारणाय ॥
ॐ ह्रीं मानाद्रु खविलीनाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२६॥

किमद्भुत दोष समुच्चयेन,—कृत्वाऽत्र गर्वं जिन ! सश्रितोऽसि ।
स्वप्नेऽपि न त्व गुणराशिधामा, दोषाश्रितो मर्त्य समाश्रयेण ॥
ॐ ह्रीं सकलदोषनिर्मुक्ताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२७॥

अशोकवृक्षा सुकृता विचित्रा, छायाघना नाथ ! सुपुण्ययोगात् ।
तवोपरि प्रीतजनेषु नित्य, सुखप्रदा न्यू परमार्थशोभा ॥
ॐ ह्रीं अशोकतरुविराजमानाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२८॥

सिंहासन प्राणिहितङ्कर यत्, सुशोभते हेममय विचित्र ।
सहस्रपत्रोपरिकर्णिकायाम्, विराजते जैनतनु सुशोभ ॥
ॐ ह्रीं मणिमुक्ताखचितसिंहासनप्रातिहार्ययुक्ताय क्लीं महाबीजाक्षर
सहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२९॥

गङ्गातरङ्गाभविराजमान, विभ्राजते चामरचारयुग्म ।
सुदर्शनाद्री गतनिर्झर वा, तनोति देशेऽत्र-महाविकाशम् ॥
ॐ ह्रीं चतुःषष्टिचामरप्रातिहार्ययुक्ताय क्लीं महाबीजाक्षर
सहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३०॥

त्रैलोक्यराज्य कथित प्रमाण, छत्रत्रय चन्द्र सामन कान्ति ।
मुक्ताफलै सयुतक सुशोभ विराजते नाथ ! तवोपरिष्टात् ॥
ॐ ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्ययुक्ताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३१॥

वादित्रनादो ध्वनतीह लोके, घनाघनध्वान-समप्रसिद्ध ।
आज्ञा त्रिलोके तव विस्तराप्ता, पूज्या करोम्यत्र जिनेश्वरस्य ॥
ॐ ह्रीं त्रैलोक्याज्ञाविधायिने क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३२॥

मन्दार - कल्पद्रुम-पारिजात - चम्पाब्ज-सन्तानक - पुष्पवृष्टि ।
मरुत्प्रयाता जलबिन्दुमुक्ता, यस्य प्रभावाच्च तमर्चयामि ॥
ॐ ह्रीं समस्तपुष्पजातिवृष्टिप्रातिहार्याय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३३॥

भामण्डल सूर्यसहस्रतुल्य चक्षुर्मनोऽल्हादकर नराणाम् ।
सम्बाधिताज्ञान-तमोवितान, तत्सयुत देव ! सुपूजयामि ॥
ॐ ह्रीं कोटिभास्करप्रभामडितभामण्डलप्रातिहार्याय क्लीं महाबीजाक्षर
सहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३४॥

दिव्यध्वनिर्योजन सात्र शब्द, गम्भीरमेघोद्भव - गर्जनाक ।
सर्वप्रभाषात्मक धीर नाद, य सस्तुत देव ! तवास्य भूत ॥
ॐ ह्रीं जलधरपटलगर्जितसर्वभाषात्मकयोजनप्रमाणादिव्यध्वनि प्रातिहार्याय
क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३५॥

विहारकाले रचयन्ति देवा, पद्मानि पाद प्रति सप्त सप्त ।
सम्प्राप्य पुण्य शिवश व्रजन्ति, तव प्रभावेन-करोमि पूजा ॥
ॐ ह्रीं पादन्यासे पद्मश्रीयुक्ताय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३६॥

लक्ष्मी विभो देव ! यथा तवास्ति, तथा न हर्यादिषु नायकेषु ।
तेजो यथा सूर्यविमानकस्य, तारागणस्य प्रभवतीह नो वा ॥
ॐ ह्रीं धर्मोपदेशसमये समवशरणादिलक्ष्मीविभूति विराजमानाय
क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३७॥

मत्तोऽपि हस्ती मदलीलया च, नायाति नाम्ना निवसन्मुखे हि ।
ससारपाथोनिधितारकस्य, देवाधिदेवस्य जिनस्य भर्तुः ॥
ॐ ह्रीं हस्त्यादिगर्वद्धुरभयनिवारणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३८॥

उत्तुङ्ग पुच्छेन विराजमान, आरक्तनेत्रै रदनै विशिष्ट. ।
को केशरी देव ! सुनाममात्रात्, करोति क्रीडा तु विडालवत्स ॥
ॐ ह्रीं युगादिदेवनामप्रसादात् केशरिभयविनाशकाय क्लीं महाबीजाक्षर
सहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥३९॥

त्वन्नामतोयेन कृता सुधारा, वह्निप्रताप हरति क्षणात्सा ।
भवाग्निताप-प्रलयङ्करस्त्व, अतस्तवेष्टि विदधे वरार्घ्ये ॥
ॐ ह्रीं ससाराग्नितापनिवारणाय क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४०॥

क्रोधेनयुक्त फणिराजसर्प, क्रोध परित्यज्य प्रलापवान्स ।
करोति दूर वरदेवनाम्ना, नानाविध-प्राणनिधानदानात् ॥
ॐ ह्रीं त्वन्नामनागदमनीशक्तिसम्पन्नाय क्लीं महाबीजाक्षर
सहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४१॥

सङ्ग्रामभूमौ मृतभूरिजीवे, मातङ्ग-चक्राश्वपदातिमध्ये ।
सुखेन चायान्ति विजित्य शत्रून्, सदामनोऽब्जे मुदितोयजेतम् ॥
ॐ ह्रीं सग्राममध्ये क्षेमङ्कराय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४२॥

दन्ताग्रभिन्नेषु सुमस्तकेषु, परस्पर यत्र गजाश्वयुद्धे ।
मनुष्य आयाति सुकौशललेन, त्वन्नाममंत्र स्मरणाज्जिनेश ।।
ॐ ह्रीं वनगजादिभयनिवारणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।।४३।।

कल्पान्तवातेन गत विकार, स चक्रमक्रादिक जीवपूर्ण ।
अब्धि समुत्तीर्य नरो भुजाभ्यां, प्रयाति शीघ्र तव पादचित्त ।।
ॐ ह्रीं ससाराब्धितारणाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।।४४।।

जलोदरै कुष्टकुशूलरोगै, शिरोव्यथा - व्याधि बहुप्रकारै ।
सुपीडिताना भवति क्षणे हि, विरोगिता त्वत्स्मरणात्प्रभोऽत्र ।।
ॐ ह्रीं दाहतापजलोदराष्टदशकुष्टसन्निपातादिरोगहराय क्लीं
महाबीजाक्षरसहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।।४५।।

केनापि दुष्टेन नृपेण धर्मी सम्बन्धित शृङ्खलयानरश्च ।
स त्वा जव मुचति बन्धतोऽद्य, ससार-पाश प्रलय नमामि ।।
ॐ ह्रीं नानाविध कठिनबन्धनदूरकरणाय क्लीं महाबीजाक्षर
सहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।।४६।।

रोगज्वरा कुष्टभगन्दराद्या, जलाग्निघोरा विविधाश्चविघ्ना ।
शीघ्र क्षय यान्ति जिनेशनाम, सजप्यमानस्य नरस्य पुण्यात् ।।
ॐ ह्रीं बहुविध विघ्नविनाशाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।।४७।।

भक्तामराख्य स्तवन यजामि, श्रीमानतुङ्गेन कृत विचित्र ।
कवित्वहीनो मतिशास्त्रहीनो, भक्त्यैकया प्रेरित सोमसेन ।।
ॐ ह्रीं सकलकार्यसाधनसमर्थाय क्लीं महाबीजाक्षरसहिताय
श्री वृषभजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ।।४८।।

नाना - विघ्न - हर प्रतापजनक, ससार पारप्रदम् ।
सस्तुत्य श्रीद करोमि सतत, श्री सोमसेनोऽप्यहम् ।।
पूर्णार्घ्येण मुदा सुभव्य सुखद, आदीश्वराख्यापर ।
हीरापण्डितसूपरोधवशत स्तोत्रस्य पूजाविधिम् ।।
ॐ ह्रीं हृदयस्थिताय चतुर्विशति-दलकमलाधिपतये क्लीं महाबीजाक्षर
सहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यम् ।।४६।।

वर सुगन्ध-सुतन्दुल पुष्पक, प्रवरमोदक - दीपक - धूपकै ।
फलभरै परमात्म - प्रदत्तक, प्रवियजेजयद धनद जिनम् ।।

ॐ ह्रीं हृदयस्थिताय अष्टचत्वारिंशद्दलकमलाधिपतये क्लीं महाबीजाक्षर सहिताय श्री वृषभजिनेन्द्राय महापूर्णार्घ्यम् ।।५०।।

जलगन्धाष्टभिर्द्रव्यै — युगादिपुरुष यजे ।
सोमसेनेन ससेव्य, तीर्थ - सागर चर्चितम् ।।

●●●

ऋद्धि-अर्घ्य

ॐ ह्रीं अर्हं णमो जिणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् । १ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् । २ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् । ३ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि जिणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् । ४ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणतोहि जिणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् । ५ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठ बुद्धीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् । ६ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम । ७ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पादानुसारिण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् । ८ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सभिन्नसोदराण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् । ९ ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयबुद्धीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।१०।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेय बुद्धीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।११।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहि-बुद्धीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।१२।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।१३।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।१४।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।१५।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदस पुव्वीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।१६।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठागमहानिमित्तकुशलाण झ्रौं झ्रौं नम स्वा० अ० ।१७।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयणयट्ठिपत्ताण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।१८।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।१९।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२०।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्ण समणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२१।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगास-गामिण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२२।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसी-विसाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२३।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठि-विसाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२४।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्ग-तवाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२५।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्त-तवाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२६।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्त-तवाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२७।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महा-तवाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२८।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर-तवाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।२९।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३०।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुण परक्कमाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३१।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणवभचारिण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३२।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोमहि पत्ताण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३३।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३४।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहि पत्ताण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३५।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहि पत्ताण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३६।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि पत्ताण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३७।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणवलीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम ।३८।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वच-वलीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।३९।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो काय-वलीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।४०।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीर-सवीण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।४१।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पि सवाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।४२।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।४३।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीय-सवाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम ।४४।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अयपीण महाणसाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम ।४५।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।४६।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सिद्धिदायाण वड्ढमाणाण झ्रौं झ्रौं नम स्वा० अ० ।४७।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महमाइण झ्रौं झ्रौं नम स्वाहा अर्घ्यम् ।४८।

●●●

श्री भक्तामर महाकाव्यमंडल-पूजा-जयमाला

(त्रोटक-वृत्तम्)

शुभदेश-शुभङ्कर-कौशलक, पुरुपट्टन - मध्य - सरोज - सम ।
नृप-नाभि-नरेन्द्र-सुत सुधिय, प्रणमामि सदा वृषभादि-जिन ॥

कृत-कारित-मोदन-मोदधर, मनसा - वचसा - शुभकार्य पर ।
दुरिता-प्रहर चामोद-कर, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

तव देव सुजन्म दिने परम, वर निर्मित-मङ्गल-द्रव्यशुभ ।
कनकाद्रिसु-पाण्डुक-पीठगति, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

व्रतभूषण - भूरि - विशेष तनु, करकङ्कण - कज्जल - नेत्रचण ।
मुकुटाब्ज-विराजित-चारुमुख, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

ललितास्य-सुराजित-चारुमुख, मरुदेवि-समुद्भव-जातसुख ।
सुरनाथ सुताण्डव नृत्यधर, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

वर-वस्त्र-सरोज-गजाश्वपद, रथ-भृत्यदल चतुरङ्गजद ।
शिव-भीरु-सुभोग-सुयोगधन, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

गतराग सुदोष-विराग-कृति, सु-तपोबल-साधित मुक्तिगति ।
सुख-सागर-मध्य-सदानिलय, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

सुसमोसरणे रति - रोगहर परिसद्दश युग्म सुदिव्य - ध्वनि ।
कृत - केवल ज्ञान विकाशतन, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

उपदेश सुतत्त्व - विकाशकर, कमलाकर - लक्षण - पूर्ण-भर ।
भवि त्रासित-कर्म-कलङ्क हर, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

जिन ! देहि सुमोक्षपद सुखद, घनघाति-घनाघन-वायुपद ।
परमोत्सवकारित-जन्म-दिन, प्रणमामि सदा वृषभादि जिन ॥

ससार - सागरोत्तीर्ण, मोक्ष सौख्य - पदप्रद ।
नमामि सोमसेनाच्र्यम्, आदिनाथ जिनेश्वरम् ॥

ॐ ह्रीं पूजाकर्त्तु कर्मनाशनाय आगतविघ्नभय निवारणाय अर्घ्यम् ।

स भवति जिनदेव पच कल्याणनाथ,
कलिलमल सुहर्न्ता, विश्वविघ्नौघहन्ता।
शिवपद सुखहेतु नाभिराजास्य मूनु,
भव-जलनिधिपोतो, विश्वमोक्षायनाथ ॥
इत्याशीर्वाद (परिपुष्पाजलि क्षिपेत्)

दीर्घायुरस्तु शुभमस्तु सुकीर्त्तिरस्तु,
सद्बुद्धिरस्तु - धनधान्य - समृद्धिरस्तु।
आरोग्यमस्तु विजयोऽस्तु महोऽस्तु पुत्र,—
पौत्रोद्भवोऽस्तु तव सिद्धपति प्रसादात् ॥
पुष्पाजलि-क्षिपेत्

भक्तामर-स्तोत्र पूजा

ऋषभ-स्तवन

कल्याण कीर्तिममल कमलाकर त
मर्चिचिदुज्ज्वलमह प्रकटीकृतार्थं।
उच्चैर्निधाय हृदि वीरजिन विशुद्ध्यै,
शिष्टेष्टमादि परमेष्ठि स्तवीमि[1] ॥१॥

दीर्घजव - जवविवर्त ननतनार्तान,
गात्रि प्रकतन-विकर्तन कीर्तनश्री।
उन्निद्रमान्द्रतम्भद्र समुद्रचन्द्र,
मन्त्र पुर्ण भतु शाश्वत मङ्गल त ॥२॥

श्रीमाद्गुर्र्मिति मुग्र न कृत न ताग।
प्राग ग्रनम्य गणिता धरणी पदैश्च।
दना स्तोतु मुग्रन मतिमम नेतिधार्यं[2]
माक्षाय युक्तिघटको भगवान्स्वमेव ॥३॥

---

१ प्रवक्ष्येत्यपि पाठ । २ नतिधार्ष्टयं इत्यपि पा ।

सद्वाग गोचर भवत्सहज स्वरूप,
मस्पर्शतो मम गिरो मम पुण्यदा स्यु ।
कौतस्कुतान्यपि जलानि विषच्छदानि,
जायन्त एव हि गरुत्मणित प्रसगात् ।।४।।

उच्चैर्भवन्तमवलम्ब्य विधीयमान,
स्तुत्यादिक किमपि यत्तदिहात्मने स्यात् ।
कृत्वा करेऽब्दममल हिविरच्यमान,
नेपथ्यमुत्तम गुणाय निजस्य नास्य ।।५।।

इति स्तुति पठित्वा मडलोऽपरि पुष्पाजलि क्षिपेत् ।

स्थापना

देवाधिदेव वृषभ जिनेश, इक्ष्वाकु वशस्य पर पवित्र ।
सस्थापयामहि पुर प्रसिद्ध, जगत्सुपूज्य जगता पति च ।।

ॐ ह्रीं देवाधिदेव वृषभ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर सवौषाट् इत्याह्वानन । अत्र तिष्ठ ठ ठ स्थापन । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरण ।

अनच्छाच्छताकारि सगच्छदच्छ,
सरूपैस्सुभूपैरिवानन्द कूपै
अजीवैर्जगज्जीव जीवैरिवोच्चै,
यजे आदिनाथ समाध्यम्बुकद ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभ तीर्थंकराय जल निर्वपामीति स्वाहा ।

सुगन्धैस्सुगन्धी कृताशेषगधै,
प्रबन्ध प्रबन्धैस्सुकर्पूर पूरै ।
अमाय कषाय स्वकाय प्रहाय,
यजे देवमाद्य समाध्यम्बुकन्द ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभ तीर्थंकराय चन्दन निर्वापामीति स्वाहा ।

क्षतैस्त्वक्षतैं — रक्षमैरक्षताप्तैं,
क्षतावेत पक्षैरिव श्वेत पक्षैं ।
विपक्षाक्षपत्त क्षिपात्ति क्षपेश,
यजे देवमाद्य समाध्याम्बुकन्द
ॐ ह्रीं श्री वृषभ तीर्थंकराय अक्षत निवर्पामीति स्वाहा ।

अराजत्वराजत्सुराजीव राजी,
लनत्केतकी नातजात्यादि पुष्पैं ।
असग स्वल्प चिदानद कूप,
यजे देवमाद्य समाध्यम्बुकद ।।
ॐ ह्रीं श्री वृषय तीर्थ कराय पुष्प निर्वपामीति स्वहा ·

शताच्छिद्र फेण्यर्द्ध चन्द्रै पुटिभि-
र्लसद्वयज्जनाशल्य शाल्योद नाद्यैं ।
परित्यक्त सङ्ग कृतानगभग,
यजे देवमाद्य समाध्यम्बुकद ।।
ॐ ह्रीं श्री वृषभ तीर्थं कराय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा ।

सुपात्रस्थित स्नेह वृत्ति प्रकाशैं,
प्रदीप्तैं प्रदीपीकृताशाङ्गनास्यैं ।
लसत्सज्जनामैर्गुणाशून्य मध्यैं,
यजे देवमाद्य समाध्यम्बुकद ।।
ॐ ह्रीं श्री वृषभतीर्थंकराय दीप निर्वपामीति स्वाहा ।

स्वमग्नौ विनिक्षिप्य दौगन्ध्यवन्ध,
दशाशान्यमुच्चैं करोति त्रिसन्ध्यञ्च ।
तदुद्दाम कृष्णागरु द्रव्य धूपैं,
यजे देवमाद्य समाध्यम्बुकद ।।
ॐ ह्रीं श्री वृषभतीर्थंकराय धूप निर्वपामीति स्वाहा ।

लसज्जम्बु जम्बीर नारङ्ग निम्बु-
प्रपक्वोरुरम्भात्र पूग प्रमुख्यैं ।
फलै मत्फलीभूत मार्ङ्गवृक्ष,
यजे देवमाद्य समाध्यम्बुकद ।।
ॐ ह्रीं श्री वृषभतीर्थंकराय फल निर्वपामीति स्वाहा ।

जगत्ताप पाप व्यपोह प्रभाव,
सर्ववादिनाथ सहर्ष यजेद्य ।
विकल्पानुयात, स्वरूपैक मुक्ति,
क्षटत्येति मसारवल्ली निहृत्य ।।

ॐ ह्रीं श्री वृषभतीर्थंकराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

यस्यात्र नाम जपत पुरुषस्य लोके,
पाप प्रयाति विलय क्षणमात्रतो हि ।
सूर्योदये सति यथा तिमिरस्तपान्त,
वदामि भव्य मुप्रद वृषभ जिनेश ।।

इत्याशीर्वाद (परिपुष्पाजंलि क्षिपेत्)

●●●

ॐ ह्रीं प्रणतदेव समूह मुकुटाग्रमणिद्योतकाय महापापान्धकार विनाशनाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् नि० स्वा० ।।१।।

ॐ ह्रीं गणधरचारण समस्त ऋषीन्द्र-चन्द्रादित्य सुरेन्द्र नरेन्द्र व्यंतरेन्द्र नागेन्द्र चतुर्विध मुनीन्द्र स्तुत चरणारविंदाय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।२।।

ॐ ह्रीं विगत बुद्धि गर्वापहार सहित श्रीमन्मानतुगाचार्य भक्तिसहिताय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ।।३।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवनगुण समुद्र चन्द्रकान्तिमणिसेज शरीर समस्त सुरनाथस्तुत श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।४।।

ॐ ह्रीं समस्त गणधरादि मुनिवर प्रतिपालक मृगवालवत् श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।५।।

ॐ ह्रीं जिनेन्द्रचन्द्रभक्ति सर्वसौख्य तुच्छ भक्ति वहुसुखदायकाय जिनेन्द्राय जिनादिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ।।६।।

ॐ ह्रीं अनतभव-पातक सर्व विनाशकाय तवस्तुति सौख्यदायकाय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।७।।

ॐ ह्रीं जिनेन्द्रस्तवन सत्पुरुष चिन्चमत्काराय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।८।।

ॐ ह्रीं श्री जिनपूजन स्तवन कथाश्रवणेन जगत्त्रय भव्यजीव समस्त पापौघविनाशनाय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।९।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यानुपम गुणनन्दित समस्तोपमासहिताय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ।।१०।।

ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदर्शन अनतभव संचित अघ समूह विनाशनाय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।११।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवन शान्ति स्वरूप गुण त्रिभुवन तिलकाय श्री आदिपरमेश्वाय अर्घ्यम् ।।१२।।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य विनयी रूपातिशय अनतचन्द्र तेजजितृ सदातेजपुजायमान श्री आदि परनेश्वराय अर्घ्यम् ।।१३।।

ॐ ह्री शुभगुणातिशयरूप त्रिभुवन जिन जिनेन्द्र गुण विराजमानाय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।१४।।

ॐ ह्री मेरुवद्अचल शील शिरोमणये चतुर्विधवनिता विकाररहित शील-समुद्राय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।१५।।

ॐ ह्री धूमस्नेहवर्त्यादिविघ्नरहित त्रैलोक्य परम केवल दीपकाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ।।१६।।

ॐ ह्री राहुचन्द्रपूजित निरावरण ज्योतिरूप लोकालोकित्त सदोदयाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ।।१७।।

ॐ ह्री नित्योदय रूप अगम्य राहु त्रिभुवन सर्वकला सहित विराजमानाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ।।१८।।

ॐ ह्रीं चन्द्रसूर्योदयास्त रजनी दिवा रहित परम केवलोदय सदादीप्ति विराजमानाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ।।१९।।

ॐ ह्री हरिहरादिज्ञानरहित परमज्योति केवलज्ञान सहिताय श्री आदि-परमेश्वराय अर्घ्यम् ।।२०।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवन मनोमोहन जिनेन्द्ररूपान्य दृष्टान्त रहित परम महिताय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ॥२१॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनवर माता जनित जिनेन्द्र पूर्व दिग्भास्कर केवलज्ञान भास्कराय श्री आदिब्रह्मजिनाय अर्घ्यम् ॥२२॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्य पावनादिम वर्ण परमाष्टोत्तर शतलक्षण नवशत व्यञ्जनोपेताय श्री आदिजिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥२३॥

ॐ ह्रीं ब्रह्माविष्णु श्रीकण्ठगणपति त्रिभुवन देवत्व सहिताय श्री आदि-परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥२४॥

ॐ ह्रीं बुद्धशङ्करोपधर ब्रह्मानाम महिताय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥२५॥

ॐ ह्रीं अधोलोक मध्यलोक ऊर्ध्वलोकत्रय कृताहोरात्रि नमस्कार समस्तार्त रौद्र विनाशक त्रिभुवनेश्वराय भवदधिनरणतारण समर्थाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ॥२६॥

ॐ ह्रीं श्री परमगुणाश्रितावगुणानाश्रित श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥२७॥

ॐ ह्रीं अशोकवृक्ष प्रतिहार्य महिताय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ॥२८॥

ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्य महिताय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥२९॥

ॐ ह्रीं श्री चतुःषष्टि चामर प्रातिहार्य महिताय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३०॥

ॐ ह्रीं श्री छत्रत्रयप्रातिहार्य महिताय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३१॥

ॐ ह्रीं अष्टादशकोटिवादित्र प्रातिहार्य महिताय श्री परमादि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३२॥

ॐ ह्रीं समस्त पुष्पजाति वृष्टि प्रातिहार्य सहिताय श्री परमादि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३३॥

ॐ ह्रीं श्री कोटिभास्कर प्रभामण्डित भामण्डल प्रातिहार्य सहिताय श्री परमादि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३४॥

ॐ ह्रीं जलधरपटल गर्जित ध्वनि योजन प्रमाण प्रातिहार्य सहिताय श्री परमादि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३५॥

ॐ ह्रीं हेमकमलोपरि कृत गमन देव कृतातिशय सहिताय श्री परमादि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३६॥

ॐ ह्रीं धर्मोपदेश समये समवशरण विभूति सहिताय श्री परमादि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३७॥

ॐ ह्रीं मस्तक गलितमद मुरागेन्द्र महाकुञ्जर भय विनाशकाय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३८॥

ॐ ह्रीं आदिदेव प्रसादान्महासिंहभय विनाशकाय श्री युगादिदेव परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥३९॥

ॐ ह्रीं श्री विश्व भक्षण समर्थमहाग्नि विनाशकाय जिन नाम जलाय श्री आदिब्रह्मणे अर्घ्यम् ॥४०॥

ॐ ह्रीं रक्तनयन सर्प जिननामनागदमन्यौषधये अनन्त भय विनाशकाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ॥४१॥

ॐ ह्रीं महासंग्रामभय विनाशकाय सर्वाङ्गरक्षणकराय श्री प्रथम जिनेन्द्राय अर्घ्यम् ॥४२॥

ॐ ह्रीं महारिपुयुद्धे जय विजय प्राप्तकराय श्री आदि वृषभेश्वराय अर्घ्यम् ॥४३॥

ॐ ह्रीं महासमुद्रचलितवातमहादुर्जय भयविनाशकाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ॥४४॥

ॐ ह्रीं दशताप जलधराष्टदश कुष्ठसन्निपात महारोग विनाशकाय परम-कामदेव रूप लक्ष्मीदायकादि जिनेश्वराय अर्घ्यम् ॥४५॥

ॐ ह्रीं महाबन्धन आपादकण्ठपर्यन्त वैरीकृतोपद्रव भयविघाताय श्री आदि परमेश्वराय अर्घ्यम् ॥४६॥

ॐ ह्रीं सिंह गजेन्द्रराक्षसभूतपिशाचशाकिनीरिपुज परमोपद्रव विनाशकाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ॥४७॥

ॐ ह्रीं पठन-पाठन श्रोतव्य श्रद्धावनत मानतुंगाचार्यादि समस्तजीव कल्याणदाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यम् ॥४८॥

जयमाला

अखड प्रचण्ड प्रताप स्वभावं,
निराकारमुच्चैरनन्त स्वभावम् ।
स्वभावानुभाव क्षतोद्य द्विभाव,
स्वभावाय वन्दे पर देवमाद्यम् ॥

महामोह सन्दोह गर्वोहदार,
विकार प्रचार प्रहार विचारम् ।
अनल्प विकल्प च सकल्प फल्ग,
त्यजन्त यजेद्यादि मुद्धतजल्पम् ॥

विषाय विमाय सदा निष्कपाय,
ज्वलद्राग रोषादि दोषव्यपायम् ।
अलोकं च लोकं समालोकयन्तं,
भजे नाभि सूनु समुद्योतयन्तम् ॥

जरा-जन्म मृत्यु व्यपेत गुणेत,
समुद्भूत धर्माणि सर्वं समेतम् ।
वियोग विरोग वियग व्यतीतम्,
भजे नाभि सूनु सुशर्म प्रतीतम् ॥

स्मद् द्रव्य पर्याय रूप धरन्त,
यथाख्यात चारित्र मुच्चैश्चरन्तम् ।
चिदानद कन्द जगत्ताप फन्द,
भजे नाभि सूनु मुदे वृद्ध मन्दम् ॥

गत ध्यान माल स्फुरच्चिद्विशाल,
दितारातिजाल विनष्टान्त कालम् ।
मुनि ध्येय रूप त्रिलोकैकभूप,
यजे नाभिसूनु सुखागाध-कूपम ॥

शांति-पाठ

शास्त्रोक्त विधि पूजा महोत्सव, सुरपती चक्री करें।
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे, यथाविधि पूजा रचें॥

धन-क्रिया-ज्ञान रहित न जानें, रीति पूजन नाथ जी।
हम भक्ति वश तुम चरण आगे, जोड लीने हाथ जी॥

दुख हरन, मंगल-करन, आशा-भरन पूजन जिन यही।
यह चित्त में श्रद्धान मेरे, भक्ति है स्वयमेव ही॥

तुम सारिखे दातार पाये, काज लघु जांचो कहा।
मुझ आप सम कर लेहु स्वामी, यही इक वांछा महा॥

संसार भव वन विकट में, वसु कर्म मिल आतापियो।
तिस दाह से आकुलित चिरतें, शांति-थल कहुं न लियो॥

तुम मिले शांति स्वरूप शांती, सुकरण समरथ जगपती।
वसु कर्म मेरे शान्त कर दो, शान्तिमय पंचम-गती॥

जब लों नहीं शिव लहों तबलों, देहु यह धन पावना।
सत्संग शुद्धाचरण श्रुत, अभ्यास अन्तिम भावना॥

तुम बिन अनन्तानन्त काल, गयो रुलत जग-जाल मे।
अब शरण आयो नाथ सुनकर, जोड नावत भाल मे॥

—दोहा—

कर प्रमाण के माप ते, गगन नपे किह भन्त।
त्यों तुम गुण-वर्णन करत, कवि पावे नहिं अन्त॥

टुक अवलोकन आपको, भयो धर्म अनुराग।
इक टक देखूं नित्य तो, बढ़े ज्ञान वैराग॥

धन्यो प्रभु धन्यो मथन, कथन तुम्हार अपार।
करो दया सब पै प्रभो! जावें पावें पार॥

विसर्जन-पाठ

यहां हिन्दी या संस्कृत विसर्जन पाठ बोलना चाहिए।

ॐ ह्रीं अस्मिन् भक्तामर महाकाव्य मण्डल पूजा विधान-कर्मणि आहूयमाना देवगणा स्वस्थान गच्छन्तु। अपराध क्षमायणं भवतु।

—आरती—

ओम् जय आदिनाथ देवा, ओम् जय आदिनाथ देवा॥
सुर-नर मुनि गुण गाते,
तुम कैलाशपती कहलाते,
हम दर्शन कर पाप मिटाते,
अन्तर-बाहर दीप जलाते॥
करते चरणों की सेवा, ओम् जय आदिनाथ देवा॥

श्री भक्तामर-महाकाव्य-मंडल

पूजा के माड़ने का आकार
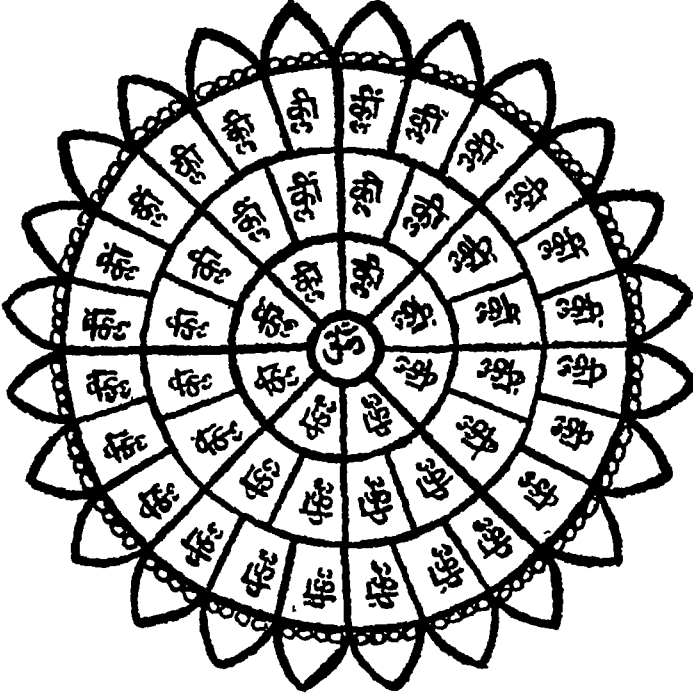
सर्वसिद्धिदायक मंत्र

ॐ ह्री क्लीं श्रीं अर्हं श्री वृषभनाथतीर्थंकराय नमः

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक उक्त मन्त्र को लवङ्गो ले १०८ वार जपना चाहिये।

श्री महावीर

पद्यानुवाद-कारक की प्रार्थना

मानतुग की वेडियाँ, टूट गई थीं सर्व ।
भक्तामर के रचे से, हो करके निर्गर्व ।। १ ।।

इन समान स्तोत्र को, पढे सुने तिरकाल ।
ऋद्धि-सिद्धिवसु नवसुनिधि, पावत वह तत्काल ।। २ ।।

यदि सच्चा श्रद्धान हो, नहीं भ्रमावे योग ।
कार्य सफल होगे सभी, निर्विकार उपयोग ।। ३ ।।

हिन्दी भाषा मे कियो, देख मूल का अर्थ ।
पढना सोच विचार कर, नहीं समझना व्यर्थ ।। ४ ।।

स्वर व्यञ्जन मात्रादि की, मुझसे जो हो भूल ।
सुधी सुधार पढो सदा, तो पावो भव-कूल ।। ५ ।।

विरले समझें सस्कृत, भाषा समझें सर्व ।
इसी हेतु मैंने लिखा, भाषा मे निर्गर्व ।। ६ ।।

मुझको चाह न और कुछ, प्रभु की चाहूँ भक्ति ।
जब तक यह ससार है, बनी रहे अनुरक्ति ।। ७ ।।

यदि प्रभु इसके विषय मे, देना चाहें आप ।
तो मेरे भववर्ग के, कट जावें सब पाप ।। ८ ।।

वह दिन कब आवे प्रभो, छूट जाय ससार ।
उसे मिला देना विभो, नमता सौ सौ बार ।। ९ ।।

चल न सके अब लेखनी, आगे को पद एक ।
प्रभु के गुण के लेख को, चाहे अधिक विवेक ।। १० ।।

मत घबडा री लेखनी, अब ले ले विश्राम ।
होंगे इच्छित सिद्ध सब, जपने से प्रभु नाम ।। ११ ।।

कमल कुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

भक्तामर स्तोत्र के पद्यो का अकारादि वर्णक्रम

पद्य-प्रतीक	पद्यांक
अ (२)	
अम्भो निधौ क्षुभितभीषण नक्र चक्र—	४४
अल्प श्रुत श्रुतवतां परिहास धाम	६
आ (२)	
आपाद कण्ठमुरुश्रृङ्खलवेष्टिताङ्गा	४६
आस्ता तव स्तवनमस्त समस्त दोष	९
इ (१)	
इत्थ यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !	३७
उ ( )	
उच्चैरशोक तरु सश्रित मुन्मयूख—	२८
उद्भूल भीषण जलोदर भार भुग्ना	४५
उन्निद्रहेम नव पङ्कज पुंज कान्ति—	३६
क (५)	
कल्पान्त कालपवनोद्धत वन्हिकल्प	४०
किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वतावा	१९
कुन्ताग्रभिन्न गज शोणित वारिवाह	४३
कुन्दावदात चल चामर चारु शोभ	३०
को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै—	२७
ग (१)	
गम्भीर तारख पूरित दिग्विभाग	३२
च (१)	
चित्र किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्ग नाभि—	१५

छ (१)

छत्रत्रय तव विभाति शशाङ्क कान्त—

त (४)

तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !
त्वत्सम्स्तवेन भव सन्तति सन्नि बद्ध ।
त्वामव्यय विभुमाचिन्त्य मसख्य माद्य
त्वामामनन्ति मुनय परम पुमास ।

द (   )

दृष्ट्वा भवन्त मनिमेष विलोकनीय

न (४)

नात्यद्भु त भुवन भूषण भूत ! नाथ ।
नास्त कदाचिदु पयासि न राहुगम्य
नित्योदय दलित मोह महान्धकार
निर्धूम वर्तिर पवर्जित तैल पूर

ब (२)

बुद्धस्त्व मेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात्
बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चित पादपीठ !

भ (२)

भक्तामर प्रणत मौलि मणि प्रभाणा—
भिन्नेव कुम्भ गल दुज्ज्वल शोणिसाक्त—

म (४)

मत्त द्विपेन्द्र मृगराज दवान लाहि—
मत्वेति नाथ ! तव सस्तवन मयेद—
मन्ये वर हरिहरादय एव दृष्टा
मन्दार सुन्दर नमेरु सुपारिजात

य (२)

य सस्तुत सकल वाङ्मय तत्त्व बोधा—
यै शान्त राग रुचिभि परमाणु भिस्त्व

प्रस्तुत ग्रन्थ

पर

प्राप्त

श्री रामकुवार गुप्ता

'सचित्र भक्तामर रहस्य' का प्रत्येक पृष्ठ मेरी दृष्टि पथ से गुजरा है। संशोधन करते हुए पढा भी है वस्तुत इस ग्रथराज के तैयार करने में सम्पादक द्वय ने बड़ा ही परिश्रम किया है। और उनका श्रम तभी सफल समझा जावेगा जब कि जैन समाज इसको अधिक से अधिक खरीद कर पुस्तकालयो, शिक्षा सस्थाओं तथा विश्वविद्यालयो को भेंट स्वरूप देंगे। और स्वय भी इससे लाभान्वित होगे।

इस ग्रथराज के प्रकाशन का सारा भार मौन कर्मठ कार्य कर्त्ता श्री बाबू रतनलाल जी जैन कालका वालो ने उठाया है अतएव वे सब से अधिक बधाई के पात्र हैं।

नई सडक देहली — रामकुवार गुप्ता

दिनाक १२-७-७७ — श्री महावीर बुक डिपो

ग्रंथ के प्रकाश मे आने पर साहित्यिक क्षेत्र मे इसे समादर के साथ तो स्वीकार किया ही जायगा साथ ही जिनेन्द्र भक्ति के माध्यम से आत्मावलोकन करने मे विशेष सहायक होगा। मैं उनकी इस अपूर्व सज्जा के साथ प्रकाशित होने वाली कृति का हृदय से स्वागत करता हूँ।

फूलचन्द्र जैन
दिनाक सिद्धान्त शास्त्री
वाराणसी

आपका 'सचित्र भक्तामर रहस्य' विषयक परिपत्र पाते ही ६ वर्ष पुरानी याद आ गयी जब मैंने इस पुस्तक की दुर्लभ पाण्डुलिपि को आपके घर देखा था तथा आप से पाण्डुलिपि का सक्षिप्त परिचय मुझे भी देने के लिए कहा था। क्योंकि धर्म तथा अध्यात्मिकता के साथ-साथ यह पाण्डुलिपि भारत की अनूठी साहित्य एव कलाकृति भी है। तथा जैन मन्दिर एव मूर्तियो की भाँति भारतीय वाङ्मय तथा साहित्य के उन्नत आयामो का असाधारण निदर्शन है।

आप धर्म प्रेमी सज्जन के आर्थिक सहयोग से इस कृति का प्रकाशन कर सके इसके लिए आप लोगो को हार्दिक बधाई।

प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला
दिनाक २९-६-७७ काशी विद्यापीठ
वाराणसी-२

'सचित्र भक्तामर रहस्य' का प्रकाशन आपने बड़े परिश्रम से श्री कुन्थु सागर स्वाध्याय सदन से किया है। यह प्रसन्नता की बात है। आप उद्योगी हैं। जिन वाणी की सतत सेवा करते हैं। प्रयत्न श्लाघ्य है।

दिनाक डा० दरबारी लाल कोठिया
१६-२-७७ अध्यक्ष
विद्वत् परिषद वाराणसी

सचित्र भक्तामर रहस्य' ग्रंथ के प्रकाशन के सम्बन्ध में जो अन्तिम रूप आपने मुद्रित पत्र में प्रस्तुत किया है, उससे विश्वास होता है कि यह ग्रन्थ अत्यधिक महत्वपूर्ण होगा।

आपकी इस सफलता के लिए बधाई

वीना-इटावा (म० प्र०) **वंशीधर शास्त्री**
७-६-७७ व्याकरणाचाय

भक्तामर स्तोत्र दिगम्बर व श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायों म प्रतिष्ठित है। इसके रचयिता आचाय मानतुंग हैं। आपकी उसकी मूलकृति, आज पूण व चित्ताकर्षक है। वह प० कमल कुमार जी शास्त्री और आशुकवि पुष्पेन्दु द्वारा सम्पादित होकर 'सचित्र भक्तामर रहस्य' इस अभिनव सस्करण के रूप मे प्रकाशित हो रहा है यह जानकर अतिशय प्रसन्नता होती है। प्रस्तुत सस्करण सचित्र एव सम्बद्ध कथाओं के साथ मन्त्रो यन्त्रो और साधन विधि से सपन्न है। उसम प्रत्यक श्लोक का भाव शब्दाथ विशषार्थ व विवेचन के द्वारा स्पष्ट किया गया है। साथ ही उसम जो अग्रेजी अनुवाद दिये गये है उससे विदेशी पाठको के लिये भी वह उपयोगी बन गया है। श्रीमान् डा० ज्योति प्रशाद जी लखनऊ क आमुख से उसका महत्व और भी अधिक बढ गया है। आमुख मे डा० सा० ने भक्ति, स्तोत्र साहित्य एव स्तुतिकार क सम्बन्ध म ऐतिहासिक दृष्टि से अच्छा विचार किया है। इस प्रकार से प्रस्तुत सस्करण अतिशय उपयोगी बन गया है। इस सुन्दर कृति के लिये उभय सम्पादक साधुवादाह है।

६/७/७७ **बालचन्द जैन शास्त्री**
वीना-इटावा

भक्ति से पूरित होकर अमृतमयी हृदय के उद्‌गारो से समन्वित जो आचाय प्रवर मानतुग ऋषिराज ने भ० आदिनाथ का मगलमय स्तवन किया था।

लाखो प्राणियो के गले का कठहार वह स्तोत्र आज भी अपनी

अलौकिक दिव्यछटा से मानव हृदय को मोहित कर रहा है। उसके प्रत्येक शब्द, पद, भाव भक्ति की अमूल्य निधि है। इसका जितना प्रचार हो उतनी ही अधिक मानसिक शान्ति और पुण्य वर्धन का कारण बनेगा। आप भक्तामर का इतना सुन्दर उपयोगी सर्वाङ्ग पूर्ण सस्करण निकाल रहे हैं, यह अनुकरणीय है। आशा है इसके इस रूप मे प्रकाशित होने से जनता का विशेष कल्याण होगा।

लाला रतनलाल जी जैन कालका वालो की धार्मिक साहित्य के प्रकाशन मे अपूर्व रुचि है। वे कर्मठ समाजसेवी, नि स्वार्थ सेवा भावी और सफल कर्मवीर सरस्वती पाद सेवी मूक कार्यकर्ता हैं। उनकी धर्मनिष्ठा प्रशसनीय और अनुकरणीय है। उनकी लक्ष्मी सफल है, जो ऐसे पुनीत कार्यों मे लगकर ज्ञानाराधन मे दूसरो को लगाती है

आपके प्रयत्न को मैं हृदय से सफल चाहता हूँ।

दिनाक
२७/६/७७

सुमेरचन्द्र जैन
एम० ए० (डिग्री सस्कृत)
साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ शास्त्री
प्रचार मत्री जैन मित्र मडल धर्मपुरा देहली-६

अनवरत अध्ययनशील श्रीमान् प० कमल कुमार जी शास्त्री 'कुमुद' एव आशुकवि श्री फूलचन्द जी पुष्पेन्दु द्वारा सुसम्पादित तथा जिन वाणी भक्त दानवीर लाला भीकमसेन रतनलाल जी जैन दिल्ली द्वारा प्रकाशित ग्रथराज 'सचित्र भक्तामर रहस्य' का अवलोकन पाण्डुलिपि से अब तक की स्थिति तक किया। वस्तुत ग्रथ अपने नए परिवेष मे वा नई शैली मे अत्यन्त उपयोगी है। आचार्य मानतुग के गम्भीर भावो को विभिन्न कवि विद्वानों ने विभिन्न भाषाओ मे भक्तों तक प्रेषित करने के लिए अनुवादों द्वारा भिन्न-भिन्न छन्दो मे सुसज्जित किया है। अब तक उक्त ग्रथ के जितने भी सस्करण प्रकाश मे आए हैं उन सब मे यह सर्वोपरि स्थान ग्रहण करेगा। भक्तजनो के हृदयो को आकर्षित करने वाले सम्पादक द्वय का कार्य अत्यन्त स्तुत्य है। कामना है कि यह ग्रथ सर्वाधिक लोकप्रिय हो।

श्री पाश्वर्वनाथ दि० जैन
गुरुकुल हायर सेकेन्डरी स्कूल
खुरई (सागर) म० प्र०

प० नेमिचन्द्र जैन शास्त्री
एम०ए० (द्वय), बी० एड० साहित्याचार्य
प्राचार्य

यो तो श्री कुन्थुसागर स्वा० सदन खुरई महत्त्वपूर्ण प्रकाशनो के लिए जैन ससार मे ख्याति प्राप्त सस्थान है। इसने कई प्रकाशन किये हैं। जो अपने ढग से अपूर्व ही है। किन्तु सचित्र भक्तामर रहस्य का प्रकाशन तो निश्चय ही अपूर्व ही है। यह ग्रथ वस्तुत सर्वाग सुन्दर परिवेश मे तो है ही साथ ही यह ग्रथ ऐतिहासिक भी है। इसका प्रमाण विद्यावारिधि इतिहास रत्न डा० ज्योति प्रशाद जी जैन एम० ए० पी० एच० डी० जैसे सुप्रसिद्ध विद्वान द्वारा लिखित इसका आविर्भाव (आमुख) है।

इसमे ५ खण्ड हैं जिनमे भक्तामरजी के प्रत्येक श्लोक सम्बन्धी ऐतिहासिक मुगलकालीन दुर्लभ ५० भाव चित्र है। इसी तरह पाचो ही खण्डो मे अनेक खोज पूर्ण सामग्री श्लोक सम्बन्धी प्राचीन कथाएँ नवीन ढग मे लिखी गई है। जिन्हे एक वार पढना शुरू करने पर पूरा पढे विना मन नही मानता है। आगे के खडो मे भक्तामर पाठ विधि, कीर्तन विधि श्लोको का सानुवाद अर्थ भाष्य साथ मे पद्यात्मक सुन्दर भाषा एव मत्र यत्र और उसकी महिमा तथा विधियाँ मत्र साधनार्थ दी गई है। इसमे भक्तामर विधान की विधि भी अन्य विधान मडलो की तरह करने की प्रक्रिया दी है। सव मिलाकर ग्रथ सर्वांग पूर्ण सर्वोपयोगी बन गया है। इसके देखने से ज्ञात होता है कि विद्वद्वर्य श्री प० कमल कुमार जी शास्त्री और आशुकवि कविरत्न श्री फूलचन्द जी पुष्पेन्दु ने अधिक अरिश्रम किया है। अत वे बधाई के पात्र हैं साथ ही जिन वाणी भक्त उदार चेता सेठ भीकमसेन रतनलाल जी जैन देहली वालो को भी धन्यवाद देते हैं कि उनकी विशाल उदारता से ही यह अपूर्व ग्रन्थ रत्न प्रकाश मे आया है।

दिनाक
१६/६/७७

प० रामकुमार शास्त्री
सी० टी० एस० आर० एम० पी०
सम्पादक अहिंसा वाणी
निवाई राजस्थान

वास्तव मे यह ग्रन्थ अद्वितीय है। पाँच खण्डो मे सार्थक चित्र, सत्य कथा, दिव्य मत्र, विविध यत्र तथा सरस अर्चना आदि सभी अगो का वर्णन एक ही जगह पाठको को मिलेगा। यह बहुत ही अच्छा प्रयास है। ऐसे सकलन के लिए सम्पादक द्वय तथा प्रकाशक बाबू रतनलालजी जैन देहली धन्यवादर्ह हैं।

दिनाक
५/७/७७

समाजरत्न भँवरलाल न्यायतीर्थ
सम्पादक वीर-वाणी
जयपुर (राजस्थान)

'सचित्र भक्तामर रहस्य' ग्रथ वस्तुत अभी तक प्रकाशित सभी भक्तामर टीका रचनाओ मे सर्वश्रेष्ठ कृति है। भक्तामर स्तोत्र के व्यापक महत्व को प्रकाशित करने वाले इस टीका के पृथक-पृथक आलोक इस ग्रथ की अभूत-पूर्वता को घोतित करते हैं। वास्तव में इस अभूतपूर्व रचना के सम्पादक द्वय का प्रयास स्तुत्य एव सराहनीय है। और सर्वाधिक बधाई के पात्र हैं देहली निवासी श्री भीकमसेन जी रतनलाल जी जैन, जिन्होने समस्त अर्थभार वहन कर इस कृति को जैन जगत के सामने लाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया।

प० भुवनेन्द्र कुमार जैन
सस्कृताध्यापक
श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल उ० मा० शाला
खुरई (सागर) म० प्र०

दिनाक
३/७/७७

धर्म-भावना से किए गए सभी प्रयत्न सराहनीय होने हैं। फल सामने आने पर उपयोगिता-अनुपयोगिता का निर्णय होता है।

इन गत दिनो मे भी बहुत-सा साहित्य प्रकाश मे आया। वे धन्य हैं जो उपयोगी और आर्ष सम्मत साहित्य सृजन कर सकें। आचार्यों के कार्यों मे आचार्य ही प्रमाण हैं—हम तो केवल सद्भावना पाने के पात्र मात्र हैं॥ धन्यवाद!

पदमचन्द्र जैन शास्त्री
वीर सेवा मन्दिर, नई देहली

दिनाक
६/६/७७

जैन जातीय आबाल वृद्धो की जिस ग्रन्थ पर प्रगाढ श्रद्धा है—वही ग्रन्थ-राज सम्पादक युगल द्वारा बिल्कुल ही नये परिवेश मे प्रस्तुत किया गया है। स्तोत्र प्रभावना के क्षेत्र मे उक्त विद्वानो का यह कदम स्तुत्य है।

प० जीवन्धर जैन न्यायतीर्थ
गृहपति, हरसुख दि० जैन छात्रावास
बडवानी (म० प्र०)

दिनाक
१३-३-७७

कल्पना मन्दिर मे "सचित्र भक्तामर रहस्य" का आद्योपान्त अवलोकन करने से लगा, इसका सम्पादन बडे श्रम और खोजपूर्ण आधुनिक ढग पर हुआ है।

विभिन्न विषयक पाँच खण्डो ने और भी इसकी विशेषताओ मे चार चाँद लगा दिये हैं। विद्वान प० कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद' की साधना एव श्रम प्रशंसनीय है। अभी तक इस तरह सर्वांग परिपूर्ण भक्तामर स्तोत्र का सम्पादन देखने मे नही आया। इसकी भूमिका ऐतिहासिक दृष्टि से आदरणीय श्री डा० ज्योतिप्रशाद जी लखनऊ द्वारा लिखी गई है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह ग्रथ जैन जगत मे अभिनन्दन की कोटि मे आने योग्य है।

दिनाक १-७-७७

प० मैयालाल शास्त्री
बीना-इटावा

जैन साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियो को वर्तमान युग के अनुकूल सरस, सरल एव सचित्र रूप मे प्रस्तुत करने की दिशा मे आप दोनो सर्मपित विद्वानो का योगदान निश्चित ही स्तुत्य एव अनुकरणीय है। आपकी अथक साधना की सफलता हेतु मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ स्वीकार करें।

दिनाक १७-६-७७

जयसेन जैन
एम० ए०, बी० एड०, साहित्यरत्न,
आयुर्वेद रत्न, इन्दौर

'सचित्र भक्तामर रहस्य' जैन-समाज का एक अभूतपूर्व ग्रथ सिद्ध होगा। विद्वद्युगल के महान् श्रम और साहस के लिए बधाई!

दिनाक ४-६-७७

प० परमेष्ठी दास न्यायतीर्थ
सम्पादक वीर ललितपुर

श्री कुन्थुसागर स्वा० सदन, खुरई द्वारा 'सचित्र भक्तामर रहस्य' ग्रथ प्रकाशित हो रहा है जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उक्त ग्रथराज को पाँच खण्डो मे अनवरत श्रम वा खोजपूर्ण सामग्री के साथ सजाने मे आपका प्रयत्न प्रशसनीय है। श्रीमान् विद्यावारिधि, इतिहासरत्न डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन लखनऊ द्वारा लिखित भक्तामर ग्रथ की भूमिका ने ग्रथ मे चार चाँद लग गये है। जिनवाणी प्रचार वा आत्मज्ञान की खोजपूर्ण सामग्री के प्रकाशन मे हम शुभ-कामना करते है कि आपका प्रयास पूर्ण सफल हो।

दिनाक २२-६-७७

शुभचन्द्र जैन न्यायतीर्थ
भिण्डा (म० प्र०)

भक्तामर स्तोत्र की महिमा के सम्बन्ध मे प्रत्येक जैन पूर्णत: भिज्ञ है। भक्तिरस का सचार करने वाला यह काव्य जन-जन का कण्ठहार बन गया है। कवि हृदय रखने वाले सहृदयो का तो मानो यह अति प्रिय विषय है। यही कारण है कि सैकडों कवियो ने स्वान्त सुखाय छन्दो मे विभिन्न भाषाओ के माध्यम से जन-जन मे विस्तारित करने का कार्य किया है। ऐसे महान् स्तोत्र काव्य का सभी दृष्टियो से पूर्णत आलोचित सम्पादन को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ तथा सम्पादक द्वय और श्री बाबू रतनलाल जी जैन, जिन्होंने अपनी कमाई का एक बडा भाग इस ग्रथ को प्रकाश मे लाने का श्रेय प्राप्त किया, को कोटिश साधुवाद देता हुआ कामना करता हूँ कि यह ग्रन्थ अत्यधिक लोक-प्रिय हो।

दिनाक
७-७-७७

डा० राजाराम जैन
एम० एम०, पी० एच० डी०
हेड आफ दी डिपार्टमेंट, हरप्रसाद जैन कालेज
आरा (बिहार)

विद्वान सम्पादक द्वय द्वारा सम्पादित 'सचित्र भक्तामर रहस्य' ग्रन्थ अपने आप मे अद्वितीय विद्वतापूर्ण कृति है। मैं इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि सोनगढ एव खुरई मे २-३ बार देख चुका हूँ। ग्रन्थ को तैयार करने मे, उसके लिए सामग्री उपलब्ध करने मे अनेक कठिनाईयो का सामना इन्होंने किया। ग्रन्थ के प्रत्येक पद का भावार्थ, अर्थ विवेचन, उसके चित्र एव चक्र जैसे गहन कार्य मे जिस शक्ति का परिचय दिया गया है वह उनकी भक्तामर काव्य के प्रति अनन्य श्रद्धा एव भक्ति के साथ उनकी गहरी सूझ-बूझ का भी प्रतीक है।

यदि मैं अतिशयोक्ति नहीं करता हूँ तो दावे के साथ कह सकता हूँ कि इस ग्रथ के निर्माण मे जिस शोध दृष्टि का परिचय मिला है उससे कोई भी यूनिवर्सिटी इन विद्वानो को Ph. D की उपाधि से सम्मानित कर अपना गौरव बढा सकती है। इतना ही नही यह ग्रन्थ शोधार्थियो को नये मार्ग प्रशस्त कर सकता है। सच तो यह है कि भक्तामर के धार्मिक पाठियो को पठन के साथ ज्ञान एव चित्रों व यन्त्रो के कारण सूक्ष्म दृष्टि मे विचार करने का भी मौका मिलेगा।

अपनी अल्प बुद्धि के बावजूद इन विद्वानो को मिलने पर कुछ सूचना भी देता रहा। परामर्श देने का अवसर भी मिला। पर इन कार्यों मे भी हकीकत

मे तो मुझे ही नई दृष्टि प्राप्त होती रही। समाज को इन विद्वानो से और भी नए सशोधनो की आशा है।

अन्त मे इनके इस परिश्रम का पुरस्कार जैन धर्मो एव विद्वानगण इस ग्रन्थ से लाभ उठाकर सतोष व्यक्त करके देते रहेगे।

इस महान् कार्य के लिए इन विद्वानो को अभिनन्दन।

डा० शेखरचन्द्र जैन
एम० ए०, पी० एच० डी०, एल० एल० बी०
आर्ट्स कामर्स कालेज
भावनगर (गुजरात)

दिनाक
१-७-७७

'भक्तामर स्तोत्र' अपनी भाषा, भाव तथा काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भारतीय साहित्य मे अमूल्य निधि के रूप मे प्रतिष्ठा को प्राप्त है। अलौकिक ऋद्धि-सिद्धि के कारण मत्र एव तत्र साहित्य मे इस स्तोत्र का अतिशय महत्व है। स्तोत्र के प्रत्येक छन्द से सम्बन्धित कथाएँ इस बात की प्रतीक हैं कि इस स्तोत्र ने सैंकडो वर्षो से भारतीय जन-मानस को प्रभावित किया है।

प्रसन्नता की बात है कि प० श्री कमलकुमार जी शास्त्री 'कुमुद' तथा आशुकवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु' ने अपनी वर्षों की तपस्या एव साधना से भक्तामर स्तोत्र के सभी पक्षो को एकत्रित कर 'सचित्र भक्तामर रहस्य' के रूप में प्रकाशित किया है। मत्र, यत्र, कथाएँ, पद्यानुवाद तथा भाष्य के साथ प्रत्येक पद्य से सबधित ऐतिहासिक चित्र एव अग्रेजी अनुवाद ने इस प्रकाशन को सर्वागपूर्ण एव आधुनिक बना दिया है।

मेरी कामना है कि यह ग्रन्थ विद्वत्समाज एव जन-जन मे प्रतिष्ठा को प्राप्त करे। सम्पादक द्वय श्री 'कुमुद' एव 'पुष्पेन्दु' इस अभिनव प्रकाशन के लिए बधाई के पात्र हैं।

डा० हरीन्द्रभूषण जैन साहित्याचार्य
एम० ए०, पी० एच० डी०
रीडर, सस्कृत विभाग
विक्रम विश्व विद्यालय उज्जैन

अध्यक्ष
'प्राकृत एण्ड जैनिज्म'
अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलन
पूना अधिवेशन
दिनाक

'सचित्र भक्तामर रहस्य' प्रकाशित हो रहा है यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। मेरी ओर से वधाई स्वीकार करें। भक्तामर स्तोत्र हमारा सर्वाधिक लोकप्रिय स्तोत्र है जिसका हजारो लाखों जैन वन्धु प्रतिदिन पाठ करते हैं। यही नहीं जिसका पाठ सुनना ही पुण्य वध का कारण माना जाता है। नवयुवक समाज मे भक्तामर स्तोत्र का जितना प्रचार होगा उतनी ही उनकी धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा होगी। आप भक्तामर स्तोत्र का ५ खण्डो मे विस्तृत रहस्य उपस्थित कर रहे हैं—यह प्रशसनीय कार्य है इसके लिए आपको, 'पुष्पेन्दु' जी को एव श्री भीकमसेन रतनलाल जी जैन देहली को हार्दिक साधुवाद।

दिनाक
६-६-७७

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
एम० ए०, पी० एच० डी०, शास्त्री
महावीर भवन, जयपुर (राज०)

मानतुङ्गाचार्य विरचित भक्तामर स्तोत्र दिगम्वर और श्वेताम्वर समाज मे अत्यन्त प्रचलित है। अधिकाश स्त्री-पुरुष इसका नित्य पाठ करते है। अनेक स्थानो से इसके विविध सस्करण प्रकाशित हुए हैं पर प० कमल कुमार जी शास्त्री तथा आशुकवि फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु' ने अपने बुद्धि कौशल से इस सस्करण मे अनेक ऐसे विषयों का सकलन किया है जो अव तक अप्राप्त है। श्लोक से सम्बद्ध कथाएँ आधुनिक शैली से लिखी गयी हैं तथा प्राचीन चित्र भी सकलित किये गये है। मत्र, ऋद्धि तथा उनके साधन की विधि दी गयी है। यत्रों के चित्र दिए गये है। इस अनुपम सस्करण के सम्पादन और प्रकाशन के लिए प० कमल कुमार जी धन्यवाद के योग्य हैं। इसके पूर्व भी आप भक्तामर महाकाव्य तथा कल्याण मन्दिर स्तोत्र यत्र-मत्र सहित प्रकाशित कर चुके हैं जो समाज मे प्रचलित हैं।

दिनाक
२६-५-७७

प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य
प्राचार्य
श्री वर्णी जैन महाविद्यालय, सागर
(म० प्र०)

'सचित्र भक्तामर रहस्य' नामक अद्वितीय ग्रन्थ के सर्वाङ्गीण सवारात्मक परिष्कृत सस्करण के प्रकाशन विषयक सुखद समाचार से आह्लादित हूँ। पाँच खण्डों मे विभाजित आध्यात्मिक, सास्कृतिक, नैतिक, निखारात्मक दुर्लभ थाती

का सजोया जाना समाज व श्रद्धालु जनो के हेतु अनुपमेय ग्रन्थ वरदानस्वरूप सिद्ध होगा, ऐसी पूर्ण आशा है।

मानव को मानवता की तुला पर गुरुत्तर होने के लिए आध्यात्मिक सम्बल ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। "सचित्र भक्तामर रहस्य" से यही स्तोत्र सनइ्कर पाठको को पूर्णत तृप्त करेगा, ऐसी पूर्ण आशा व विश्वास है।

ग्रन्थ के प्रेरक सहयोगी समादरणीय श्रीमान् भीकमसेन रतनलाल जी जैन देहली जैसे निरभिमानी, परोपकारी, दानवीर की वरीयता का जितना भी बखान किया जाय थोडा है, उसी प्रकार अथक श्रम से सवारने वाले सम्पादक द्वय को भी हार्दिक साधुवाद !

विद्यावारिधि डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन, एम० ए०, पी० एच० डी० के आविर्भाव (आमुख) लेखन से तो सोने मे सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ हुई है।

इतने ख्यातिप्राप्त मनीषियो, समाज सेवियो, विद्वानो द्वारा सर्वाङ्गीण सवारा हुआ सुघर-सलोना 'सचित्र भक्तामर रहस्य' ग्रन्थ अनन्त प्रबुद्ध पाठको, अनन्य साधको तथा श्रद्धालु भावको व भक्तो के लिए सग्रहणीय थाती के रूप मे स्वीकृत होगा ऐसी पूर्ण अभिलाषा है।

मैं अपनी समस्त शुभ कामनाएँ ग्रन्थ के बहुमुखी विकास, प्रसाद-प्रचार हेतु सादर समर्पित करता हूँ।

मेघनगर — डा० शोभनाथ पाठक
दिनाक — एम० ए० हिन्दी सस्कृत
२६-६-७७ — पी० एच० डी०, साहित्य रत्न

वर्तमान लोक युगीन मानस प्रवृत्तियो के सदर्भ मे 'सचित्र भक्तामर रहस्य' निश्चय ही एक महत्वपूर्ण पुस्तक सिद्ध होगी। क्योकि सुकुमार मानस को प्रभावित करने मे चित्र सबसे अधिक प्रभावकारी होते हैं। इसके अतिरिक्त कथा, मत्र, यत्र तथा माडने की शैली व शिल्प से अनुरजित होने के कारण इसका सौन्दर्य और अधिक वृद्धिगत हो गया है।

दिनाक — डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, एम० ए०
१५-६-७७ — शा० स्नातकोत्तर महाविद्यालय
नीमच (म० प्र०)

श्री कुन्दकुन्दसार स्वाध्याय सदन, खुरई की ओर से 'सचित्र भक्तामर

रहस्य' का जो अद्वितीय प्रकाशन होने जा रहा है उसके लिए हार्दिक मगल अभिनन्दन स्वीकार कीजिए ।

'तीर्थंकर' मासिक पत्र का यह प्रयास है कि ऐसे श्रम से तैयार किए जाने वाले ग्रन्थों का अभिनन्दन हो ।

दिनाक

डा० नेमीचन्द जैन
सम्पादक 'तीर्थंकर'
प्रेमचन्द जैन
प्र० सम्पादक 'तीर्थंकर'
इन्दौर (म० प्र०)

'सचित्र भक्तामर रहस्य' ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है— जानकर बडी प्रसन्नता हुई। वस्तुत वर्षों से आप इसकी साधना मे लगे हुए थे जो आज फलवती हुई। मेरी भी इस दिशा मे कुछ रुचि रही है इसलिए नई जानकारियाँ देता रहा हूँ ।

सम्प्रदायातीत यह स्तोत्र ग्रन्थ रोचक व नई शैली मे लिखा जाकर जैन जगत मे आ रहा है। समाज द्वारा अपनाया जाकर यह अभिनन्दन की कोटि मे निश्चित ही आयगा ।

दिनाक

साहित्य शिरोमणि अगरचन्द नाहटा
बीकानेर (राजस्थान)

'सचित्र भक्तामर रहस्य' के नये ढग से सम्पादन तथा प्रकाशन की योजना निस्सन्देह सराहनीय है। विशद आकार मे चित्रो सहित उसे पाठको को सुलभ करने के पीछे मुझे सम्पादक द्वय तथा प्रकाशक की सूझ-बूझ दिखाई देती है। और उसके लिए मै उन्हे हार्दिक बधाई देता हूँ ।

भक्तामर का आत्मार्थियो के लिए कितना महत्व है, यह बताने की आवश्यकता नही है। वस्तुत नित्य स्वाध्याय का यह ऐसा धर्म-ग्रन्थ है जो गागर में सागर की कहावत चरितार्थ करता है। वह अध्यात्म की अमूल्य निधि है और उसके पठन-पाठन से व्यक्ति को जीवन की दिशा निश्चित करने मे सहायता मिलती है ।

यह लोकोपयोगी कार्य जितना श्रम-साध्य है उतना ही व्यय-साध्य भी है ।

मुझे पूरा विश्वास है कि ग्रन्थ सब प्रकार से उपादेय तथा सग्रहणीय होगा। और वह न केवल जैन जगत मे बल्कि अन्य धर्मावलम्बियो के बीच भरपूर आदर पायेगा।

७/८ दरियागज, देहली
२३ जून १९७७ ई०

यशपाल जैन
सम्पादक, नवभारत टाइम्स

'सचित्र भक्तामर रहस्य' के प्रकाशन के अवसर पर मैं श्री भीकमसेन रतन लाल जैन तथा सम्पादक द्वय प० श्री कमल कुमार जी शास्त्री 'कुमुद' और आशुकवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु' को बधाई देता हूँ। यह एक बहुत बडी सेवा हुई है। आशा है श्रद्धालुजन इसका पूरा लाभ उठायेंगे।

दिनाक
२३/६/७७

नेमिशरण मित्तल
सहायक सम्पादक, नवभारत टाइम्स
नई दिल्ली

यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि भक्तामर की नवीन सस्करण 'सचित्र भक्तामर रहस्य' के नाम से प० श्री कमल कुमार जी शास्त्री 'कुमद' और आशुकवि श्री फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु' द्वारा सुसम्पादित होकर जिनवाणी भक्त परम उदारमना श्री भीकमसेन रतनलाल जी जैन के बीस हज़ार रुपयो की सहायता से प्रकाशित हो रहा है। ग्रन्थ की रूपरेखा देखने से मालूम होता है कि इसके पाँच खडो मे सिद्धहस्त विद्वान सम्पादको ने इसे अति सुन्दर और उपयोगी बनाने मे भारी परिश्रम किया है। जिसके लिए वे और बाबू रतन लाल जैन बधाई के पात्र हैं। मैं हृदय से इसके प्रकाशन के लिए शुभ कामनाएँ भेजता हूँ। और उसे शीघ्र प्रकाशित देखने का इच्छुक हूँ। विश्वास है जैन समाज इसका स्वागत करेगा और इसकी सैकडो प्रतियाँ खरीदकर विद्यालयो, विद्वानो तथा पुस्तकालयो मे भेंट करेगा।

४५६९, डिप्टीगज, देहली
दिनाक २०/६/७७

माई दयाल जैन
बी० ए० (आनर्स), बी० टी०

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन, खुरई का अद्वितीय प्रकाशन 'सचित्र भक्तामर रहस्य' पाँच खडो मे चित्र, अन्वय, अर्थ विवेचन, कथा, ऋद्धि मत्र, यत्र अर्चना आदि सभी भक्तामर के अगो का वर्णन एक ही जगह पाठकों को

मिलेगा। यह बहुत अच्छा उपयोगी प्रयास है। ऐसे सुष्ठु सकलन के लिए सम्पादक द्वय तथा प्रकाशक महोदय बाबू रतनलाल जी जैन देहली वाले धन्यवादार्ह हैं।

दिनाक
६/६/७७

अजितप्रशाद जैन
लखनऊ

यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि आप लोगो के सम्पादन मे सागोपाग ऐतिहासिक महाप्रभावक 'सचित्र भक्तामर रहस्य' ग्रन्थ का प्रकाशन होने जा रहा है।

जैन समाज मे आबाल वृद्ध भक्तामर का पाठ करते है। भक्ति स्तोत्रो मे यह सर्वाधिक लोकप्रिय स्तोत्र है। नये परिवेष मे इस प्रकार का यह प्रयास स्तुत्य है।

प्रकाश 'हितैषी'
सम्पादक, सन्मति सन्देश
देहली

दिनाक
२४/६/७७

आप की ओर से प्रेषित 'सचित्र भक्तामर रहस्य' का एक पेम्पलेट प्राप्त हुआ। विज्ञापित पुस्तक निश्चित ही विशेष होगी। आपके सम्पादन मे कई अच्छे लेख-ग्रन्थ तैयार हुए हैं। समाज आपका आभारी है।

दिनाक
२८/६/७७

सुरेश 'सरल'
सहायक इन्जीनियर (सिविल)
गढा फाटक, जबलपुर

भक्तामर की महिमा अपूर्व है।

सिर पर विपदाओ की बदलियें छायें, कर्म अपना ताण्डव नृत्य दिखलायें और कोई भक्तामर की छाया मे बैठ जाये—

तीनों योगो को एक सूत्र मे पिरोकर खडा हो जाये—उसकी ढाल लेकर, शत्रु के सामने—तो यह असम्भव है कि दुर्दान्त शत्रु मैदान छोडकर न भाग जाये। कजरारे बादलो को भागते हुए रास्ता न मिले और कर्मों की बेडियाँ समय के पहिले ही टूटकर जमीन पर न गिर पडे।

क्या है भक्तामर, वह उससे पूछिये,
जिससे बिन बरसे ही बादल चल दिये।

विप का प्याला ताकता ही रह गया,
दे गया अमृत कोई जिसके लिये।
इनके मत्रो मे अनोखी शक्ति है,
पल मे हो जाता कि वेडा पार है।
आँख खुलती, गुनगुनाते है अधर,
प्रभु तेरी महिमा कि अपरम्पार है।

ऐसे प्रभावक-महाप्रभावक ग्रथ को, नख शिख पर्यन्त सजाकर प्रस्तुत करने के लिए पडित जी वधाई के पात्र है।

दिनाक ९/६/५९

(कवि श्री) अमृत लाल चचल
गाडरवारी

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन, खुरई द्वारा 'सचित्र भक्तामर रहस्य' प्रकाशित हो रहा है। जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

'भक्तामर' जैनधर्म की अपूर्व और अमूल्य निधि है। भक्तामर के सम्वन्ध मे इतने खोजपूर्ण प्रयत्न की जितनी प्रशसा की जाय कम है।

दिनाक ६/६/७७

आशुकवि कल्याणकुमार जैन शशी
रामपुर (उ० प्र०)

'सचित्र भक्तामर रहस्य' का सम्पादन युगल विद्वानो की सु-सस्कृत लेखनी द्वारा सम्पन्न हुआ है। ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर ग्रथ की समाज को आवश्यकता थी। समाज इसका समुचित मूल्याकन करके अवश्यमेव लाभान्वित होगी।

दिनाक

(सुश्री) रूपवती 'किरण'
जबलपुर

'सचित्र भक्तामर रहस्य' के प्रकाशन की योजना कितनी सुन्दर, प्रभावक एव सर्वांगपूर्ण होगी यह बडी प्रसन्नता का विषय है। हम तो इस प्रकाशन की पूर्ण सफलता की कामना करते हैं। यह प्रकाशन जैन बन्धुओ को भक्ति मार्ग का अनुपम साधन सिद्ध होगा।

दिनाक २/७/७७

(कविरत्न) घासीराम जैन 'चन्द्र'
शिवपुरी (म० प्र०)

श्री कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन, खुरई द्वारा 'सचित्र भक्तामर रहस्य' नामक ग्रथ का प्रकाशन हो रहा है—यह आप ही की सतत साधना का प्रति-

फल है जो साहित्य जगत को एक अनुपम भेंट मदन द्वारा दी जा रही है। आज के भौतिक युग मे भक्तामर जैसे 'काव्य का सर्वप्रथम सचित्र प्रकाशन, उसका महत्व, मंत्रों की विशदता आदि से युक्त यह ग्रंथ समाज के आबालवृद्धो को प्रेरणादायक सिद्ध होगा। आपके प्रयास के लिए धन्यवाद।

दिनाक
२०/६/७७

सत्यधर कुमार सेठी
उज्जैन

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि आपके द्वारा सु-सम्पादित 'सचित्र भक्तामर रहस्य' पाँच खण्डों मे प्रकाशित हो रहा है। आपने इसके लिये अथक परिश्रम किया है। जब गतवर्ष पर्यूषण पर्व मे आप यहाँ पधारे थे, तब भी निरन्तर उसके लिये खोज करते रहे और लेखन भी। हमे इस कृति की पाण्डु-लिपि के दर्शन का भी सौभाग्य तब मिला था। समाज मे ग्रंथ का आदर होगा।

मेरी विनम्र शुभ कामनाएँ स्वीकारिये।

दिनाक
१६/६/७७

सि० नेमिचन्द्र जैन गोंदवाले
न्यु ब्लाक्स, शिवपुरी (म० प्र०)

मुझे मानतुगाचार्य प्रणीत भक्तामर स्तोत्र के आधार पर प० कमल कुमार जी जैन शास्त्री खुरई द्वारा रचित भक्तामर रहस्य देखने का सु-अवसर प्राप्त हुआ। यह ग्रन्थ भक्तामर स्तोत्र पर अब तक समय-समय पर रचित शताधिक व्याख्या ग्रन्थों मे सब से अधिक व्यापक और सागोपाग है।

ग्रन्थराज को पांच खडो मे विभक्त किया गया है। परम्परानुसार अन्वयार्थ, शब्दार्थ, भावार्थ, विवेचन, पद्यानुवाद के अतिरिक्त इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं चित्रमय प्रस्तुतीकरण, सत्यकथालोक, दिव्य मन्त्रालोक, विविध यन्त्रालोक एव सरस अर्चनालोक। सत्यकथालोक के अन्तर्गत पौराणिक कथाओं को नवीन औपन्यासिक शैली मे प्रस्तुत किया गया है। दिव्य मन्त्रालोक के अन्तर्गत दिव्य पक्ष अर्थात् विशिष्ट प्रभाव आदि का सुन्दर विवेचन है। इसी प्रकार ४८ प्रामाणिक यन्त्राकृतियाँ श्री सोमसेनाचार्य कृत भक्तामर मडल विधान, भक्तामर महिमा आदि यथास्थान निबद्ध है।

भक्तामर स्तोत्र के विविध पक्षो पर प्रकाश डालने वाली इस विविध सामग्री से इस अनुपम ग्रंथ की महत्ता और बढ गई है। यह ग्रन्थ भारतीय

वाङ्मय विशेषत जैन साहित्य के एक बडे अभाव की पूर्ति करता है। इस स्तुत्य प्रयास के लिए मैं विद्वान सम्पादक द्वय को साधुवाद देता हूँ।

रामनगर, नई दिल्ली-५५ — गोकुल प्रसाद जैन
दिनाक १४/७/७७ — मत्री, वीर सेवा मदिर

श्री प० कमल कुमार शास्त्री 'कुमुद' और श्री 'पुष्पेन्दु' जी समाज के सुपरिचित और सुप्रतिष्ठित विद्वान कवि हैं। आपकी अनेक रचनाएँ समाज मे सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं। इन विद्वानो की सूझ-बूझ सदा सराहनीय रहती है। अब इनकी नवीन कृति 'सचित्र भक्तामर रहस्य' बिल्कुल ही नये परिवेष मे समाज के सामने आ रही है जो कई वर्ष तक सामग्री के सकलन और सम्पादन का सुफल है इसके लिए उभय विद्वान बधाई के पात्र हैं।

श्री लाला रतनलाल जी कालका वालो को जिनवाणी के प्रकाशन वा प्रसार की बडी लगन रहती हैं। वे ही इस अनुपम कृति का प्रकाशन कर रहे हैं। इसके लिए उनको हार्दिक बधाई।

आशा है यह कृति सर्वोपयोगी और सर्वप्रिय सिद्ध होगी।

३७४६ गली जमादार, — हीरालाल जैन 'कौशल'
पहाडी धीरज, देहली — विद्वद्रत्न सा०र०शास्त्री न्यायतीर्थ
१४/७/७

जानकर परम प्रसन्नता हुई कि दिग्गंबर श्वेताम्बर दोनो सम्प्रदायो मे समान रूप से सम्मानित भक्तामर स्तोत्र के विषय मे 'सचित्र भक्तामर रहस्य' ग्रन्थ ५ खडो मे प्रकाशित हो रहा है।

चूंकि ग्रन्थ के सम्पादक द्वय प० कमल कुमार जी शास्त्री 'कुमुद' और प० फूलचन्द जी 'पुष्पेन्दु' प्राचीन परिश्रमी अध्यवसायी विद्वद्रत्नो मे से एक हैं—परखे हुए है। अत. उनकी यह कृति भी धर्म और समाज के सेवा के सन्दर्भ मे एक अपूर्व, अमूल्य दान होगी और महावीरश्री चित्र-शतक भी लोकप्रिय होकर शोध और श्रम को तथा बाबू रतनलाल जैन कालकावालो की आर्थिक योजना को सही अर्थो मे फलीभूत करेगी।

बजाजखाना जावरा — लक्ष्मीचन्द्र सरोज, एम० ए०
दिनाक २४/६/७७

'सचित्र भक्तामर रहस्य' का अभी तक का मुद्रित रूप देखा। देख कर निश्चय हुआ कि भक्तामर सम्बन्धी प्रकाशनो मे यह प्रकाशन सर्वोत्तम है जो जैनसमाज के लिए सर्वोपयोगी सिद्ध होगा। इसके लिखने मे सम्पादक द्वय ने भारी श्रम वा समय खर्च किया है। एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र है साथ ही इस अभूतपूर्व ग्रन्थराज के प्रकाशन मे श्री बाबू रतनलाल जी जैन कालका वालो ने जो २०-२५ हजार रुपया खर्च किये है वस्तुत: उन्होने अपनी चचला लक्ष्मी का सदुपयोग किया है—उनका साहित्य प्रेम श्लाघनीय है और अनुकरणीय भी—

राधा मोहन जैन
सहायक, जैन साहित्य सदन
चांदनी चौक, देहली-६

दिनाक १/६/७७

'सचित्र भक्तामर रहस्य' पुस्तक के अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बहुप्रचलित भक्तामर स्तोत्र को लेकर इतना सुन्दर उपयोगी प्रकाशन पहिले कभी नहीं हुआ। पुस्तक अपने आप मे एक महान ग्रन्थ बन गया है। उसके ४ खड—चित्रालोक, कथालोक, मत्रालोक, यत्रालोक और अर्चनालोक अद्भुत और अपूर्व है। इस पर जो बौद्धिक श्रम किया गया है वह साहित्यिक ससार के लिए आदर्श है। भक्तामर स्तोत्र के सबध मे मत्र-पाठ, ऋद्धियाँ, उनके फल, उदाहरण, प्रत्येक श्लोको का विवेचन पाठक के ऊपर अमिट प्रभाव छोडता है। मेरी जानकारी मे भक्तामर स्तोत्र को लेकर यह पहली पुस्तक है जो स्तोत्र के सबध मे सब प्रकार की जिज्ञासा को पूर्ण करती है। कुन्थुसागर स्वाध्याय सदन और उसके व्यवस्थापक प० कमलकुमार जी जैन शास्त्री 'कुमुद' तथा श्री 'पुष्पेन्दु' जी इस बहुमूल्य अपूर्व प्रकाशन के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। दिगम्बर जैन साहित्य मे इस पुस्तक को बहुमूल्य रत्न कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही है।

X/५२१ जैन गली
रघुवर पुरा न०-१
दिल्ली-११००३१
१५/७/७७

(विद्वद्भूषण व्याख्यान वाचस्पति)
डा० लाल बहादुर शास्त्री
एम० ए०, पी० एच० डी०,
साहित्याचार्य, न्यायकाव्यतीर्थ

आदिनाथेभ्यो नमो नमः

अपि भारत भारती माता अति प्रशस्ता पुण्या पूता च स्व स्वभाविकैः प्रकृति विभवैर्यथा तथा च तपोपूतैर्भोगयोगसमन्वितैर्मुनिवर्य्येश्च । सुरसरित्सरसि स्वच्छायां नभसि ज्योत्स्ने राजप्रासादेषु मुक्तभोगा अपि सकलप्रवृत्तित्यागायोगात्मतत्त्वप्रकाशका. आदिनाथमहाभागमहोदया । बालादेवारभ्य सर्वेजन्तव कथं सुखिनो भवन्तु एवं चिन्ताचिन्तननिरता भवन्त आसन् । ते तु अहर्निशं योगसाधनाविद्याविवादनारहिता, अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागेति मत्वा कृत्वा सर्वं भूतहितेरता, ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरत सदा, ब्रह्मचर्य्यं एव भवति यत्र तत्र आप्त के वचन् ॥ एवंविधा सन्तु सन्त ब्रह्मचर्य्याचार्य्या अकालकाल कवलित जनौघपरित्राणार्पणकलेवरा, स्वशरीरान्तरान्तः करणचतुष्टयलक्षणाभावस्यवत्ताम्बररहिता दिग्दिगन्तस्थितबालवृद्धस्त्रिपुरुषहृष्टपुष्टपास्वराः अपि स्वयं दिगम्बरा सत्यासक्तिजनित विश्वास साहाय्य श्रद्धाभिषिक्ता अपि राज्याभिषेक क्लेशविनिर्मुक्ता वसुधैव कुटुम्बकपरिग्रहा. अपि पुत्रकलत्रबन्धुबान्धव बन्धनापरिग्रहा, मनसा वाचा कर्मणा अस्तेया, स्वागजुगुप्सयानपेक्षितशरीरसुखोऽति सन्तोषपरा. तपसापूता स्वाध्यायनिरता आदिनाथा हृत्वा दुःख, कृत्वा सुख, दत्त्वा पुण्य जगद् दातार भवन्तु न ।

नम आदिनाथेभ्य, पूर्वेभ्य पथिकृद्भ्य नमो नम

भवता भारतीय
महेन्द्रकुमार शास्त्री

मुक्तक - उद्‌वोधन

नत्वा नत्वा त्रिभुवनतिलकम्,
कीर्तिभाजो भवन्तु,
मत्वा मत्वा जैन हित मननम्,
आत्मवन्तो भवन्तु,
कृत्वा कृत्वा यमनियमचयम्,
शीलवन्तो भवन्तु,

दृष्ट्वा दृष्ट्वा प्रकृति विभवम्,
लोकवन्तो भवन्तु,
घ्रात्वा घ्रात्वा सुकर्म सुरभिम्,
पुण्यवन्तो भवन्तु,
पीत्वा पीत्वा, सुसोमम जरम्,
मोदयन्तो भवन्तु,
लब्ध्वा लब्ध्वा मौक्तिकफलम्,
परमहसा भवन्तु,
भृत्वा भृत्वा सुदीन जठरम्,
दानशीला भवन्तु
हृत्वा-हृत्वा जगत् तापम्,
विश्वमित्रा भवन्तु,
भूत्वा भूत्वा लोकलोचन चन्द्रः
पूज्यार्हन्तो भवन्तु,

महेन्द्रकुमार शास्त्री

प्रशस्ति

परम कर्मठ, धार्मिक, सतोगुणी श्री रतनलाल जी जैन ने पूर्व भी जैन धर्म के लिए अनेक ग्रथों का प्रकाशन किया। उसी सन्दर्भ मे 'सचित्र भक्तामर' के प्रकाशन मे तन-मन-धन लगाकर जैन साहित्य की अभिवृद्धि की है। ग्रथ रत्न मे प्रकाशित सामग्री का सग्रह अति उत्तम रीति से किया गया है। जो अनुपलब्ध चित्रों के चित्रण से और भी उपादेय बन गया है। भगवान आदित्यनाथ जी महाराज के जीवन-वृत्त सम्बन्धी संस्कृत श्लोक स्तोत्रों मे, सस्कृत सुकृति से भगवद्भक्त जैन जन लाभान्वित होंगे। प्रत्येक वयस्क जैन बन्धु को इस धर्म ग्रथ को अवश्य-अवश्य स्वाध्यायार्थ घर मे, पुस्तकालयों मे सश्रद्ध प्राप्त करके सुशोभित एव सम्मानित करना चाहिए। प्रकाशक महोदय को जहाँ आत्म-तुष्टि हुई -वहाँ पाठकगण भी आदिनाथ भगवान के चरित्र का अनुचरण करके अपने आपको कृतकृत्य बनायेंगे और पावन चरित के प्रसाद से जनता जनार्दन को भी लाभ पहुँचायेंगे।

आपका अपना
महेन्द्रकुमार शास्त्री